THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_178845

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 D44P Accession No. P. G. H5

Author देसाई, रमणलाल वसन्तलाल.

Title पूर्णिमा 1945.

This book should be returned on or before the date last marked

प्रस्तावना

गुजराती भाषा के लब्ध-प्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत रमण-लाल-वसन्तलाल देसाई के 'पूर्णिमा' नामक उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद करके श्रीयुक्त पुरुषोत्तमलाल दवे 'ऋषि' ने हिन्दुस्तान के एक समर्थ कलाकार की सुन्दर कृति को हिन्दी पढ़नेवालों के सामने रक्खा है। अन्तप्रान्तीय संस्कार-विनिमय के इस युग में अनुवादक का यह परिश्रम सर्वथा प्रशंसनीय है।

गुजरात के कहानी-साहित्य का इतिहास बड़ा ही रोचक है। रसिक गुजराती बहुत पुराने समय से कहानी कहने और सुनने में रस लेते आये हैं। उनके देश की भौगोलिक परिस्थिति ने भी उनकी इस रस-वृत्ति का पोषण किया है। गुजरात में आर्य-सभ्यता की सृष्टि करनेवाले शर्याति और च्यवन भार्गव की दन्त-कथाएँ देश में फैली हुई थीं। इनके बाद आनर्तपुर, गिरिनगर, कुशस्थली और प्रभास में आकर सत्ता स्थापित करनेवाले आर्यों के प्रेम, शौर्य और धर्म की अनेक कहानियों को लोग बड़े चाव

से सुनते थे। सहस्रार्जुन, कार्तवीर्य और परशुराम की कथाएँ अभी तक विस्मरित नहीं हुई हैं। भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम की कथाओं ने साहित्य में अमर स्थान प्राप्त कर लिया है। देशीय कहानियों के साथ-साथ यहाँ विदेशी कहानियाँ भी आईं। ऋग्वेद में उल्लिखित 'पणि' व्यापारी, कुशस्थली के बन्दरगाह से जहाज पर बैठकर विदेश जाते और अपने देश लौटने पर अन्य वस्तुओं के साथ मनोरंजक कहानियाँ भी ले आते थे। सहस्रार्जुन की महिष्मती में, प्राचीन ख्रिस्त देशों में प्रख्यात शूर्पारक में, और विदेशी व्यापारियों की नौकाओं से भरे हुए भृगुकच्छ के बन्दरगाह में तरह-तरह की कहानियाँ सुनने में आती थीं। ईसा के सैकड़ों वर्ष पूर्व गुजराती नाविक सीलोन, जावा, सुमात्रा तथा चीन तक जाते और वहाँ की अनेक रसमयी कथाएँ साथ लाते। इस प्रकार गुजरात का कहानी-भंडार दिन-पर-दिन समृद्ध बनता गया।

गुजरात का प्रारम्भिक कहानी-साहित्य प्राय: काव्य के रूप में दीख पड़ता है। उस समय काव्य, साहित्य का सम्मानित अंग माना जाता था और प्रत्येक लेखक अपनी कृति को लोकप्रिय बनाने के लिए प्राय: काव्य का ही आश्रय लेता था। भाषा चाहे प्राकृत हो या संस्कृत, कहानियाँ काव्य में ही कही जाती थीं। काव्यमय कहानियों के भी दो स्वरूप थे—एक तो वे, जो गायी जाती थीं; और दूसरी वे, जो पढ़ी जाती थीं। शुरू में गेय कविताओं-द्वारा ही कहानियों का प्रचार अधिक होता था। इन कहानियों को घर

के बड़े-बूढ़े याद रखते और समय-समय पर लोगों को गाकर सुनाते थे। ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे लेखन-कला का विकास होता गया त्यों-त्यों ये गेय काव्य लिखे जाने लगे। इस प्रकार कुछ समय बाद कहानियों के संग्रह प्रकाशित होने लगे।

इस जगह इतना लिख देना आवश्यक है कि गुजरात के कहानी साहित्य में जैन-साधुओं का स्थान बहुत ऊँचा है। भगवान् महावीर की जन्मभूमि ने उनके अनुयायियों को आश्रय नहीं दिया। विचार-स्वातंत्र्य को सर्वदा उत्तेजन देनेवाला गङ्गा और यमुना का दोआबा कट्टर जैन-साधुओं को पसन्द न आया। उन्होंने पश्चिम की ओर प्रस्थान किया और गुजरात—काठियावाड़ में पहुँचकर महावीर का सन्देश सुनाया। व्यवहार-कुशल गुजरातियों को जैन सिद्धान्तों ने आकर्षित किया। जनता के हृदय को स्पर्श करने के लिए जैन-साधुओं ने अपने धर्म की महत्ता सूचित करने वाली अनेक कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ धर्म-कथा के नाम से प्रख्यात हैं। 'तरङ्गवति' नाम की धर्म-कथा का उल्लेख 'अनुयोग-द्वारा' (सन् ५०० ई०) में मिलता है। इस कथा को पादलिप्त नाम के जैन ने लिखा था। प्रख्यात जैन लेखक हरिभद्र (सन् ७५० ई०) ने 'समरादित्य-कथा' नाम की धर्म कथा लिखी। कुछ समय बाद उद्योतन (सन् ७७९ ई०) नाम के जैन-साधुओं ने 'कुवलयमाला नाम की पुस्तक लिखी। तत्पश्चात् महान् जैन-धर्माचार्य हेमचन्द्र सूरि ने अनेक प्राचीन जैन-कथाओं का संग्रह प्रकाशित कराया।

प्रारंभ में जो कहानियाँ या कथाएँ लिखी गयीं, उनके उद्गम स्थान प्रायः जातक, पंचतंत्र, कथासरित्सागर, बृहत्कथा, आदि

प्राचीन ग्रन्थों में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त 'वैतालपंचविंशतिका' और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' ने भी स्थानीय कहानी लिखने वालों का ध्यान आकृष्ट किया था; परन्तु इन कहानियों को देखने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि इनमें साहित्य-सृजन का कोई निश्चित प्रयास नहीं था। केवल जनता के मनोरञ्जन के लिए तथा धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार के हेतु ये कहानियाँ लिखी गयीं। इनमें न तो भाषा ही शुद्ध थी और न पात्रों का योग्य आलेखन ही; लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों कहानी लिखने की कला सुधरती गयी। काव्य का स्थान गद्य ने लिया और गुजराती भाषा की रूप रेखाएँ कुछ-कुछ स्पष्ट दीख पड़ने लगीं। फिर अंग्रेजों का युग आया। धीरे-धीरे देश में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई और इस जागृति ने लोगों का ध्यान अपनी मातृभाषा की ओर खींचा। वीर नर्मद का बिगुल बजा और गुजराती भाषा में सर्वत्र नवजीवन का संचार दिखाई पड़ने लगा। गुजराती भाषा में उल्लेखनीय सर्वप्रथम उपन्यास 'करणघेलो' था। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई। इसके बाद फ्रामजी बोमनजी ने 'गुजरात अने काठियावाड़ देशनी वार्तो' नाम की पुस्तक लिखी। हरगोबिन्ददास काँटावाले ने 'अंधेरी नगरी नो गर्दभसेन' लिखकर देशी राज्यों की तत्कालीन स्थिति का परिचय कराया। तालियारखान ने 'रत्नलक्ष्मी' तथा 'कुलीन अने मुद्रा' नाम की पुस्तकें लिखीं। इसके बाद श्रीगोवर्धनराम ने 'सरस्वतीचन्द्र' नाम का एक उच्चकोटि का उपन्यास लिखा। 'सरस्वतीचन्द्र' गुजराती भाषा का सर्वप्रथम श्रेष्ठ उपन्यास है। 'सरस्वतीचन्द्र' ने

गुजरात में एक नया आदर्श खड़ा किया। गोवर्धनराम के बाद इच्छाराम-सूर्यराम, चुन्नीलाल-वर्धमानशाह, नारायण-वसनजी ठक्कर तथा भोगीन्द्रराव दिवेटिया आदि ने भी अनेक उपन्यास लिखे; लेकिन श्रीयुत् कन्हैयालाल-माणिकलाल मुन्शी के उदयकाल तक 'सरस्वतीचन्द्र' का स्थान किसी भी उपन्यास ने प्राप्त नहीं किया। श्रीयुत मुंशी के उपन्यास, प्रकाशित होते ही बहुत जल्द लोकप्रिय हो गये। उनकी आकर्षक शैली की, उनकी, भाषा के ओजस की तथा उनके पत्रालेखन के चातुर्य की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। 'वेरनी वसूलात' और 'कोनो वाँक ?' लिख कर उन्होंने समाज की बुराइयाँ दिखायीं। 'पृथ्वीवल्लभ', 'पाटणानी प्रभुता', 'गुजरात नो नाथ' और 'राजाधिराज' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिख कर उन्होंने उच्चकोटि की कला का परिचय दिया। यद्यपि अनेक आलोचक श्रीयुत् मुन्शी की कला में युरोपीय उपन्यासों के अनुकरण का दोष देखते हैं, तथापि इतना तो कहना ही पड़ेगा कि उनकी लेखनी में तेजस्विता है, हृदय पर असर करने की ताकत हे और पात्रों को जीवित बनाने की पटुता है। श्रीयुत् रमणलाल देसाई की पुस्तकों के प्रकाशित होने पर, लोक-प्रियता इन दोनों कलाकारों में बँट गयी है। इस समय श्रीयुत् मुंशी और रमणलाल देसाई गुजराती साहित्य के दो समर्थ कलाकार हैं।

श्रीयुत् रमणलाल देसाई बड़ोदा राज्य में नौकर हैं। साहित्य का शौक उनको लड़कपन से है और राज्य के काम से समय निकाल कर वे सर्वदा पढ़ा और लिखा करते हैं। बड़ोदा के एक

साप्ताहिक-पत्र के आग्रह से उन्होंने उपन्यास लिखना शुरू किया। उनके दो-तीन उपन्यास उस साप्ताहिक-पत्र के वार्षिक-भेंट-पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए। गुजरात उनके उपन्यासों पर मुग्ध हो गया। देखते-ही-देखते उनके कई उपन्यास प्रकाशित हुए— 'जयन्त', 'शिरीष', 'कोकिला', 'हृदयनाथ, 'स्नेहयज्ञ', 'बंसरी', 'दिव्यचक्षु', ग्रामलक्ष्मी', 'पत्र-लालसा', 'भारे लो अग्नि' और 'पूर्णिमा' इन सब उपन्यासों ने गुजराती भाषा में क्रान्ति-सी पैदा कर दी। नूतन गुजरात ने अपने आदर्श का प्रतिबिम्ब इन उपन्यासों में देखा। श्रीयुत् देसाई केवल उपन्यास ही नहीं लिखते, वे छोटी-छोटी कहानियाँ भी लिखते हैं। उनकी कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही में उनकी कविताओं का संग्रह 'निहारिका' भी प्रकाशित हुआ है। उनके गद्य-लेखों का एक संग्रह भी शीघ्र प्रकाशित होने वाला है।

श्रीयुत् रमणलाल की मुख्य कृतियाँ उनके उपन्यास हैं। ये उपन्यास प्रधानतः सामाजिक हैं। गुजरात का जीवन उन्हें बहुत पसन्द है; अतः उपन्यासों के कथानक गुजरात से ही लिये गये हैं। पात्रों के लिए उन्होंने मध्यमवर्ग को पसन्द किया है। ये सब उपन्यास मौलिक हैं, और यद्यपि उनमें विस्तृत वाचन-प्रदेश की कोई विदेशीय भाव-लहरी कहीं-कहीं बहती दीख पड़ती है तथापि यह निर्विवाद है कि उनकी कृतियों में अनुकरण, अनुवाद आदि दोषों को स्थान नहीं। भावनाओं की कोमलता, लेखन-शैली का माधुर्य, पक्षपात रहित विवेचन, विवेक और नैतिक विशुद्धि

का आग्रह तथा कथा-रस को अन्त तक निबाहने की शक्ति—ये सब गुण श्रीयुत् देसाई के उपन्यासों में विद्यमान हैं, और इन्हीं के कारण गुजराती-साहित्य में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। उनके विषय में गुजराती भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् और विवेचक श्रीयुत् बी० के० ठाकोर लिखते हैं कि 'रा० भाई श्रीरमणलाल सरल से गंभीर और गंभीर से सरल भूमिका में यथेच्छ विहार करते हैं। उनका सरल-गंभीर श्वेत-श्याम गंगा-जमुनी पंखवाला कल्पना-पक्षी गंभीर भूमि और गहरे पानी में आनन्द के साथ घूमता है और नाचता है, खेलता है और मज़ाक करता है...संगीतमय झरनों में लोगों को स्नान करता है; कहीं भी वह थकता नहीं, ठोकर नहीं खाता और कहीं भी उसे सँभालने की जरूरत नहीं होती।' Psychology (मनोविज्ञान) की ओर श्रीयुत् देसाई का विशेष ध्यान रहता है और राजनैतिक तथा सामाजिक मामलों में उनके विचार गाँधीवाद से मिलते-जुलते हैं।

'पूर्णिमा' देसाईजी का एक बहुत ही लोक-प्रिय उपन्यास है। इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर गुजरात में एक प्रकार की खल-बली मच गयी। नवयुवकों ने और सुधारकों ने इस उपन्यास की खूब प्रशंसा की। धार्मिक वृत्तिवाले वृद्धों ने इस उपन्यास में नई रोशनी का दुर्गुण देखा; परन्तु स्पष्ट शब्दों में कलाकार की कृति को बुरा कहने का साहस उन्होंने भी नहीं किया। केवल साहित्य की दृष्टि से पुस्तक को देखनेवालों ने उसे एक उच्चकोटि का उप-न्यास बताया। यह उपन्यास किस उद्देश्य से लिखा गया है—

यह लेखक ने स्वयं अपनी प्रस्तावना में कह दिया है; अतः उसको यहाँ पर चर्चा करना आवश्यक नहीं। वेश्यावृत्ति का प्रश्न बहुत पुराना है। उसका अस्तित्व समाज के लिए हानिकारक है या नहीं, इस विषय में भी मतभेद है; परन्तु इतना तो अवश्य है कि वेश्याओं की गिरी हुई हालत—उनकी दयाजनक परिस्थिति—समाज के लिए लांछनरूप है। समाज की बुराइयों से उत्पन्न हुआ यह वेश्या-समूह, भस्मासुर की तरह समाज के सिर पर हाथ रखता है; अतएव इस राक्षस का हाथ यदि इसी के सिर पर नहीं रखा जायगा, तो वह समाज को निरन्तर भस्म करता रहेगा।

वर्तमान विचार-स्वातंत्र्य के इस युग में पला हुआ धनवान पिता का एक-मात्र संस्कारशील पुत्र अविनाश एक वेश्या के संसर्ग में आता है। वह उस वेश्या—राजेश्वरी में विवेक देखता है, सौन्दर्य देखता है, हृदय की विशालता देखता है। राजेश्वरी की कला में हृदयतंतु को स्पर्श करने की अद्भुत शक्ति देखता है। उसे राजेश्वरी के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है; परन्तु समाज की मर्यादाएँ उसे अपनी आराध्यदेवी के पास नहीं जाने देतीं। वह उन मर्यादाओं का उल्लंघन करके जब राजेश्वरी के पास पहुँचता है, तब उस गणिका की दयनीय स्थिति का उसको खयाल आता है। जिस देह को वह कोमल फूल से भी मृदु समझता था, निष्ठुर पुरुष-समाज को उसने उसे रौंदने के लिए तत्पर हुए देखा। जिसके गाने में उसे किसी देवांगना का अलौकिक स्वर सुनायी

देता था, उसे स्वार्थी पुरुष की बीभत्स—जघन्य—वासनातृप्ति का साधन बनते देखा। जो हृदय पवित्रता चाहता था, उसे चारों ओर से घेर कर जबर्दस्ती पापपथ में खींच ले जाने वाले समाज का भयंकर चित्र उसने देखा। उसका हृदय रो उठा। शुद्धता और सभ्यता का आडंबर रखनेवाले समाज के प्रति उसे तिरस्कार उत्पन्न हुआ। सारे समाज के दुष्कृत्य का प्रायश्चित्त अपने ऊपर ले उसने राजेश्वरी से ब्याह करने का निश्चय किया। राजेश्वरी भी अविनाश के पीछे पागल हो गई। वह ब्याह करके सच्चे प्रेम का आस्वादन करना चाहती थी; परन्तु समाज इस संबंध को कैसे होने देता! गणिका के साथ कहीं ब्याह हो सकता है? अविनाश ने घरबार छोड़े—नौकरी छोड़ी। अथवा यों कहा जाय कि वह घर से निकाल दिया गया और अध्यापक की नौकरी के लिए भी अयोग्य समझा गया। राजेश्वरी के लिए उसने अपना सर्वस्व खो दिया। राजेश्वरी ने भी अविनाश के स्नेह-बन्धन में बँधकर मौज-मजा और अपने सारे ऐश्वर्य को तिलांजलि दे दी; परन्तु जब उसने सुना कि उसके साथ विवाह करने से अविनाश का समस्त भावी सुख मिट्टी में मिल जायगा, तो उसने अपने प्रियतम के सुख के लिए अपने प्रेम को बलि चढ़ाने का निश्चय कर लिया। कितना भव्य स्वार्थ-त्याग है; उपन्यासकार की कला यहाँ परम सीमा पर पहुँच गयी है। इस प्रेमी-युगल के निःस्वार्थ प्रेम ने जो ज्ञान-ज्योति प्रकट की उसमें समाज ने देखा कि संस्कारशील पद्मनाभ, ईश्वरभजन में लीन रहनेवाले शिवनाथ शास्त्री और नैष्ठिक ब्रह्मचारी धर्मानन्द शर्मा और इनके समान अन्य सब के नैतिक स्खलनों को वह सह लेता

है, यह केवल अन्याय ही नहीं, महान् पाप भी है। इसी प्रकार के किसी विचार ने सुमंतराय को पश्चात्ताप कराया और अविनाश और राजेश्वरी के ब्याह की अनुमति दिलायी।

समाज के अन्याय और उसकी अधमता से उत्पन्न हुई वेश्या, नारायणी के शब्दों में अपना रूप बताती है—'मैं मरी हूँ, महामारी हूँ, जीती जागती मौत हूँ।' इन शब्दों में उपालम्भ है, बदला लेने की भयङ्कर इच्छा है और समाज को नेस्तनाबूद कर डालने की धमकी है। वेश्याओं का इससे अधिक सच्चा चित्र भारत के किस कलाकार ने खींचा है?

इस स्थान पर 'महफिल' के प्रकरण का उल्लेख करना आवश्यक है। जिस महफिल का चित्र लेखक ने इस पुस्तक में खींचा है, वैसी महफिलें गुजरात में शायद ही कभी होती हों। ऐसी महफिलें तो उत्तर-भारत में हुआ करती हैं। तब एक गुजराती ने महफिल का ऐसा सच्चा और अच्छा चित्र कैसे खींचा? श्रीयुत् देसाई का काशी से जो सम्बन्ध है यह बात जो लोग जानते हैं, उन्हें महफिल प्रकरण पढ़कर और नायिका का नाम राजेश्वरी देखकर जरा भी आश्चर्य न होगा।

रजनी और रमा, पद्मनाभ और दुर्गावती, सुमंतराय और प्रभालक्ष्मी इन सब युगलों का चित्र कलाकर ने बड़ी ही निपुणता से खींचा है। पद्मनाभ और शिवनाथ शास्त्री की कमजोरियों को लेखक ने बड़ी ही शिष्ट; लेकिन साथ-ही-साथ बड़ी ही सूचक

शैली में दिखाया है। दोनों समझदार थे—संस्कारशील थे; परन्तु दोनों ही समाज की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहते। पाप करना और उसे छिपाना—केवल प्रतिष्ठा की एक भ्रममूलक भावना के लिए! दोनों के हृदय पश्चात्ताप से भर गये थे। एक ने आजन्म भगवत् भजन में और दूसरे ने लोकोपकार में अपने प्रायश्चित्त का मार्ग देखा।

इस उपन्यास के पात्रों की रूप-रेखा स्पष्ट है और कथा का रस बराबर बना रहता है। भाषा सरल और शिष्ट है।

श्रीयुत् पुरुषोत्तमलाल ने इस पुस्तक का अनुवाद करके अपने उत्साह और परिश्रम का पूर्ण परिचय दिया है। गुजराती होते हुए भी इस गुजराती पुस्तक का अनुवाद करना उनके लिए कठिन था। शताब्दियों से उत्तर भारत में रहनेवाले गुजराती अपनी मातृभाषा को प्रायः भूल जाते हैं; और जो उसको न भूलने का प्रयत्न भी करते हैं, वे इस भाषा में क्रमशः होनेवाले विकास का ज्ञान नहीं रखते। अतः गुजराती मुहाविरों का, कहावतों का, हिन्दी में ठीक-ठीक अनुवाद करना श्रीयुत् पुरुषोत्तमलाल के लिए कठिन था; परन्तु जहाँ तक हो सका है, उन्होंने ठीक-ठीक अनुवाद किया है। हिन्दी में इस पुस्तक के पढ़नेवालों को अनुवाद का दोष कहीं भी न मालूम होगा। इसके लिए श्रीयुत् पुरुषोत्तमलाल को बधाई है।

साथ ही श्रीयुत् विनोदशंकरजी व्यास के साहित्य-प्रेम की प्रशंसा भी जितनी की जाय उतनी थोड़ी है। हिन्दी-साहित्य में

मौलिक कृतियाँ तैयार करनेवाले कला-रसिक बहुत थोड़े हैं। इन इने-गिने लोगों में व्यासजी का स्थान बड़ा सम्मानित है। व्यासजी की साहित्य-सेवा में एक विशेषता है—स्वार्थ का पूर्ण अभाव। वे यदि चाहते, तो अधिक नाम और धन कमा सकते थे; परन्तु अपने लाभ की उन्होंने परवाह न की। हिन्दी-साहित्य का शौक साधारण जन-समाज में उत्पन्न करने के लिए वे साहित्य-रसिकों को इकट्ठा करते हैं, नवयुवकों को हिन्दी लिखने और पढ़ने में उत्साहित करते हैं और दूसरी भाषा के अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद कराकर अपने 'पुस्तक-मन्दिर' द्वारा प्रकाशित करते हैं। 'पूर्णिमा' का यह हिन्दी-अनुवाद भी उन्हीं के 'पुस्तक-मन्दिर' द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इसके लिए श्रीयुत् विनोद-शंकरजी धन्यवाद के पात्र हैं।

काशी
२६ मई, १९३६.

श्यामलाल, भैरवलाल मेढ़
(एम० ए० एल० एल० बी०)

'हम लोगों में जीवन ही कहाँ है ?—जीवन में रस ही कहाँ है ?'

'जो कुछ मरता-जीता जीवन है, जो कुछ थोड़ा-बहुत रस है, वह जितना है; उसे उतना ही रहने दो ! नये जीवन और नये रस के फेर में, जो है; कहीं उसे भी न खो देना ।'

'बूढ़ों की फिलॉसफी ! हम लोगों के देश में तो लड़के भी बूढ़े ही पैदा होते हैं ।'

'दो दिन से योरोपियन-नाच देखनेवालों, उस रस में डुबकी मारने के लिये जाते हुए, कहीं एकदम डूब न जाना । हिन्द और योरोप के बीच में तीन-तीन समुद्र पड़ते हैं, इसे भूलना नहीं ।'

अविनाश और रजनीकान्त दोनों मित्र रशियन नर्तकियों का नाच देखकर अर्ध-रात्रि में बातें करते हुए लौट रहे थे । अविनाश हिन्दू-समाज की तीव्र टीका करता । वह धनवान पिता का पुत्र था । परन्तु, रजनी साधारण स्थिति का था । उस पर मुसीबतें पड़ी थीं ! उन मुसीबतों ने उसे सिखा दिया था कि जो कुछ है, उसी में आनन्द मानो । संसार हमारे इच्छानुसार नहीं चल सकता । मानव-हृदयों में यदि अपने इच्छानुसार फेर-फार करना हो, तो उसको अपना सर्वस्व देना पड़ेगा । संसार को सर्वस्व अर्पण

करने के लिये रजनी तैयार नहीं था। विश्व-सुधार का उसने बीड़ा नहीं उठाया था।

'उन तीन समुद्रों को लाँघकर योरोपियन हिन्द में आये और हिन्द को जीता। समुद्रों से डरनेवाले हिन्दुस्तानी हिन्द के बाहर न जा सके और योरोपियनों के दास बने।'—अविनाश ने जरा आवेश में आकर कहा।

'इसलिए योरोपियनों का नाच सीखोगे, तो तुम योरोप जीत लोगे—क्यों ?'

'नाच तो अनेक उच्चतम जीवनों का एक अंग है। जिस जीवन का आविष्कार नाच में होता है, वह जीवन तुम अगर व्यतीत कर सको; तो अवश्य योरोप जीतोगे।'

अँधेरी रात थी। सड़क पर किसी का आवागमन नहीं होता था। आकाश-गंगा के किनारे तारा-गण दीपक के समान नृत्य कर रहे थे।

'तुम अपने मन में यह सोचते हो कि नाच केवल योरोप में ही है ?'

अविनाश हँसा।

'लड़कियाँ गरबा* गाती हैं, उसे तुम नाच का महत्व देना चाहते हो ?'

'नाच की प्राथमिक भूमिका तो है न ?'

'इसीलिए हम लोग प्राथमिक भूमिका में ही पड़े हैं।'

* गुजरात में स्त्रियाँ और बहुधा पुरुष भी, किसी उत्सव पर जो सामूहिक नृत्य और गायन करते हैं, वह गरबा कहा जाता है।

'भीलों का नृत्य देखा है ?'

'मुझे नहीं देखना है।'

पास के मंदिर से एक युवती आती हुई दिखाई दी। मंदिर में रहनेवाले शिवनाथ शास्त्री पूर्ण ब्रह्मचारी समझे जाते थे। उनका संस्कृत-ज्ञान अगाध कहा जाता था। साथ ही लोगों का यह भी कहना था कि वह एक अच्छे संगीताचार्य भी हैं।

इतनी रात को मंदिर में स्त्री क्यों दिखाई पड़ी ?

अविनाश का मकान पास आ गया था। पैदल चलने का शौक होने के कारण वह आज गाड़ी में नहीं बैठा था। रजनी-कान्त को नृत्य देखने के लिये वही ले गया था। रात को रजनी ने अविनाश के यहाँ सोने का निश्चय किया था।

वह युवती बहुत धीरे-धीरे आ रही थी। उसके साथ एक पुरुष और एक पौढ़ा स्त्री भी मालूम होती थी।

'शिवनाथ शास्त्री भी शौकीन मालूम होते हैं।'

'संस्कृत के सभी पंडित...'—रजनी ने धीरे से कहा।

वह तीनों व्यक्ति अविनाश और रजनी की तरफ ही आ रहे थे। रजनी ने अविनाश का हाथ पकड़ कर एक मकान की आड़ में खींचा।

'देखें तो सही वह कौन है !'—रजनी ने धीरे से कहा।

थोड़ी देर में वे तीनों व्यक्ति सड़क की एक लालटेन के प्रकाश के सामने आ पहुँचे। वह एक ऐसा स्थान था, जहाँ से दोनों मित्र उन लोगों को अच्छी तरह से देख सकते थे।

युवती का हाथ पकड़ने लिये पुरुष बहुत कुछ प्रयत्न कर

रहा था। युवती उसका हाथ बार-बार हटा देती थी। उसके साथ की दूसरी स्त्री ने कहा—'इतना आग्रह करते हैं; तो थोड़ी देर बैठकर चलें।'

'नहीं, आज नहीं। फिर किसी दिन देखा जायगा।'—युवती ने उत्तर दिया।

'इतने दिनों तक तो......' पुरुष की बोली का अंतिम भाग सुनाई नहीं दिया।

तीनों व्यक्तियों की छोटी होती हुई परछांही दूर चली गई और थोड़ी देर में तीनों व्यक्ति, तथा उनकी परछांही अंधकार में विलीन हो गई।

'क्यों! पहचाना?'—रजनी ने हँसते हुए पूछा।

दोनों मित्र अब चलने लगे।

'वही होंगे?'—अविनाश ने पूछा।

'अभी संदेह है? बहुत दूर नहीं गये होंगे। शंका-समाधान करना हो; तो आगे चलें।'

'नहीं, नहीं, हमें क्या आवश्यकता है?—और इसमें बुराई ही क्या है, किसी मित्र के साथ घूमने निकले होंगे।'

'मित्र?—स्त्री-मित्र?? हिन्दू-समाज में अभी देर है। वह भी अर्ध-रात्रि में घूमने का शौक हो; तब लोग कुछ दूसरा ही मामला समझते हैं।'

'पद्मनाभ जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के विरुद्ध मैं कुछ भी अनुमान नहीं कर सकता।'

'तुम्हारी दिलजमई हो जाय; तब भी नहीं?'

'दिलजमई किस तरह हो सकती है ?'

'वह दोनों औरतें कौन थीं, यह समझ में आया ?'

'दोनों औरतें थीं, इसमें अधिक समझने की क्या बात थी ?'

'हा.........हा.........हा.........उन दोनों की चाल-ढाल से तुम्हें कुछ मालूम नहीं हुआ ?'—रजनी ने हँसते हुए पूछा

'दूर से और क्या मालूम होता ? दोनों को देखकर मुझे इतना ही मालूम हुआ कि एक का सौन्दर्य उदय हो रहा है और दूसरी का डूब रहा है।'

'तब तो तुमने आज सौन्दर्य का 'अस्तोदय' देखा ! अविनाश ! तुमको आँखें हैं, इतना अच्छा है।'

इतने में अविनाश का मकान आ गया। मकान के आगे कम्पाउंड था। उसकी खिड़की खोलकर दोनों मित्र अंदर गये। खिड़की खोलने के साथ ही बूढ़े दरवान ने आवाज दी—'कौन है ?'

'मैं हूँ और अविनाश ! क्यों मियाँ, अभी जाग रहे हो ?'

'दरवान के भाग्य में जागरण ही रहता है। इतनी देर क्यों हुई ?'

'हमलोग अँग्रेजी नाच देखने गये थे।'—पास आते हुए रजनी ने उत्तर दिया।

'या अली ! नाच-वांच मत देखना भाई साहब ! वह तो बड़ी बुरी चीज है।'—बूढ़ा दरवान खाट पर बैठते हुए बोला।

'अरे ! वह तो अंग्रेजी नाच था, देशी नहीं ! अंग्रेजी नाच

में बड़े-बड़े पादरी भी आते हैं। देशी नाच की तरफ कोई देख तक नहीं सकता।'—हँसते हुए रजनी ने कहा और दोनों अंदर गये।

बूढ़ा मुहम्मद बहुत देर तक बैठा हुआ अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरता रहा। थोड़ी देर तक सोचने के बाद सिर हिलाया और खुदा का नाम लेकर सो गया।

घर के सब लोग सो गये थे। अविनाश के माता-पिता जानते थे कि वह योरोपियन नाच या नाटक देखने गया था। विलायत हो आनेवाले पुत्र को किसी प्रवृत्ति से रोकने का कारण उन लोगों के पास नहीं था। वह इंगलैण्ड जाकर एम० ए० और बैरिस्टर हो आया था। उसको वकालत करने की इच्छा नहीं थी। प्रोफेसरों का-सा शान्ति-पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता था। अंग्रेजों को जितनी सरलता से भारत में नौकरी मिल जाती है; उतनी सरलता से भारतीयों को नहीं मिलती। फिर भी विलायत की डिगरी होने के कारण, किसी विश्व-विद्यालय में नौकरी मिल जाना संभव था। यद्यपि अपने पिता की स्थिति का विचार करते हुए, उसे किसी प्रकार की नौकरी करने की आवश्यकता नहीं थी।

दोनों मित्र सो गये। लेटे-लेटे अविनाश ने रजनी से पूछा—

'रजनी! हम लोगों के देश में स्ट्रीट वाकर्स* हैं?'

'नहीं भाई! यह योरोप और अमेरिका के ही पल्ले पड़ा है।

---

* रात्रि में सड़क पर घूमकर पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट कर फँसानेवाला वेश्याओं का एक वर्ग।

स्त्रियों के पीछे पुरुष दौड़ें; यह यहाँ हो सकता है। किन्तु, स्त्रियाँ पुरुषों को पकड़ने के लिये रास्ता रोकें, यह हिन्दुस्तान में नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान की अनीति में भी कुछ मर्यादा है।'

'तुम्हारा हिन्द बहुत नीतिमान् है (!) किन्तु, इसको नीति इसे एक हजार वर्ष से तो पराधीन बनाए हुए है। अच्छा...आज सारा दर्शक-वर्ग मुग्ध हो गया; परंतु तुम एक बड़े परीक्षक की तरह हँस रहे थे। यह क्यों? क्या तुम्हारी समझ में नहीं आया?'

'नहीं, मेरी समझ में जरा भी नहीं आया। पैर जितने लम्बे हों; हवा में उतना फेंकना, आगे फेंकना, पीछे फेंकना और सिर तक उठाना, साथ ही हाथों को ऊपर उठाना, उचकना और सारे शरीर को लचकाने में मुझे कुछ आनंद नहीं आया। इस नृत्य में मुझे तो नृत्य की अपेक्षा सरकस की ही कला अधिक मालूम हुई। इससे तो कहीं अधिक हमलोगों के नाच मधुर, भावपूर्ण और मर्यादित होते हैं!'

'हमलोगों में नाच अब कहाँ है?'

'तुमको देखना है?'

'हाँ, अगर उसमें कला हो तो मैं जरूर देखूँगा, पर वह तो ऐसे अधम वर्ग के हाथ में है कि उसमें कला हो ही नहीं सकती।'

पद्मनाभ जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति जिस वर्ग में घूमते हों, उस वर्ग को तुम अधम क्यों कहते हो?'

'नहीं, नहीं, उस बात को जाने दो, मैं उसे नहीं मानता। अधमता में कला हो ही नहीं सकती।'

'विलायती नर्तकियाँ सब सती हैं, यह मैं जानता हूँ। चलो, अब नाच का विचार छोड़ दो और सोते समय ईश्वर का नाम लो! किसी दिन तुम्हारा यह भ्रम दूर हो जायगा।'—रजनी ने उत्तर दिया। और दोनों मित्रों ने बातचीत बंद कर दी।

२

अविनाश के पिता सुमंतराय पचास वर्ष के हो चुके थे। लड़का घर के कारबार में लगे, ऐसी उनकी हार्दिक इच्छा थी। उनकी इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट एजेन्सी को आढ़त थी। वर्तमान समय के व्यापार में इसकी अत्यन्त आवश्यकता रहती है। सुमंतराय ने अपने लड़के को अच्छी शिक्षा-दीक्षा दिलाई थी। वह विलायत से जब बैरिस्टर होकर आया, तब उनको ऐसा मालूम हुआ कि अब उनका भार हलका हो जायगा।

किन्तु, पुत्र की विचित्रताओं को वे जानते थे। अविनाश को जब व्यापार का कार्य करने के लिए कहा गया, तब उसने उलटा प्रश्न किया—'हमलोगों को इस बीच में क्यों पड़ना चाहिये? जिसको माल की आवश्यकता हो; वह सीधा मँगा ले।

'तुम जितना सोचते हो; व्यापार उतना सहज नहीं है। परदेश से जो माल आता है, वह हमलोगों की साख पर। यहाँ जो कारखाने खरीदते हैं, वे हमलोगों की साख पर। इस तरह से परदेशी और देशी व्यापारी बिना हमलोगों को बाँह पकड़े काम नहीं कर सकते।'

'मैं यही नहीं समझ पाता। हमको न तो माल खरीदना है और न बेचना। यही नहीं, हमको अपनी आँखों से माल देखना तक नहीं है—फिर बीच में दलाली ले लेने का कारण ? ऐसी बिना जरूरत की संस्था किस तरह से चलती है ?'

'तुम थोड़े दिन मेरे साथ काम करो, सब समझ में आ जायगा।'

'व्यापार में मेरा मन लगना कठिन प्रतीत होता है।'

'तब तुम पद्मनाभ के साथ वकालत का काम सीखो।'

सुमंतराय और पद्मनाभ में बहुत घनिष्ठता थी। व्यापारियों और वकीलों का मुख्य कार्य जाल बिछाने का है। एक का कार्य दूसरे के बिना नहीं चलता। जैसे-जैसे व्यापार बढ़ता जाता है, वैसे ही जाल भी बढ़ता जाता है और माल के बढ़ाव के साथ-ही-साथ वकीलों की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। एक केस में नवीन वकील पद्मनाभ को रखकर सुमंतराय ने उस पर अनुग्रह किया था। पद्मनाभ को उसमें अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का अच्छा मौका मिला। और देखते-देखते पद्मनाभ एक नामी वकील हो गया।

स्त्री-आन्दोलन में वह बहुत भाग लेता। कन्या-पाठशाला, विधवा-आश्रम, स्त्री-उद्योगालय, अनाथालय, प्रसूति-गृह इत्यादिक संस्थाओं में वह अपना बहुत-सा समय देता और बहुत-सा उपयोगी कार्य करता था। धीरे-धीरे सारे गुजरात प्रान्त की स्त्री-संस्थाओं से उसका संबन्ध हो गया और थोड़े ही दिनों के भीतर वह एक अच्छे वकील के अतिरिक्त एक सुधारक नेता भी बन गया।

उसने सुमंतराय के इच्छानुसार अविनाश को वकालत सिखाना शुरू किया। परन्तु अविनाश का मन उसमें जरा भी नहीं लगा। अर्थ-शून्य कागजातों में से अर्थ निकालना, नजीरें खोजना, कानूनों की बड़ी-बड़ी पुस्तकों में से अपने मतलब की बातें खोज निकालना, यह सब एक नए वकील को घबराहट में डाल देनेवाली चीजें होती हैं। अविनाश इससे भागता था—पद्मनाभ के दो चार बार कहने के बाद एकाध काम करता था।

'अविनाश! वकालत में इतनी शिथिलता से काम नहीं चल सकता। तुमने बैरिस्टरी कैसे पास की है?'—एक दिन पद्मनाभ ने पूछा।

'परीक्षा पास करने और वकालत करने में बहुत अन्तर मालूम पड़ता है।'

'तुम लिखते तो बहुत अच्छा हो; पर बहुत ही धीरे। तुम तो प्रोफेसर या मास्टर होने लायक हो।'

हिन्दुस्तान का उन्नतिशील जन-समुदाय ऐसा ही मानता है कि जिसमें वकील होने की, अफ़सर होने की, मिल-मालिक होने की या दलाल होने तक की भी योग्यता न हो, वह शिक्षक हो सकता है! जिसे कोई न पूछे, उसे पाठशाला शरण देती है।

पैसे के द्वारा बड़े आदमियत की नाप करनेवाली दुनियाँ मास्टरों की अपेक्षा प्रोफेसरों को अधिक सम्मान देती है। परन्तु दोनों ही को उपेक्षा भाव से देखती है।

'मास्टर हो न? हूँ', ऐसा कहकर मास्टरों पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करता है। दुनियाँ को यह जानना

आवश्यक है कि उसका काम वकीलों के बिना चल जायगा, व्यापारियों के बिना चल जायगा, और अगर बहुत ऊँची भूमिका की कल्पना करें तो शासकों के बिना भी चल जायगा—मगर मास्टरों के बिना नहीं चलेगा—स्वर्ण-युग में भी नहीं चलेगा।

'मुझे प्रोफेसर होना पसन्द है।'—अविनाश ने उत्तर दिया।

'वास्तव में तुम्हें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु खाली बैठना अच्छा नहीं। इतने दिनों में मैं यह अच्छी तरह से जान गया कि तुमसे वकालात नहीं होगी। मेरी नजर में एक प्रोफेसर की जगह खाली है—तुम्हारी इच्छा हो तो मैं बातचीत करूँ।'

'जी हाँ, मेरी इच्छा पूर्णरूप से है।'

पद्मनाभ ने सुमंतराय से बात की है। यह सुनकर वह उदास हो गये। अन्त में एक त्याज्य धंधे की ओर पुत्र की नजर गई।

पद्मनाभ ने प्रोफेसरी के महत्व का वर्णन किया। सुमंतराय ने कहा—'आखिर जगह तो एक मास्टर की है—एक बड़ा मास्टर और दूसरा छोटा मास्टर!'

'मैं समझता हूँ कि अविनाश इस कार्य में चमक उठेगा।'

'हूँ' तिरस्कार और उदासी भरी एक हँसी हँसकर सुमंतराय ने कहा—'ठीक है, अगर वह यही चाहता है तो होने दो।'

पुत्र के लिये उनको बहुत अनुराग था। अविनाश में एक भी दोष नहीं था। विद्यार्थी अवस्था में उसने अपने परिश्रम का अच्छा परिचय दिया था। किन्तु कितने अच्छे विद्यार्थी दुनियाँ

में आगे बढ़ पाते हैं ? दुनियादारी में केवल विद्या से ही सफलता नहीं मिलती। इसे दुनिया का दुर्भाग्य कहें या विद्या का ?

पुत्र के लिये उन्होंने संपत्ति एकत्र की थी। इसलिये लड़के को कष्ट नहीं होगा—यह सुमंतराय जानते थे। उन्होंने पद्मनाभ को अविनाश के इच्छानुसार नौकरी दिलाने की अनुमति दे दी। किन्तु उनके हृदय में चोट अवश्य लगी—लड़का बाप से सवाया होने के बदले बाप की बराबरी भी नहीं कर सका।

पद्मनाभ ने अविनाश के लिये पूर्णरूप से उद्योग करना शुरू कर दिया। उद्योग करना, नौकरी पाने के लिये आवश्यक है। सनदी नौकरियों में दबाव या सिफारिश की जगह नहीं होती, ऐसा स्पष्ट नियम है। किन्तु उसमें यह सब होता ही है, ऐसा कहनेवाले बहुत से असफल लोग मिल जायँगे।

अविनाश और रजनी जिस दिन नाच देखकर आये थे उसके दूसरे ही दिन पद्मनाभ ने अविनाश को बुलाया।

'मुझे किसलिये बुलाया होगा ?'—अविनाश ने कहा। चिट्ठी में बुलाने का कारण नहीं लिखा था।

'कोई केस तैयार करना होगा।'—रजनी ने कारण की कल्पना की।

'नहीं, उसके लिये तो मैं पहले ही इनकार कर चुका हूँ।'

'गत-रात्रि में वह किसके साथ घूमते थे, यह तुमको समझना होगा। अगर ऐसा हो तो गुरु-शिष्य का संबंध आदर्शपूर्ण कहा जायगा।'

'तुम्हारे मन से अभी वह बात गई नहीं। मैं विश्वासपूर्वक

कहता हूँ कि हमलोगों ने जिसे देखा, वह पद्मनाभ नहीं थे। अंधेरे में हमलोगों से भूल हुई।'

'तुमको दुनियाँ में कोई आदमी खराब मालूम होता है? इसीमें धोखा खाओगे। व्यापार अच्छा नहीं लगा, वकालत अच्छी नहीं लगी। नाहक विलायत जाकर रुपया बरबाद कर आये। वहाँ भी कुछ देखा-सुना नहीं; और जैसे थे वैसे वापस आये। एक नई बात सीख आये कि विलायती नाच का अर्थ है कला का उत्तम आदर्श।'

'रजनी! तुम समझते हो कि तुम्हारे जैसा व्यवहार-कुशल मनुष्य दूसरा कोई नहीं है? क्यों?'

'सम्भव है दूसरा कोई हो भी, पर तुम तो नहीं हो?'

'बहुत अच्छा, तुम्हारी शादी हुई, इसलिये तुम्हारी योग्यता बढ़ गई!'

'बेशक, देखो तुमसे कोई शादी करता है?'

'मैं मूर्ख और नासमझ स्त्रियों से शादी करना चाहता ही नहीं।'

'मूर्ख पर तुम चाहे जितना जोर दो फिर भी मैं कुछ परवाह नहीं करता।'

'नहीं, नहीं, मैं तुम्हारे लिये कुछ भी नहीं कहता। रमा-भाभी के लिये मेरे मन में बहुत सम्मान है। तुमको बुरा लगा हो तो मैं माफी......'

'अब बहुत हुआ, विलायत जाकर तुमलोग अपनी रीति-रस्मों को इतना कृत्रिम कर देते हो कि तुम लोगों को चलते-फिरते माफी माँगनी पड़ती है। जल्दी चलो, वह गाड़ीवाला

तैयार होकर खड़ा है, नहीं तो फिर उससे माफी माँगनी पड़ेगी।'

अविनाश और रजनी दोनों तैयार होकर गाड़ी में बैठे। पद्मनाभ का मकान आने पर अविनाश उतर पड़ा और गाड़ीवान को रजनी के घर जाने के लिये कहकर बोला—'अब फिर कब मिलोगे ?'

'अब तुम्हीं आना, वह तुमको बहुत याद करती थी।'

'तुम दोनों ही आओ तो कैसा ?'

'तुम्हारे जैसे बड़े आदमियों के यहाँ हमारे जैसों से औरत लेकर नहीं आया जाता, समझे ?'

'बस, बस, मैं परसों गाड़ी भेज दूँगा। शाम को रमा भाभी के बिना अवोगे तो घर में घुसने न दूँगा !'

रजनी हँसा। गाड़ी चलने लगी। उसके मन में विचार उठ रहे थे—कैसा भोला-भाला और निर्दोष युवक है।

३

अविनाश ऊपर गया। अगले खंड में दो स्त्रियाँ बैठी थीं। ऐसा मालूम होता था कि पद्मनाभ की प्रतीक्षा कर रही हैं।

'कलवाली तो नहीं हैं ?'—अविनाश के मन में विचार उठा। उसने जरा ध्यान से दोनों की तरफ देखा। रात में देखी हुई औरतें ज्यादा सुन्दर थीं। कदाचित् रात्रि के मायावी प्रकाश के कारण वे अधिक सुन्दर प्रतीत हुई थीं।

अविनाश भीतर गया। उसे भीतर जाने की आज्ञा थी। किन्तु उस आज्ञा का उपयोग करने का प्रसंग शायद ही कभी आता था। पुरुष मात्र दीवानखाने का ही अधिकारी होता है। दीवानखाने से घर में जाने के लिये पहले गृहिणी के सत्कार की आवश्यकता होती है। पद्मनाभ की स्त्री दुर्गावती को शायद ही किसी का सत्कार करने को फुरसत मिलती। वह अधिकतर बीमार रहतीं। और जब बीमार न रहतीं तब गुस्से में ही हैं, ऐसा मालूम होता। अविनाश का उनसे परिचय था। किन्तु एक दो बात करने के अतिरिक्त कभी ज्यादा बातें करने का मौका उसे नहीं मिला था।

अधिकतर पद्मनाभ से दीवानखाने में ही भेंट हो जाती। यदि वे दीवानखाने में न मिलते तो अंदर दुर्गावती की सुश्रूषा में लगे होते या उन्हें मनाते होते। कई बार ऐसा भी होता कि दुर्गावती बीमार भी होती और गुस्से में भी। उस समय पद्मनाभ की बहुत बड़ी परीक्षा होती। केवल बीमारी या क्रोध शान्त करना हो तो पुरुष फिर भी कुछ कर सकता है। किन्तु दोनों महाकार्य जब एक साथ करने हों तब पुरुष नहीं—महापुरुष की आवश्यकता होती है। पद्मनाभ को कभी-कभी इस महत्ता के शिखर पर चढ़ना पड़ता।

अविनाश ने अंदर जाकर पद्मनाभ और दुर्गावती को नमस्कार किया। पास की एक कुर्सी पर बैठते हुए दुर्गावती की तबीयत का हाल पूछा—'कहिए? आज कैसी तबीयत है?'

बहुत से मनुष्य प्रत्येक समय बीमार रहने में ही प्रसन्न

रहते हैं। यह भी एक प्रकार का शौक है। दुर्गावती को ऐसा ही शौक था, वह वास्तव में बीमार रहती थीं, यह कहना मुश्किल है।

वह दुबली लकड़ी-जैसी सीधी सपाट थीं। उनकी आँखें चपल और तेजस्विनी थीं। परन्तु मुख भरा हुआ न होने के कारण वे शरीर के परिमाण से ज्यादा बड़ी और आकर्षक लगती थीं। साथ ही ऐसा भी मालूम पड़ता था कि वह सम्पूर्ण जगत् के साथ लड़ने के लिये तैयार हैं।

'तबीयत ? इसकी तो बात ही मत करो !'—दुर्गावती ने कहा। तबीयत की बात न कहने के लिये वह प्रत्येक व्यक्ति से ऐसा ही कहती थीं। किन्तु यदि कोई मूर्ख उनकी तबीयत का हाल न पूछता तो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देतीं कि फिर कभी वह घर में पैर भी न रख सके।

'इतना घबराती क्यों हैं ? दवा से गत मास में आपका वजन बढ़ा था, इस महीने में भी बढ़ने की इच्छा रखिए।'

'इच्छा ? अब तो एक ही इच्छा है !'

'क्या ?'—पद्मनाभ ने पूछा। दुर्गावती की इच्छा परि र्ण करने के लिये पद्मनाभ सदा उत्सुक रहते थे।

'मैं मरू तो मैं भी सब कष्टों से छुटकारा पा जाऊँ और तुम भी'—दुर्गावती ने अपनी इच्छा प्रदर्शित की। परन्तु यह इच्छा अन्तःकरण की नहीं थी, इसलिए ईश्वर उसे परिपूर्ण भी नहीं करते थे।

'ऐसा क्यों कहती हो ?'—कुछ हँसते हुए पद्मनाभ ने कहा।

'मैं सच कहती हूँ।'—जगत का एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि व्याकरण का प्रथम पुरुष कभी झूठ नहीं बोलता।

'रोगी मनुष्य में कभी-कभी ऐसे विचार उठते हैं, पर...' सहानुभूति दर्शाते हुए अविनाश को रोक कर दुर्गावती ने कहा।

'मैं बीमार क्यों पड़ती हूँ; यह क्या किसी को नहीं मालूम है? इनको तो एक तरफ मुवक्किलों का काफ़िला और दूसरी तरफ औरतों का काफ़िला! बस, फिर इनको परमानन्द है!'

'बिना समझे-सोचे जो मन में आता है वह बक देती हो?' पद्मनाभ ने ज़रा रुखाई से कहा। और अविनाश से बोले—'अविनाश!'

'जी।'

'इसीलिये दो औरतें सबेरे से आकर बैठी हैं?'—दुर्गावती ने बीच से बात काटकर कहा।

'तुम तो समझती नहीं। सबेरे से क्या, वह तो कल से ही मेरे प्राण खा रही हैं।'—पद्मनाभ की आँखें तीव्र हो रही थीं। उनमें बातचीत बंद करने की धमकी प्रत्यक्ष दिखाई देती थी। पर दुर्गावती धमकी से परे थी। पद्मनाभ ने बात पूरी करके अविनाश की तरफ देखा। निर्दोष अविनाश ने उसकी सहायता के लिये कहा—'जी हाँ, ठीक बात है। कल अर्ध-रात्रि में मैंने भी दो स्त्रियों को आपके साथ जाते हुए देखा था।'

'क्या? अर्ध-रात्रि! दो स्त्रियाँ!! किसकी बात तुम कर रहे हो? तुम भी पागल हो गये हो क्या?'—चमककर पद्मनाभ ने कहा—

'देखो तुमको कल या परसों यहाँ से जाना होगा। प्रोफेसरी की जगह करीब-करीब ठीक हो गई है। पढ़ो यह पत्र।'

पद्मनाभ ने अविनाश के हाथ में पत्र दिया। अविनाश ने पढ़कर लौटा दिया।

'अभी एक तार आवेगा। उसके अनुसार तुमको कल या परसों कब जाना होगा, वह मैं तुमको बता दूँगा। मुलाकात में विचित्र उत्तर देकर किनारे आई हुई नाव को डुबा मत देना।'—पद्मनाभ ने हिदायत की और जिनसे मुलाकात करने के लिये जाना था; उनका नाम और स्वभाव बतलाया। उसकी सफलता का आधार मुलाकात के ऊपर ही है यह समझाकर कहा—'अब तुमको जाना हो तो जाओ।'

अविनाश खड़ा हो गया।

'जाते हुए उन दोनों औरतों से मेरी तरफ से कहना कि मैं उनसे इस समय नहीं मिल सकूँगा। उनका पत्र मिल गया है और मुझसे हो सकेगा तो मैं सभा में हाजिर होऊँगा।'

दुर्गावती की आँखें चमक रही थीं। वह एकाएक हँसकर बोलीं—'नहीं, नहीं, तुम जाओ और मिलो। अविवेक करने की आवश्यकता नहीं है। मेरी कसम! जाओ। मैं थोड़ी देर सो रहती हूँ।'

पद्मनाभ तो वहाँ से भागना ही चाहता था। घर का वातावरण उसे उद्विग्न कर देता था। वह उठा और अविनाश के पीछे चलते-चलते बोला—'मैं थोड़ी देर में वापस आता हूँ।'

दोनों आदमी तीन-चार कदम आगे जाकर चौंक कर खड़े हो गये। दुर्गावती ने आवाज दी—'अविनाश!'

'जी, आया।'—अविनाश पीछे लौटा। साथ ही पद्मनाभ भी लौटा और कहने लगा—'तुमको अविनाश से क्या काम है ? कुछ चाहिये ?'

'नहीं, नहीं, आवश्यकता होने से नौकर तो हैं ही ! तुम जाओ।'

'तब अविनाश को क्यों रोकती हो ?'

'इनको तुम्हारी तरह फुरसत न हो तो भले ही जायँ। मेरे मन में आया कि थोड़ी देर इन्हें बैठाऊँ और इनके माँ-बाप का हाल-चाल पूछूँ।'

'मुझको कुछ काम नहीं है। आप जब तक कहेंगी; बैठा रहूँगा।'—अविनाश ने रोगी पर दया दिखाते हुए कहा।

'तुमको डाक्टरों ने ज्यादा बात करने से मना किया है।'—पद्मनाभ ने कहा।

अविनाश यहाँ बैठकर न जाने क्या बक दे—पद्मनाभ को यही डर था।

'तो मैं कब ज्यादा बोलती हूँ ?'—दुर्गावती ने कहा। बहुत बोलनेवाले के मन में सदा यही प्रश्न रहता है।

'मैं बहुत बात नहीं करने दूँगा। आप चिन्ता मत करिये।'—ऐसा कहकर अविनाश पहली ही बार आग्रह करती हुई गृहिणी को प्रसन्न करने के लिए कुर्सी पर बैठ गया।

पद्मनाभ मुँह चढ़ाकर वहाँ से चला गया। पद्मनाभ जैसे ही घर के बाहर गया, वैसे ही दुर्गावती में चपलता आई। उन्होंने पूछा—'अविनाश ! वह दोनों स्त्रियाँ कौन थीं ? जो आज आई हैं वह तो नहीं ?'

'मैं समझा नहीं।'—अविनाश को प्रश्न का पूर्वापर समझ में नहीं आया।

'क्यों? तुमने ही तो कहा था कि कल रात को दो औरतें इनके साथ थीं?'

'पर वे यह नहीं थीं।'

'अर्ध-रात्रि का समय था?'

'जी हाँ, इसीलिये ठीक-ठीक पहचानना मुश्किल था।'

'पर 'यह' तो थे न?'

सांसारिक दाँव-पेचों से अनभिज्ञ अविनाश को इतनी देर बाद मालूम हुआ कि दुर्गावती अपने पति के विरुद्ध गवाही ले रही हैं। दुर्गावती को पद्मनाभ के लिये भारी संदेह रहता था। वह उस संदेह को झूठे-सच्चे कारणों से पुष्ट करके आप भी दुखी होतीं और साथ ही पति को भी दुखी करने की कोशिश करती। वह दोनों के क्लेशमय जीवन में और क्लेश बढ़ाने के लिए मेरा उपयोग कर रही हैं, ऐसा अविनाश को मालूम हुआ।

'ठीक कैसे कह सकता हूँ—अँधेरी रात थी।'—अविनाश पहले-पहल अर्धसत्य बोला।

'तब, तुमने 'उनके' मुँह पर कहा कि 'वह' थे, यह गलत है?'

'गलत ही होगा, नहीं तो वह स्वीकार करते? अँधेरे में किसी के बदले किसी का भ्रम हो जाता है!'

'वह थे, ऐसा तुम्हारा विश्वास नहीं है?'

'जी नहीं, बिलकुल नहीं।'

यह सुन एक दीर्घ निश्वास छोड़कर दुर्गावती ने आँखें बन्द

कर लीं। अविनाश थोड़ी देर बैठा रहा। उसे समझ में आ गया कि अब उसकी आवश्यकता नहीं है। उसने कहा—'मैं आज्ञा लेता हूँ।'

आँखें खोले बिना सिर हिलाकर दुर्गावती ने अपनी सम्मति दे दी। अविनाश की अब उन्हें आवश्यकता नहीं थी। अगर पति के विरुद्ध कोई मीठी चुगली खाने के लिए वह तैयार होता तो दुर्गावती और भी बैठने के लिये कहती।

जाते-जाते अविनाश के मन में विचार उठा।

ऐसी पत्नी होने से ही पद्मनाभ घर के बाहर सुख खोजते हैं।

४

रजनीकान्त अपनी छोटी-सी कोठरी में बैठा अखबार पढ़ रहा था। दो कोठरियाँ ही उसका सम्पूर्ण घर था। एक छोटी मेज, एक कुर्सी और एक अरामकुर्सी, यही उसका फर्निचर था। जमीन पर एक चटाई बिछी हुई थी। तीन-चार तसवीरें दीवार में लगी हुई थीं। कोठरी स्वच्छ थी।

वह ग्रेजुएट था। ग्रेजुएट होने के बाद मनुष्य में एक ही योग्यता होती है—नौकरी करने की! अच्छी जान-पहिचान हो तो बड़ी नौकरी मिलती है और अच्छी जान-पहिचान न हो तो साधारण नौकरी मिलती है—किन्तु दोनों ही हालत में रहती है नौकरी ही।

रजनीकान्त को सौ रुपया महीना मिलता था। इसलिये सब लोग समझते थे कि उसका आरम्भ अच्छा है। इस शुभ

आरम्भ में से वह तीस रुपए किराये का देता, पच्चीस रुपया अपनी माँ को भेजता, और बाकी में खाना-पीना और मौज-मस्ती करता ! यह उसका कार्य-क्रम था ।

उसके पड़ोस में उसी के जैसे, निर्धनता से युद्ध करनेवाले एक वीर पुरुष रहते थे । सच्चे वीर सिर पर मृत्यु को मँडराते हुए देखकर भी हँसा करते हैं । रजनी का भी युद्ध-प्रवेश हँसते हुए था ।

पास की कोठरी में चार-पाँच लड़के एक साथ रो पड़े । वे भी युद्ध की शिक्षा ले रहे हैं; ऐसा मालूम होता था । रजनी ने अखबार से आँख हटाई । उसका ध्यान पास की कोठरी की तरफ गया ।

'ओह......सब दुश्मन हैं । चुप रहते हो या मैं आकर सीधा करूँ ।'

लड़कों के कोलाहल से भी तेज एक स्त्री का स्वर सुनाई दिया ।

'माँ ! मेरा बबुआ भाई ने ले लिया ।'—एक लड़की की आवाज सुनाई दी ।

युद्ध का महत्व वस्तु पर आश्रित नहीं होता, बल्कि वस्तु की खींचा-तानी पर होता है ।

'मैंने नहीं लिया है । यह तो मेरा है ।'—एक छोटे लड़के की आवाज आई ।

भाई-बहन फिर झगड़ने लगे । दूसरे तीन छोटे-छोटे लड़के भी चिल्लाने लगे । कोलाहल होने लगा । एकाएक सब चुप हो गये । झगड़ते हुए लड़कों को कोई एक भयानक भय सामने आता मालूम हुआ ।

'अभी मैं सबको बबुआ देती हूँ—ले ! ले ! ले !' उस स्त्री का तीव्र स्वर फिर सुनाई दिया और साथ ही खुली देह पर धमाके पड़ते सुनाई दिये।

भीतर की कोठरी से रजनी की पत्नी रमा जल्दी से बाहर आकर उधर जाने लगी।

'दौड़ने क्यों लगी ?'—रजनी ने पूछा।

'गंगा बहन लड़कों को मार डालेंगी। मैं जरा हो आऊँ।'

'पर साथ ही तुम्हें भी एकाद रसीद कर दें तो ?'

प्रश्न का कुछ उत्तर दिए बिना ही रमा चली गई। रजनी ने फिर अखबार पढ़ना आरम्भ किया। इतने में जूते की खड़-खड़ाहट सुनाई दी। आँखें उठाकर देखा तो अविनाश आता हुआ दिखाई दिया।

'इस समय तुम कहाँ से ?'—अविनाश को बैठाकर रजनी ने पूछा।

'मुझे अचानक आना पड़ा। मैं अभी बाहर जाता हूँ। कालेज वालों ने मुझे मुलाकात के लिये बुलाया है। रमा भाभी कहाँ हैं ?'

'वह परोपकार करने गई है ! बहुत दूर नहीं—पास ही में !'

'इतने में रमा आ गई। उसकी गोद में एक लड़का था और दोनों तरफ एक-एक लड़कियाँ, तीनों रो रहे थे।

'अविनाश भाई ! आप कहाँ से ? हम लोग तो आज शाम को आपके यहाँ आने वाले हैं।'—रमा ने कहा।

'उसके लिये मैं मना करने आया हूँ।'

'अविनाश को मूर्ख स्त्रियाँ अच्छी नहीं लगतीं।'—रजनी ने मुस्कुराते हुए कहा।

'इसका कहना मत सुनिए।'—अविनाश ने कहा।

'वाह! मेरे सामने ही मेरे विरुद्ध बलवा करने की सलाह दे रहे हो?'

'स्त्रियाँ जब तक बलवा नहीं करेंगी, तब तक तुम पुरुष लोग उनको आगे नहीं आने दोगे।'

'रमा! चलो आगे जाओ! जिसमें तुमको बलवा न करना पड़े।'

'मुझे बलवा भी नहीं करना है, आगे भी नहीं आना है। मैं जरा इन लड़कों को कुछ खाने को दे आऊँ।'—कहकर रमा दूसरी कोठरी में चली गई।

दोनों कोठरियाँ पास-पास होने से, और उनमें आने-जाने का रास्ता बीच में होने से, भीतर बैठकर बाहर के आदमियों से बातचीत हो सकती थी।

'रमा भाभी! यह सब लड़के कहाँ से इकट्ठे कर लिये?'—बाहर से ही अविनाश ने पूछा।

'इस वृत्तांत के पीछे एक बहुत बड़ा इतिहास है। इनको संसार भर के लड़के ला दें; तब भी कम ही होंगे।'—रजनी ने कहा।

रमा दरवाजे के पास आकर खड़ी थी। वह हँस रही थी। सादे स्वच्छ वस्त्र पहने हँसती हुई रमा आकर्षक लगती थी।

'तुम मुझसे वह इतिहास कहो। मैं अभी आधा घंटा बैठूँगा।'—अविनाश ने कहा।

'आज शाम का अखबार पढ़ना। उसमें बड़े-बड़े अक्षरों में

लिखा होगा—'माता की मार से लड़कों को बचा लानेवाली दया की देवी।'

'यह खबर तुम देखो तो समझ लेना कि वह रमा का उल्लेख है।'

'कैसा स्वभाव है! सब बात में हँसी! ठीक है...पर अविनाश भाई! आप आधे घंटे में क्यों चले जायँगे? भोजन किए बिना न जाने दूँगी।'—रमा बोली।

'यह, बड़ा प्रोफेसर होनेवाला है।'—रजनी ने कहा।

'कहाँ?'

'यहाँ से डेढ सौ कोस की दूरी पर एक कालेज है। वहाँ जाना है।'

'चलो! तब तो बहुत अच्छा है। मैं कुछ तैयार कर दूँ।'

'नहीं नहीं, रमा भाभी! कुछ मत करिए।'

'क्यों? मूर्ख स्त्री के हाथ का खाना नहीं अच्छा लगेगा?' रमा ने हँसकर कहा। शिक्षित स्त्रियों के लिये अविनाश को बहुत सम्मान था।

'आपको कौन अशिक्षित कह सकता है?'

'तुम पूछ देखो, यह कितना पढ़ी हैं!'—रजनी ने कहा।

'अंग्रेजी अखबार पढ़ते तो मैंने एक बार देखा था।'

'वह तो उसमें से ए० बी० सी० डी० पहचानती होंगी।'

भीतर एक लड़का रोने लगा। रमाने उसे चुप कराया।

वह तीनों लड़कों को प्यार के साथ धीरे-धीरे खिला रही थी। थोड़ी देर बाद दो रकाबियों में कुछ जलपान लेकर रमा ने दोनों के सामने रखा। दोनों खाने लगे।

'यह दही-चीनी खा लीजिये। सगुन है।' रमा ने एक कटोरा लाकर अविनाश के सामने रखा।

सगुन हो या न हो—पर उसमें स्वाद तो था ही।

'अब समय हो गया है। मैं 'वहाँ से आने पर आपको बुलाऊँगा। रमा भाभी! माफ करिएगा! मुझको एकाएक जाना पड़ रहा है।'

'नहीं जी, इसमें क्या?'

'मैं रजनी को स्टेशन ले जाता हूँ। कुछ हर्ज तो नहीं है न?'

'वाह! मुझसे क्यों पूछते हैं?'

'तुमको ले जायगा तब मुझसे पूछ लेगा। क्यों!'—रजनी ने कहा।

'चलो चलो, कपड़े पहनो! समय हो गया है।'—अविनाश ने कहा।

'मुझको कितनी देर! तुम्हारी तरह दो-चार घंटे थोड़े ही लगेंगे।'

रजनी कपड़े पहनने लगा। रमा लड़कों को उनकी माँ के पास जल्दी से देने चली गई।

'बेचारी गंगा बहन भी क्या करे? रसोई करनी, घर देखना, और चार-पाँच लड़कों को पालना।'—लौटकर रमा ने कहा।

'रजनी! तुमको ऐसी स्त्री मिली है कि हरएक को देखकर ईर्षा हो!'

रमा ने रोली-अक्षत लाकर अविनाश को तिलक कर के आशीर्वाद दिया—'भगवान् आपकी मनोकामना पूर्ण करे।'

'पर रमा ! इसको अपने घर में बहुत न आने देना चाहिये ।'—रजनी ने कहा ।

'क्यों ?'

'तुम्हारी प्रशंसा करता है और मेरा जी उड़ जाता है ।'

रमा ने नकली गुस्सा दिखाया । अविनाश रजनी का हाथ पकड़ कर खींच ले गया । समय बहुत कम था ।

५

गाड़ी छूटने वाली थी । रजनी और अविनाश दौड़ने लगे । दूसरे दर्जे के सब डिब्बे भरे हुए थे । गार्ड ने सीटी बजाई । रजनी ने भरी हुई गाड़ी में से एक खाली डब्बा खोज निकाला । उसमें दो स्त्रियाँ बैठी हुई थीं और उस डब्बे के आगे एक छोटी-सी भीड़ लगी हुई थी ।

रजनी ने भीड़ में से रास्ता किया । अविनाश गाड़ी में बैठ गया । भीड़ में से एक आदमी बोला—भाग्यवान् है !'

कुछ आदमी हँसने लगे । रजनी कुली को देख रहा था । इतने में गाड़ी चलने लगी । दौड़ते हुए कुली ने एक पेटी डब्बे के भीतर फेंकी, और एक छोटा बेग अविनाश के हाथ में दिया । धीरे-धीरे चलती हुई गाड़ी के साथ कुली भी दौड़ रहा था । रजनी के साथ स्टेशन पर कुछ बातचीत न हो सकने के कारण अविनाश ने एक हाथ दरवाजे पर रखकर दूसरे हाथ से रुमाल हिलाया । अच्छी मजदूरी पाने के कारण दौड़ते हुए कुली ने

यात्री को प्रसन्न करने के लिये गाड़ी का दरवाजा जोर से बंद कर दिया और वह रुक गया।

अविनाश के मुँह से एक सिसकार निकली। दरवाजे के भीतर उसकी अंगुली रह गई थी।

गाड़ी स्टेशन के बाहर निकल गई थी। पहले जल्दी में और बाद में अँगुली की व्यथा के कारण, उसके ध्यान में यह नहीं आया कि सब लोग उसके डब्बे की तरफ देख रहे थे। कष्ट के कारण वह अंगुली को रुमाल में दबा कर बैठा था।

सामने बैठी हुई दोनों स्त्रियों के वस्त्र-अलंकार और मुखाकृति उसको जरा विचित्र मालूम हुई। कष्ट में रहते हुए भी उसने देखा—स्त्रियों में से एक प्रौढ़ा थी, और दूसरी १८–२० वर्ष की युवती। अविनाश ने बहुत सी औरतें देखी थीं। किन्तु यह दोनों विचित्र ढङ्ग की थीं।

'बाबू साहब! आपके हाथ से खून निकलता है।'—युवती ने कहा।

अविनाश ने दर्द करते हुए हाथ की तरफ देखा। रुमाल खून से भर गया था। उसने वह रुमाल हटा दिया और दूसरे रुमाल के लिये जेब में हाथ डाला। किन्तु जेब में उस समय दूसरा रुमाल नहीं था।

उसकी अँगुली से खून टपक रहा था। उसने बेग उठाया, ऐसा करते समय दो तीन बूँद खून उसके कपड़ों पर गिर गया। वह घबड़ा उठा।

युवती ने उसकी घबराहट देख ली। नौकरों की अधीनता

में रहनेवाले परवश ही रहते हैं। उसने पूछा—'बेग से क्या निकालना है, बाबू साहब ?'

'दूसरा रुमाल।'

'आप पहले पानी में हाथ डुबा रखिए। मैं रुमाल देती हूँ।'—यह कहकर उसने सुराही से एक प्याले में पानी निकाल कर दिया।

डाक्टर लोग चोट लगने पर आयोडिन लगाते हैं—पानी नहीं। यह अविनाश जानता था। पर चलती गाड़ी में आयोडिन नहीं मिल सकता था। खून बह रहा था। युवती के आदेशानुसार चले बिना दूसरा कोई रास्ता नहीं था। उसने प्याले में हाथ डाल दिया।

दो तीन मिनट के भीतर प्याले का पानी लाल हो गया। युवती ने प्याले का पानी बाहर फेंक दिया और दूसरा पानी भरकर अविनाश को दिया। इस बार पानी में लाली कम हुई। युवती ने अपने पास से एक सफेद रुमाल निकालकर अविनाश को दिया।

'पट्टी बाँध दूँ ?'—उसने पूछा।

'आपने बहुत अनुग्रह किया, अब मैं बाँध लूँगा।'—अविनाश ने विचित्र ढंग से रुमाल अंगुली के ऊपर लपेटने का प्रयत्न किया—परन्तु वह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। अंगुली के ऊपर पुपली की तरह बना हुआ रुमाल अंगुली पर से निकल गया। युवती हँसने लगी।

'ऐसे नहीं, दीजिए मैं बाँध दूँ।'—कहकर उसने रुमाल लेकर धो डाला, और बीच से उसे फाड़कर सफाई के साथ पट्टी बाँध दी।

पट्टी बँधवाते समय अविनाश की दृष्टि युवती के हाथ पर पड़ी। स्त्री का हाथ इतना सुन्दर होता है, यह अनुभव उसे पहली ही बार हुआ। उसने बहुत सी युवतियाँ देखी थीं। बहुतों के साथ हाथ मिलाया था। परन्तु स्त्रियों के हाथ में सौन्दर्य होता है; ऐसा अनुमान उसे स्वप्न में भी न था।

गोरे हाथों के गोल अग्रभाग में सौन्दर्य की छटा-सी मालूम होती थी और पट्टी बाँधती हुई अंगुलियाँ जैसे गुलछड़ी खेलती हुई मालूम हुईं। उसकी इच्छा हुई कि वह युवती के हाथ पर अपना हाथ रखे। इस इच्छा को रोकने के पूर्व युवती का मुख देखने की दूसरी इच्छा उत्पन्न हुई। इतने में ही पट्टी बाँध कर युवती ने कहा 'अब खून बंद हो गया। पट्टी तर रखिएगा।'

अविनाश को मालूम हुआ कि युवती के गले में से कोयल बोल रही है! उसने युवती की तरफ देखा। सुरमा लगी हुई लम्बी आँखों में उसने अथाह गहराई देखी। वह सौन्दर्य-सागर में डुबकी मारकर गहराई में उतर गया।

'आपने बहुत अनुग्रह किया, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'—अविनाश ने कहा।

'यह कौन-सी बड़ी बात है?'—कह कर वह अपनी जगह बैठ गई।

'आप न होतीं तो इतना उपकार कौन करता? आपका शुभ नाम?'

'राजेश्वरी।'—उसके कंठ से बंसी जैसा स्वर निकला।

अविनाश को यह नाम भी विचित्र मालूम हुआ। उसका नाम भी रूप की ही तरह मधुर मालूम पड़ता था।

'आप कहाँ जायँगी ?'

युवती सहायता करने के लिये जितनी तत्पर थी, उतनी बात करने के लिये नहीं। उसे जहाँ जाना था वह बता दिया।

'मुझको भी उसी तरफ जाना है।'—अविनाश ने कहा।

'अच्छा ?'—उसने केवल इतना ही कहा। अविनाश को उसका इतिहास जानने की इच्छा नहीं थी। परन्तु कृतज्ञता से दबे हुए अविनाश को उस परोपकारी युवती का पूरा परिचय जानना था।

प्रौढ़ा स्त्री बैठी हुई पान लगा रही थी। उसने दो बीड़े लगाकर राजेश्वरी के हाथ में दिये। राजेश्वरी ने अविनाश से पूछा—'आप पान खाइएगा ?'

'पर आप उठकर क्यों आती हैं ?'—पान देने आई हुई राजेश्वरी से अविनाश ने कहा।

'इसमें क्या ? मुझको आदत पड़ गई है।'—वह फिर अपनी जगह पर लौट गई।

'यह आपकी कौन हैं ?'—पान लगानेवाली की तरफ देखकर अविनाश ने युवती से पूछा। वह भी मुख में पान रख रही थी।

'यह मेरी माँ हैं।'

'आपकी माताजी का दर्शन करके बड़ी खुशी हुई। आपके पिताजी क्या करते हैं ?'—राजेश्वरी की माँ को नमस्कार करके उसने पूछा।

माँ का मुख पान से भर गया था। यह प्रश्न सुनकर माँ-बेटी ने एक दूसरे की तरफ देखा। माँ ओठ बंद कर के हँसी, परन्तु राजेश्वरी खिलखिला कर हँस पड़ी।

अविनाश को इस असभ्य व्यवहार का कारण नहीं मालूम हुआ। प्रश्न का उत्तर न देकर, वह हँसी क्यों ? इसमें हँसने की क्या बात थी ? उसको बुरा लगा। उसने बातचीत बंद कर दी। अपमान सहन करने को वह तैयार नहीं था। अपमान करने-वाली चाहे स्वर्ग की अप्सरा क्यों न हो।

उसने एक किताब निकाल कर पढ़ना शुरू किया। एक दो पेज पढ़ा होगा कि उसकी नजर किताब पर से हटकर राजेश्वरी पर जा लगी। राजेश्वरी हँस रही थी या उसके मुँह पर सर्वदा हँसी खेला करती थी, यह कहना कठिन था। उसकी रसभरी आँखें चमक रही थीं। उसमें एक विचित्र चंचलता थी। सिर हिलाए बिना तिरछी नजरों से उसने अविनाश की तरफ एक दो बार देखा। अविनाश की और उसकी आँखें चार हो गईं। अविनाश को याद आया कि वह किताब पढ़ने बैठा था—गाड़ी में बैठी रूपवती युवती का सौन्दर्य देखने के लिये नहीं।

वह फिर पढ़ने लगा। परन्तु उसके पढ़ने में विक्षेप पड़ता ही रहा। उसका ध्यान राजेश्वरी की तरफ ही रहता था। उसने शिक्षित युवतियाँ देखी थीं, अशिक्षित युवतियाँ देखी थीं, नगर-वासी और ग्रामवासी ललनाएँ भी देखी थीं। इन सबों से न्यारा एक नवीन सौन्दर्य, एक न्यारी छटा राजेश्वरी में क्यों दिखाई पड़ती थी ? उसके कपड़े भी अजीब थे। उसके सिर पर से कपड़ा बार बार हट जाता था। उसका सिर ढाँकने का ढंग भी विचित्र था।

अब उसने पढ़ना बंद कर दिया। उससे पढ़ा नहीं जाता

था। वह पटरी पर पैर फैलाकर सो गया। निर्दोष अविनाश के मन में कुटिलता ने प्रवेश किया।

वह सिर पर हाथ रखकर सो गया। यह एक ऐसा ढङ्ग है कि सब कुछ देखते रहने पर भी लोग यह समझते हैं कि वह सो रहा है।

वह राजेश्वरी को बराबर देखता रहा। स्त्रियों के सुन्दर चित्र राजेश्वरी में मूर्तिमान होते हुए मालूम हुए। वह अप्सरा है या मानवी! यही विचार उसके मन में उठ रहे थे।

६

अविनाश यह भूल गया कि वह अनुचित कार्य कर रहा है। लेटे-लेटे उसने राजेश्वरी के देह-सौन्दर्य को अपने मन में चित्रित कर लिया। कभी-कभी राजेश्वरी की आँखें भी अविनाश की तरफ फिर जाती थीं।

निर्लज्जता से देखती हुई पुरुषों की आँखों का राजेश्वरी को अनुभव था। परन्तु अविनाश का इस तरह देखना; उसे कुतूहल पैदा कर रहा था। पुरुषों के स्वभाव का उसे परिचय था। इसलिये वह यह समझ गई कि सोने के बहाने अविनाश उसे ही देख रहा है। इस तरह निहारनेवाले उसको दृष्टि में बहुत कम आये थे। डब्बे में वह और उसकी माँ जानकी, ये ही दो व्यक्ति थे। अकेली औरतों को देखकर पुरुष पशु बन जाता है। उस पर भी जिस वर्ग की वह थी, उस वर्ग के साथ

तो पुरुषों का व्यवहार निर्लज्जता और लम्पटतापूर्ण होता है।

एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी। सोने का बहना और अधिक न हो सका। अविनाश उठकर बैठ गया और खिड़की से बाहर की तरफ देखने लगा। पान, बीड़ी, पूड़ी, मिठाई, लोगों का टहलना, यात्रियों का चढ़ना-उतरना, ये सब मिलकर स्टेशन को कोलाहल-मय बना रहे थे।

अविनाश के डब्बे के सामने चार-पाँच युवक खड़े थे। दो-एक हँस रहे थे। दो एक मूछों पर ताव देकर डब्बे के भीतर देख रहे थे। दो युवक टी० टी० आईयों को उस डब्बे से आगे कोई काम नहीं मालूम होता था। सम्पूर्ण गाड़ो का स्वामित्व करनेवाले गार्ड को भी शायद उस डब्बे से विशेष स्नेह था। सिर पर बोझा लेकर जाते हुए एक कुली ने मुँह से सीटी बजाकर एक नजर इधर भी देख लिया। तिलक मुद्रा से युक्त एक पंडित-जी ने एक तिरछी नजर डाली।

'अविनाश! तुम कहाँ से?'—अविनाश के कंधे पर हाथ रखकर किसी ने पूछा। उसने घूमकर देखा—पूछनेवाला उसका सहपाठी सुरेश था। जहाँ उसे जाना था, वहीं सुरेश भी जा रहा था।

'मुझको प्रोफेसरी की जगह देने के पहले, उन लोगों ने मिलने के लिये बुलाया है।'

'किन्तु वकालत जैसा अच्छा रोजगार......अरे अविनाश! तुम कहाँ बैठे हो?'—भीतर नजर पड़ते ही उसने बीच ही में बात रोककर कहा।

'क्यों क्या बात है ?'

'देखते नहीं हो; तुम्हारा साथ कैसा है ?'

'कैसा है ?'

'यह भीड़ खड़ी है, उससे भी कुछ समझ में नहीं आता ।'

'दो स्त्रियों के साथ बैठने से मैं बिगड़ जाऊँगा—क्यों ?'

'हैं तो स्त्रियाँ हो पर बहुत बाधाओं से भरी हुई !'

'मुझको वैसी नहीं मालूम होतीं । बल्कि मेरे लिये तो उनका साथ अच्छा ही हुआ । देखो—यह पट्टी ! अगर ये न होतीं तो.........।'

'तुमसे मैं जो कहता हूँ, उसे मान जाओ । तुम मेरे साथ चलकर बैठो । मैं तुम्हारा सामान उठा ले चलता हूँ ।'

'नहीं, नहीं, यहीं ठीक है ।'

इतने में गार्ड ने सीटी बजाकर सबको चौंका दिया । सुरेश ने जाते हुए आँखों में सम्पूर्ण ज्ञान भर कर कहा—'हूँ...... अविनाश ! तुम भी सीख गये अगले स्टेशन पर मिलूँगा ।'

अदृश्य होते हुए सुरेश को आँखों का मतलब समझने के लिये, गाड़ी से बाहर होने पर, अविनाश ने भीतर देखा ।

'बाबू साहब ! अब आपका हाथ कैसा है ?'

अपने प्रश्न का उत्तर न देकर हँसनेवाली स्त्रियों को जवाब देना या नहीं, यह विचार करते हुए अविनाश ने राजेश्वरी की मधुर आवाज सुनी—'बाबू साहब तो हम लोगों से नाराज हैं, नहीं बोलेंगे !'

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है—पर आपलोग हँसीं, यह मुझको

अच्छा नहीं लगा।'—राजेश्वरी के साथ बातचीत करने के लिये वह उत्सुक था।

थोड़ी देर तक सब लोग चुप रहे। राजेश्वरी ने एक बार ध्यान से अविनाश की तरफ देखा। दूसरा स्टेशन आने पर राजेश्वरी ने पूछा—'आप क्या करते हैं ?'

'अभी तो मैं वकालत करता हूँ—पर उसमें मन नहीं लगता। इसलिये प्रोफेसर होने का विचार है।'

इतने में सुरेश आ गया। वह भीतर आकर अविनाश के बगल में बैठ गया। अपने मित्र को खराब औरतों के साथ न बैठने की शिक्षा देनेवाला, स्वयं उन्हीं के साथ आकर बैठ गया। इस समय उसकी वाणी और नेत्रों में अतिशय चंचलता आ गई थी।

वह बहुत बातें करने लगा। हँसने और हँसाने का प्रयत्न करने लगा।

'आज इतना अधिक क्यों बोलते हो ?'—अविनाश ने पूछा।

तुम एकदम भौंचक क्यों हो गये हो ?'—उसने उलटा प्रश्न किया। वह फिर बोलने लगा। इस बार उसने अंग्रेजी में बातचीत शुरू की।

नौजवानों को यह सनक रहती है कि अंग्रेजी में बोलने से लोगों पर बड़ा प्रभाव होता है। दूसरे वह यह भी जानना चाहता था कि अविनाश से और उन लोगों से परिचय कैसे हुआ।

'तुमसे कब से जान-पहचान है ?'

'यहीं, गाड़ी में से ही।'

'देखो, किसी को मालूम न हो।'

'इसे छिपाने की कुछ आवश्यकता नहीं है।'

'किन्तु इस जान-पहचान को छिपा रखना चाहिये।'

गाड़ी रुकी। राजेश्वरी और जानकी उतरने की तैयारी करने लगीं। अविनाश को यह अच्छा नहीं लगा। दो-तीन आदमी आकर सामान उतारने लगे। उनके पास कुछ वाद्य-यंत्र कपड़ों में लपेटे हुए थे।

'आप यहीं उतरेंगी?'—अविनाश ने पूछा।

'जी हाँ।'—राजेश्वरी ने उत्तर दिया।

'मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ।'

'इसमें क्या? मैंने किया ही क्या है?'

'आप न होतीं तो मेरी अंगुली का...'

'अरे, यह क्या कहते हैं? इसमें कौन सी बड़ी बात है?'

'मुझको यह बात छोटी नहीं मालूम होती। मैं फिर आपसे मिलना चाहता हूँ। आपका मकान कहाँ है?'

'मैं जहाँ रहती हूँ, भगवान् आपको वहाँ न लावे!'

'कारण?'—अविनाश ने आश्चर्य से पूछा।

'आप अभी तक समझे नहीं। हम लोग गाने-बजानेवाली हैं।'—इतना कहकर वह दोनों उतर पड़ीं। अविनाश खड़ा हो गया था। सुरेश ने उसका हाथ पकड़कर बैठाते हुए कहा—'बहुत हो चुका। यदि स्टेशन पर अपनी मित्रता का प्रदर्शन न करोगे तो क्या काम न चलेगा?'

अविनाश विचार में पड़ गया। राजेश्वरी ने अपना रोज-

गार कहा, तब राजेश्वरी भी हँसी, लोगों का उसके डब्बे की तरफ होता आकर्षण, इकट्ठी होती हुई भीड़, इन सबों का कारण, उसे मालूम हो गया। सुरेश के व्यवहार से उसे गुस्सा चढ़ गया। वह बोला—'मुझसे मित्रता है, तो उसमें दूसरों को क्या ?'

'दूसरों को कुछ भी नहीं, पर ऐसी मित्रता छिपाकर रक्खो।'

'मैं बुरा करता होऊँ, तो छिपाऊँ। मैं नहीं समझता कि मैं कुछ बुरा करता हूँ।'

'तुम न समझते हो, दुनियाँ तो समझती है ?'

'मुझको दुनिया की परवाह नहीं है। जो दुनिया गायकों के गान में आनन्दानुभव करती है, वह उनकी निन्दा क्यों करती है ?'

लोगों का ध्यान खींचती हुई राजेश्वरी प्लाटफार्म पर उतरी। उसने पीछे सिर घुमाया। सुरेश का जवाब देना छोड़कर अविनाश ने उधर देखा। उसने हाथ उठाया। दरवाजे के सामने से राजेश्वरी ने भी हाथ उठाकर जवाब दिया और भीड़ में अदृश्य हो गई। चमकती तारिका बादलों में छिप गई।

अविनाश बैठ गया। बैठते हुए उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़ी।

सुरेश हँसा। अविनाश को क्रोध चढ़ आया। गाड़ी चली। अविनाश ने जरा कड़ाई से पूछा—'हँसते क्यों हो ?'

हँसू नहीं तो क्या करूँ ? वेश्या के पीछे निश्वास छोड़ने वाला मैंने तुम्हीं को देखा।

'कितनी सुन्दर और कलामय है !'

'अरे, ऐसी न जाने कितनी पड़ी हैं। इस रास्ते पर पैर न रक्खो नहीं तो बर्बाद हो जाओगे। हाँ, यह दूसरी बात है कि कभी-कभी लपक-झपक हो जाय। परन्तु हमें अपना मन चंचल न होने देना चाहिए।'

लुक-छिपकर मौज उड़ानेवाले व्यापर-कुशल लोगों पर अविनाश को क्रोध चढ़ आया। उसने सुरेश को कुछ जवाब नहीं दिया। दूसरे स्टेशन पर सुरेश अपने डब्बे में चला गया। फिर उतरने की जगह छोड़कर पुनः उसके दर्शन नहीं हुए। उतरने पर अविनाश ने पूछा—'सुरेश ! फिर तुम दिखाई नहीं दिए ?'

'जरा सो गया था।'

'उसके पहले तुम मेरे पास क्यों आते थे ?'

'तुमसे बातचीत करने।'

'सच कहते हो ? इसीलिये ?'

'और नहीं तो क्या ?'

'यह अपने हृदय से पूछो।'

'मेरा हृदय मेरे कहने के अनुसार ही उत्तर देता है।'

अविनाश ने और कुछ नहीं पूछा। उसे विश्वास हो गया कि मुझको उपदेश देने आनेवाला सुरेश रूपवती राजेश्वरी के आकर्षण से ही आता था।

७

अविनाश ने कालेजवालों से मुलाकात की। उस जगह के लिये पाँच उम्मेदवार और भी थे। सभी काम के योग्य थे, किन्तु सफलता अविनाश को ही मिली। काम प्रारंभ करने में अभी दो महीने की देर थी। अविनाश 'अपॉइन्टमेन्ट-लेटर' लेकर वापस आया।

मनमाना काम मिलने पर भी अविनाश के मुख पर प्रसन्नता नहीं दिखाई पड़ी। सुमंतराय को भी अपने पुत्र की आनन्द-रहित मुख-मुद्रा मालूम हुई। उन्होंने एक दिन पूछा—'अविनाश तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न ?'

'जी हाँ।'

'तब तुम्हारे मुख पर उदासी क्यों दिखाई देती है ?'

'यों ही।'

सुमंतराय अनुभवी थे। वे जानते थे कि बीस से पचीस वर्ष तक की अवस्था मनुष्य-जीवन में आँधी जैसी होती है। इस अवस्था में मनुष्य अपने कौमार्य को छोड़कर पूर्णता लाभ करता है। उस समय प्रेम-पिपासा जागृत होती है। सुमंतराय ने यही सोचकर अविनाश की शादी के लिये सब कुछ ठीक कर रखा था। अभी तक तो अविनाश शादी से इनकार ही करता रहा। सुमंतराय जानते थे कि वह स्वयं ठिकाने आ जायगा। अब उसकी विकलता देखकर वे समझ गये कि अविनाश किसी युवती के लिए व्यग्र हो रहा है।

'आजकल तुम घूमने भी नहीं जाते !'

'कुछ अच्छा नहीं लगता ।'—विकल बने हुए अविनाश को घर के बाहर निकलना भी अच्छा नहीं लगता था ।

'रजनी भी नहीं आया । अगर हो सके तो आज उसको बुलाओ !'—उन्हें आशा थी कि अपने मुँह से न कहनेवाला पुत्र अपने मित्र के द्वारा अवश्य स्वीकृति देगा ।

'जी मैं कहला दूँगा ।'—इतना कहकर अविनाश वहाँ से हट गया । दो दिन के भीतर उसने दो बार भी रजनी को नहीं याद किया था । राजेश्वरी के सौन्दर्य-सागर में डुबकी मारता अविनाश का मन; रजनी जैसे मित्र को भी याद नहीं कर पाया था । उसने आज तक सौन्दर्य की झलक नहीं देखी थी, यह तो नहीं कहा जा सकता । किन्तु उन झलकों में मादकता न थी । पूर्ण चन्द्र को देखकर उमड़ते हुए समुद्र की भाँति उसके हृदय को विह्वल कर देनेवाली कोई मादकता थी तो वह राजेश्वरी का रूपदर्शन हीं ।

पिता की सूचना उसे अच्छी मालूम पड़ी । रजनी से मिलने पर हृदय की विकलता कम होगी, उसने सोचा—'रजनी को यहाँ बुलाऊँ, या मैं उसके घर जाऊँ ?'

उसे किस चीज़ के लिये विकलता थी, यह समझ में नहीं आता था । उसे कुछ चाहता था, वह किसी को चाहता था । वह 'कुछ' और 'कोई' बार बार राजेश्वरी का रूप धारण कर लेता था । इस विकलता से छूटने के लिये वह रजनी से मिलने के निमित्त घर से बाहर निकला ।

रजनी घर पर नहीं था। रमा भी नहीं थी। उनके घर में ताला लगा हुआ था। पड़ोसियों से पूछने पर कुछ मालूम नहीं हुआ। घर वापस जाना व्यर्थ था। गाड़ी में बैठकर घूमने से उन्हीं विचारों को फिर से आमंत्रण देना था। पैदल चलने से, लोगों की भीड़ में मिलने से, मन दूसरी तरफ लग जायगा—यह सोचकर उसने गाड़ी वापस भेज दी।

वह बस्ती से दूर निकल गया। उस समय दिन के प्रकाश को ढँकने के लिये संध्या परदे डाल रही थी। एक योरोपियन युवक, एक युवती की कमर में हाथ डालकर बार-बार उसके मुख की तरफ देखता हुआ चल रहा था। बीच-बीच में उस युवती का हास्य भी सुनाई देता था। आस-पास की प्राकृतिक छटा को देखकर वे लोग आनन्द में मग्न हो रहे थे। इस युगल जोड़ी को देखकर अविनाश के शरीर का रक्त तेजी से बहने लगा।

'कैसा आनन्द लूट रहे हैं ?'—उसके मन में विचार उठा।

'हिन्दुओं में आनन्द ही कहाँ है ? स्त्री की तरफ देखने से ही पाप लग जाता है ! अपनी पत्नी की तरफ भी नहीं देख सकते ! और स्त्रियों में देखने योग्य होता ही क्या है ? न उत्साह......न चंचलता......न आकर्षण......आकर्षण तो कितनों में होता है......रमा भाभी जरूर अच्छी हैं......और राजेश्वरी......?'

राजेश्वरी का ध्यान आने से उसका हृदय धड़कने लगा। उसका मुख आँखों के आगे नाचने लगा। इसी विचार से लुट-

कारा पाने के लिये ही तो वह पैदल चल रहा था। किन्तु वह द्विगुण बल से उसे फिर से घेरने लगा।

'भाई कुछ देते जाओ, सबेरे से भूखी हूँ।'—एक स्त्री भीख माँग रही थी।

बढ़ते हुए अंधकार के कारण वह उस स्त्री को दूर से देख नहीं सका। किन्तु उसके मन में करुणा उत्पन्न हुई। स्त्री को माँगना पड़े, यह समाज के लिये लज्जा की बात है। उसका चेहरा दिखाई नहीं देता था। उसके बैठने का ढंग आकर्षक था। राजेश्वरी तो नहीं बैठी होगी? आह! उसकी आवाज शुद्ध, मीठी और साफ थी। और इसकी आवाज अनुनासिक है। उसके पास जाते हुए अविनाश ने दो चमकती हुई आँखें देखीं। चमकती आँखों के नीचे सुन्दर मुख देखने की आशा रखनेवाले अविनाश ने एक विकृत मुख देखा—वह थरथरा उठा।

उसने एक रुपया निकाल कर फेंका और घूमकर जिस रास्ते से आया था उसी तरफ लौट गया। भिखारिनी की मुखाकृति देख वह भयभीत हुआ। वह क्यों इतनी भयानक थी? मानव-मुख पर जैसे जीवित मृत्यु हो! ऐसा क्यों? सोचते-सोचते उसे समझ में आया कि कपाल के नीचे बैठी हुई नाक ने ही उसके चेहरे को भयंकरता प्रदान की है।

ज्यों-ज्यों वह उस भयंकर चेहरे को मन से दूर करने की कोशिश करने लगा त्यों-त्यों वह उसके समीप आने लगा।

सोने के समय इस मुख की स्मृति रहने से भयंकर स्वप्न आवेंगे, ऐसा भय उसे मालूम हुआ। इसी दृश्य को हृदय में धारण कर घर जाना अशक्य था। कोई अच्छा चेहरा देखे बिना इसकी छाप मिटना भी असंभव था। सुन्दर रूप की कल्पना ने उसे फिर राजेश्वरी का ध्यान दिलाया।

एकाएक उसके हृदय में दर्द होने लगा। राजेश्वरी को देखे बिना जीना कठिन है—ऐसा उसे मालूम हुआ। तत्काल उसने निश्चय किया कि आज राजेश्वरी को देखूँगा। एक रास्ते के सामने आकर उसके पैर रुक गये।

'इस रास्ते से जाने पर राजेश्वरी नहीं मिलेगी ?'

वह सोचने लगा—मकान का पता पूछने पर उसने कुछ विचित्र ही उत्तर दिया था। उसका पता न जानना कितनी बड़ी भूल है !

उस भूल को सुधारने का यही रास्ता है। उसने निश्चय किया। रात हो गई थी, दीपक जगमगा रहे थे। लोगों का आना-जाना जारी था। बड़ा रास्ता छोड़कर एक तंग मार्ग से जाना था। यह छोटा रास्ता सब के मजाक का विषय था, किन्तु जितना मजाक का विषय था, उतना ही सबके आकर्षण का भी। इस रास्ते में जानेवाला प्रत्येक मनुष्य, एक दृष्टि इधर डाले बिना नहीं जाता था।

राजेश्वरी एक गानेवाली है। गानेवालियों और गणिकाओं का एक ही महल्ला होना चाहिये या पास-पास होना चाहिये। ऐसा अविनाश का अनुमान था। उसे राजेश्वरी से परिचित

होने का अभिमान था। और इस समय भी, राजेश्वरी को याद करके वह कोई बुरा कार्य कर रहा है, यह मानने के लिये, वह तैयार नहीं था। फिर भी इस गली में घुसते हुए वह जरा हिचका, उसने चारो तरफ देखा। कोई जान-पहिचान का नहीं है, ऐसा विश्वास करके—चोरी करके भागते हुए चोर की तरह वह उस गली में घुस गया।

८

उसे मालूम हुआ कि वह किसी नई दुनिया में आ गया है। वह जब दस-ग्यारह वर्ष का था, तब ऐसी ही किसी गली से होकर एक बार स्कूल से लौटते समय उसकी गाड़ी निकली थी। दूसरी बार कालेज के कुछ लड़कों के साथ वह यहाँ आया था। परन्तु साहस न होने के कारण सब गली में से ही वापस चले गये थे। यहाँ आने पर अविनाश को वे दोनों प्रसंग याद आए।

गली में बहुत भीड़भाड़ थी। कुछ लोग गुट बाँधकर घूम रहे थे। कुछ अकेले ही घूमते थे। दो-तीन सत्तरह-अठारह वर्ष के लड़के गली में खड़े होकर एक गणिका के साथ हाथापाई कर रहे थे। एक सफेद मूँछवाला औरतों की परीक्षा कर रहा है ऐसा मालूम हो रहा था।

अविनाश का हृदय धड़कने लगा। पैर थरथराने लगे।

कान लाल हो गये। एक मकान की छाया में वह खड़ा हो गया।

'आओ, आओ न!'

मकान के दरवाजे से एक गणिका अविनाश को बुला रही थी। उसी समय एक आदमी उसके घर से बाहर निकल रहा था।

'कल शाम को तुम्हारी राह देखूँगी।'

अविनाश को आश्चर्य हुआ—एक आदमी निकलकर जा रहा है—दूसरे को वह बुला रही है। क्या राजेश्वरी भी ऐसा ही करती होगी? राजेश्वरी का ख्याल आते ही उसका शरीर काँप उठा।

वह विचार में मग्न चला जा रहा था। किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा। अविनाश खड़ा हो गया।

'मिस्टर! मेरे साथ आइये।'—उस आदमी ने कहा।

'कहाँ?'—अविनाश ने पूछा। वह अनजान मनुष्य उसे कहाँ ले जाना चाहता है, यह उसकी समझ में नहीं आया।

'अच्छी से अच्छी दिखाऊँगा।'

'पर क्या......?'

'खानदानी है, पढ़ी-लिखी है। फिर दूसरी जगह जायँगे ही नहीं।'

अब अविनाश की समझ में आया। उसने सुना था कि ऐसी जगहों में दलाल रहा करते हैं। उसे बडी घृणा मालूम हुई। किन्तु तुरत ही उसके विचार में आया कि वह भी किसी को खोजने के

लिये ही आया है—फिर क्यों न इस आदमी से फायदा उठावे ? उसने कहा—'मुझको दूसरों की आवश्यकता नहीं है। मैं राजेश्वरी को देखना चाहता हूँ।'

'अरे राजेश्वरी को भी भूल जाइएगा—मेरे साथ चलिये तो।'

'नहीं, उसके सिवा दूसरी जगह नहीं जाना है।'

दलाल जरा रुका, राजेश्वरी कौन है, मानो वह याद करता हो। फिर उसने हँसकर कहा—'चलिये,—चलिये ! मैं वहीं ले चलता हूँ।' वह बातें करने लगा।

'राजेश्वरी के सिवा और कहीं नहीं गये हैं ?'

'मैं तो कहीं भी नहीं गया हूँ—राजेश्वरी के यहाँ भी नहीं।

'पहली ही बार यहाँ आए हैं ?'

'हाँ।'—हाँ कहने के बाद अविनाश को मालूम हुआ कि अपना अज्ञान प्रकट करना ठीक नहीं था।

'कोई हर्ज नहीं, आपका मन प्रसन्न करूँगा। एक दो रुपया निकालिये न !' क्यों ? किसलिये ? दो रुपया इसे देने का कारण ? मन में इस प्रकार का तर्क-वितर्क करते हुए अविनाश ने दो रुपये निकाल कर उसके हाथ में रख दिये।

आस-पास के मकानों के नीचे पान की दूकानें थीं। दलाल अविनाश को एक पान की दूकान पर ले गया।

'क्यों साहब ! क्या लूँ ? कैंचो या हाथी ?'

'क्या चीज ?'—दलाल की अगम्य बोली उसकी समझ में नहीं आई।

'सिगरेट ! सिगरेट !!'

'मैं सिगरेट नहीं पीता।'

'ऐसा? कोई हर्ज नहीं—चार आना पैसा निकालिये न? पान तो लीजिये!'

'पान भी नहीं चाहिए।'

'वाह साहब! यहाँ आकर पान भी नहीं खाइएगा? ओ, ला दो डिबिया!'—कह कर उसने दूकानदार से दो डिबिया सिगरेट ली।

'पैसा नाम लिखूँ?'

'उधार की बात ही नहीं—मेहरबान, चार आने दे दीजिये।'

'फुटकर नहीं है।'—अविनाश की आवाज में क्रोध मालूम होता था।

'तब, नाम लिख लो।'—दलाल आगे चला। थोड़ी दूर चलकर उसने पूछा—'किसका नाम लिया था, आपने।'

'राजेश्वरी।'

'हाँ, हाँ, यहीं—भीतर चलिये।'

६

दरवाजे पर एक मजबूत लठैत बैठा था। दलाल ने सीढ़ी चढ़ते हुए कहा—'क्यों दोस्त!'

'आइए आइए!'—उसने अविनाश का स्वागत किया।

ऊपर एक सजा हुआ कमरा था। उसमें चार-पाँच युवतियाँ

बैठी थीं। अविनाश को घर में घुसते देखकर वे सब दौड़ आईं। एक ने उसका हाथ पकड़ लिया। अविनाश जरा पीछे हट गया। युवतियों का ऐसा जमघट उसने नहीं देखा था।

'जाइए, जाइए, बैठिए मौज करिए।'—कहकर दलाल ने एक युवती की तरफ आँख मारी।

'मुझे तो राजेश्वरी से काम है।'

'अभी आती है, बैठिए तो।'—कहकर दलाल अदृश्य हो गया।

वह समझा कि राजेश्वरी यहीं रहती होगी। वह स्त्रियों से घिरा हुआ आगे बढ़ा। एक बार तो उसे मालूम हुआ कि वह स्वप्न देख रहा है—परंतु जब एक युवती ने मधुर स्वर के साथ उसे गद्दी पर बैठाया, तब वह समझ गया कि यह स्वप्न नहीं है, बल्कि वास्तव में वह एक गणिका-गृह में है। वह काँप उठा। वह युवती समझ गई कि अविनाश इस जीवन से अनभिज्ञ है। वह बातें करने लगी।

'क्यों बाबूजी, राजेश्वरी को क्यों खोजते हैं? हमलोग क्या उससे कम हैं?'

'नहीं, नहीं, मुझको तो किसी से भी कुछ काम नहीं है। राजेश्वरी के प्रति केवल कृतज्ञता प्रकट करनी है!'

'कहिए आपके लिये क्या मँगाऊँ? बीअर या ह्विस्की?'

'मैं शराब नहीं पीता।'—विलायत में भी शराब से भागने वाले अविनाश का, वहाँ से उठ जाने का मन हुआ।

'जिंजर मँगाऊँ !'—कहकर एक लड़के को बुलाया। लड़के को छः जिंजर की बोतलें लाने का उसने हुक्म दिया।

अविनाश को आश्चर्य हुआ—इतना छोटा लड़का यहाँ काम करता है ! लड़का जिंजर ले आया। अविनाश कमरे को ध्यान से देख रहा था। दो-तीन बड़े-बड़े शीशे, सब के प्रतिबिम्ब, सबको नकल उतार कर कमरे की झूठी मर्यादा बढ़ा रहे थे। नग्न या अर्धनग्न चित्र, कमरे के वातावरण में विलासवृत्ति पोषण करने का जीवित कार्य कर रहे थे। कमरे के बगल में छोटी-छोटी कोठरियों में पलँग बिछे हुए थे और आसपास घूमती या बैठी हुई रूपवती ललनाएँ, अनुकूल हाव-भाव द्वारा मोह की मदिरा ढाल रही थीं। यह नन्दन-वन निर्मल मनोवृत्तिवाले अविनाश को क्षणभर आकृष्ट किए रहा।

परन्तु उसकी मनोवृत्ति में कम मलीनता होने के कारण वह बार बार उद्विग्न हो जाता था। शराब की चर्चा ने उसे चौंका दिया था। युवती सिगरेट पीने लगी। अविनाश को और भी बुरा मालूम हुआ। युवती ने एक सिगरेट उसके हाथ में दिया।

'मैं नहीं पीता।'

'अरे नहीं, झूठ मत बोलिए।'

'मैं सच कहता हूँ—मुझे सिगरेट अच्छा नहीं लगता।'

सबकी सब युवतियाँ हँस पड़ीं। अविनाश के पास बैठी हुई युवती ने पूछा—'तब, मेरा पीना भी अच्छा न लगता होगा ?'

'नहीं।'

'मैं फेंक दूँ ?'

'जरूर ।'

'आप एक बार पीना कबूल करिये'—कहकर उसने अविनाश की तरफ धुँआँ फेंका, और एक सिगरेट फिर उसके हाथ में रख दिया। अविनाश के मन में एक तरंग उठी। उसने अपने मन को रोका। उसकी चेष्टा से अगर एक युवती सिगरेट पीना छोड़ दे तो बहुत अच्छा। उसने सिगरेट को दो अँगुलियों में धरकर मुँह में लगाया। इस बार फिर सब हँस पड़ीं।

अविनाश भौंचक्का हो गया। उसे मालूम नहीं हुआ कि यह सब क्यों हँसती हैं, उसके पास में बैठी हुई युवती ने कहा—'आप तो उलटा हाथ रखते हैं। देखिए—ऐसे पीजिये!' कहकर वह फिर पीने लगी।

अविनाश को अपनी गलती मालूम हो गई। हथेली मुँह की तरफ रहनी चाहिये। उसने उलटा हाथ रखकर पीना शुरू किया था। उसने युवती को सुधारने का प्रयत्न छोड़कर सिगरेट हाथ से फेंक दिया। युवती ने अविनाश का हाथ पकड़ लिया।

'हाँ हाँ, यह क्या करते हैं?'

'मुझको नहीं चाहिए।'

'तब, आपको जो चाहिए वह दूँ।'—अविनाश के हाथ पर अपना हाथ फेरती हुई वह पास खिसक आई। उसकी आँखों में आकर्षण था। अविनाश के हृदय में गुदगुदी उत्पन्न हुई, वह युवती की तरफ ध्यान से देखने लगा। युवती ने अब मस्तक पर हाथ फेरना शुरू किया। अविनाश को वह अच्छा लगा। उसने कुछ बाधा नहीं उपस्थित की। वह युवती एक के

बदले दोनों हाथों से स्पर्श करने लगी और कपाल से नीचे उतरकर उसने गाल पर हाथ फेरना शुरू किया। अविनाश के शरीर में तेजी के साथ रुधिर दौड़ने लगा। फिर भी वह स्थिर था, युवती ने दोनों हाथ उसके गाल पर दबाकर उसके मुख को अपने मुख के पास खींचा।

अविनाश ने अपना मुख फेर लिया। युवती के मुख से मदिरा की दुर्गन्ध आ रही थी। उसका मुख पास आते हुए अविनाश को राजेश्वरी का ध्यान आया और उसने मुख फेर लिया।

युवती को जरा नवीनता मालुम हुई। वह सर्वदा विजयी होती थी। पराजय के पहले प्रसंग ने उसको उग्र बनाया। अविनाश के गले में दोनों हाथ डालकर वह झूल गई—किन्तु अविनाश के पतन का समय बीत गया था। मदिरा की झझक और राजेश्वरी के स्मरण ने उसको बेचैन बना दिया था। उसने धीरे से युवती का एक हाथ अपने गले से हटाकर पूछा- 'राजेश्वरी कब आवेगी ?'

'मैं ही राजेश्वरी हूँ।'—उसने फिर अविनाश के गले में दूसरा हाथ डाल दिया। युवती का स्पर्श उसे फिर विह्वल बनाने लगा। उसने जरा कड़े होकर कहा—'नहीं, मैं उसको पहचानता हूँ।'

'मैं राजेश्वरी से कम हूँ ?'—उसने अपनी आँखों में दुनियाँ भर का जादू भरकर कहा। अविनाश फिसला—परन्तु युवती के प्रश्न ने राजेश्वरी के साथ तुलना शुरू करा दी—राजे-

श्वरी का चित्र मूर्तिमान होकर उसकी आँखों के सामने नाचने लगा। उसने बल पूर्वक युवती का हाथ हटा दिया और उठकर दरवाजे की तरफ चला।

युवती हतप्रतिभ हो गई। किन्तु तत्काल अपने साथियों के हास्य में अपना हास्य मिलाकर हँसने लगी।

'जिंजर के पैसे भी नहीं दिये ?'

तेजी से सीढ़ी उतरते हुए अविनाश के कानों में यह आवाज पड़ी—परन्तु वह रुका नहीं। सीढ़ी पर बैठे हुए लठैत ने कुतूहल से देखा। वह मूँछों में ही हँसा, उसने मन में कहा—'आज तो इस तरह से भागते हैं, लेकिन कल वापस न आवें तो मेरा नाम नहीं।'

मनुष्य की दुर्बलता को पहचानता हुआ, वह जानता था कि पहले दिन मुँह छिपाकर भागनेवाले युवक, दूसरे दिन ढीठ बनकर फिर लौटकर वहीं आते हैं। वासना प्रथम तृप्ति के बाद व्यसन बन जाती है।

अविनाश ने उस गली से बाहर निकल कर साँस ली। उसका दम घुट रहा था। उसने बुरा किया या अच्छा किया, इसका विचार इस समय उसे नहीं था। घड़ी में ग्यारह बजा। अविनाश ने समय पर ध्यान न देकर एक गाड़ी किराये पर की—और रजनी के घर की तरफ चला।

रजनी बरामदे में अकेला खड़ा था। दीपक के प्रकाश में उसने अविनाश को पहचान कर पूछा—'कौन', अविनाश ?'

'हाँ', तुम जागते हो ?'

'न जागता होता, तो तुम जगाते ! इस समय कहाँ से ?'

'ऊपर आकर कहता हूँ ।'

गाड़ीवाले को रोक कर अविनाश ऊपर गया। बरामदे में एक खाट बिछी हुई थी। पास ही जमीन पर एक बिछौना बिछा हुआ था, जिस पर कोई स्त्री सोई हुई थी।

'तुम जागते न होते तो मैं आकर जगाता। रमा भाभी कहाँ हैं ?'

'यह सोई है।'—रजनी ने पास का बिछौना दिखाया।

'जागती हैं ?'

'मालूम तो नहीं होता। मैंने अभी आकर दरवाजा खोला, कपड़े उतारे, तब भी नहीं जागीं।'

'तुम अभी ही आये हो ?'—अविनाश ने आश्चर्य से पूछा।

'पन्द्रह मिनट हुए।'—थोड़ी देर ठहरकर अविनाश ने पूछा—'तुम खाट पर सोते हो ?'

'हाँ।'

'और रमा भाभी जमीन पर ? शर्म !'

'देखो, तुमसे एक बात कहता हूँ—किसी के यहाँ जाकर यह नहीं पूछना चाहिये कि कौन कहाँ सोता है। अगर यह जाने बिना न रहा जाय तो अक्ल और आँखों से काम लेना—पर पूछना मत !'

'जालिम ! सीधे से बात ही नहीं करता ?'

'हाँ, हाँ, तुम तो समान अधिकार के माननेवाले हो न ? देखो भाई ! खाट एक ही है, और रमा का हुक्म है कि मैं उस

पर सोऊँ। स्त्रियों को समान अधिकार तो क्या, मैं तो सम्पूर्ण अधिकार उन्हीं का मानता हूँ। पुरुषों का अधिकार होना ही नहीं चाहिये।'

'मैं तुमसे कुछ कहने आया हूँ।'

'वह कह डालो। मुझे भी तुमसे दो गूढ़ समाचार कहने हैं।'

'मैं गणिका के यहाँ गया था।'

'अच्छा! कल तक तुमने यह कहा होता तो मैं न मानता, आज मानने के लिये तैयार हूँ। यह घटना तुम्हारा जन्म या मृत्यु होने के समान महत्व रखती है।'

'क्यों?'

'मैं भी वहीं से आ रहा हूँ!'

'क्या?'—चौंककर अविनाश ने पूछा।

'मैं सच कहता हूँ। बहुत जोर से मत बोलो—नहीं तो पड़ोसी मेरा घर खाली करावेंगे।'

'तुम्हारे वहाँ जाने का कारण?'

'मैं भी तुमसे यही प्रश्न कर सकता हूँ।'

'पहले तुम कहो।'

'तुम्हें याद है—उस दिन पद्मनाभ को रात्रि में देखा था?'

'हाँ।'

'दो स्त्रियाँ भी उनके साथ देखी थीं?'

'हाँ!'

'और उन लोगों के आपस के सम्बन्ध के लिये तुमको शंका थी ?'

'मुझको अब भी शंका है—इतना ही नहीं बल्कि उस दिन हमलोगों ने दूसरे किसी को पद्मनाभ समझ लिया था।'

'वह शंका निर्मूल है, यह साबित करने के लिये मैं वहाँ गया था। पद्मनाभ कहाँ जाते हैं यह मैंने देख लिया है।'

'अर्थात् तुम कहना चाहते हो कि पद्मनाभ ऐसी जगहों में घूमते हैं ? यह मैं नहीं मान सकता।'

'तुमको प्रत्यक्ष दिखला दूँ तो ?'

पद्मनाभ ने स्त्रियों के सम्मान की छाप अविनाश के मन पर ऐसी बैठा दी थी कि उसके चरित्र के सम्बन्ध में उसे जरा भी शंका नहीं हो सकती थी। और दुर्गावती जैसी बीमार और वहमी स्त्री की वह जैसी सेवा करता था, उससे और भी संदेह का अवसर नहीं रहता था।

'तब भी मैं नहीं मान सकता।'—अविनाश ने उत्तर दिया।

'तब कोई उपाय नहीं है।'

'पतिताओं के उद्धार के लिये वहाँ गये हों तो ?'

रजनी जोर से हँसा—उसका हास्य गूँज उठा।

'पतिताओं का उद्धार उनके घर चक्कर काटने से होता है—क्यों ?'

'तब कैसे होता है ? उनकी स्थिति का ज्ञान······।'

'यह सब चालबाजी है। उनकी स्थिति के ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। तुम सहज ही कल्पना कर सकते हो।'

'देखे बिना कल्पना हो ही नहीं सकती।'

'और तुम देखने जाओ तो तुम भी वहीं रह जाओ। उद्धार की बात तो दूर रही—उलटे उनके पतन में और वृद्धि हो जाय! उद्धार—तुमसे!—मुझसे!—या पद्मनाभ से हो ही नहीं सकता।'

'क्यों?'

'हमारा यौवन, हमारा साधन, हमारी रसिकता, हमारी पवित्रता शिक्षा और हमारा वातावरण हमको साधू नहीं बनाते। पूरी पवित्रता के बिना यह काम नहीं हो सकता।'

'अर्थात्, हमलोग जबतक गाँधी न बनें, तबतक कुछ नहीं कर सकते?'

'बेशक गांधी ने अपनी कमजोरी कबूल की है। उस तपस्या के बिना तुमको उद्धार की बात करने का भी अधिकार नहीं है।'

'तुम्हारी समझ में सब चरित्रहीन ही हैं?'

'सब के चरित्र ऐसे हैं कि देखते-देखते हीन हो जायँ।'

'अर्थात् हमलोग कुछ भी नहीं कर सकते?'

'एक बात हो सकती है—अगर शादी न हुई हो तो।'

'वह क्या?'

'एक पतिता से शादी करना—इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा रास्ता नहीं है—हम जैसों के लिये।'—अविनाश विचार में पड़ गया।

'रजनी! तुम्हारा कहना ठीक है। जबतक डूबते हुए को हाथ का सहारा देकर न निकाला जाय; तबतक उद्धार का बात करना केवल तमाशा है।'

'ठीक है ! पर इन तमाशों में न पड़ो। तुम्हारा हाथ बहुत जल्द दूसरे के हाथ में जाने वाला है।'

'क्या ?'

'तुम्हारी शादी बहुत जल्द होने वाली है। शादी होने के बाद अपनी स्त्री को इस पथ पर ला सको तो उद्धार में पड़ना !'

'मेरी शादी ?'

'हाँ-हाँ तुम्हारी हो ! इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?'

'तुमसे किसने कहा ?'

'तुम्हारे पिताजी ने।'

'तुमसे कहाँ भेंट हुई ?'

'तुमसे मिलने के लिये हम दोनों तुम्हारे घर गये थे। दस बजे तक तुम्हारी राह देखी। तबतक तुम्हारा पता नहीं था। उसी समय तुम्हारे पिताजी ने कहा। फिर रमा को घर पहुँचाकर मैं घूमने गया।'

'किसके साथ मेरी शादी होगी ?'

'अब वह होगी ही, किसी को गले बाँध देंगे !'

'मेरे बिना पसंद किए ही ?'

'तुमको पसन्द करना आता होता तो अबतक तुम कुआँरे ही क्यों रहते ?'—इतने में रमा जाग गई। वह उठकर बिछौने पर बैठ गई। उसने अविनाश से पूछा—'इस समय आप कहाँ से ?'

'यह अपनी शादी की बातें करने के लिये आया है !'—रजनी ने उत्तर दिया।

'बड़ी प्रसन्नता की बात है। अपनी माता के इच्छानुसार यह शादी कर लें तो बहुत अच्छा। बैठिए, मैं चाय बना दूँ।'

'नहीं, नहीं रमा भाभी, आप कष्ट न कीजिये, मैं घर जा रहा हूँ।'—कहकर अविनाश उठा, नीचे आकर गाड़ीवाले को जगाया।

विचार-सागर में डूबते-उतराते हुए अविनाश को रास्ते का कुछ ख्याल नहीं था। किन्तु घर के पासवाले मंदिर के पास आने पर उसकी विचार-शृंखला टूट गई—मंदिर की सीढ़ी पर एक स्त्री बैठी हुई थी।

अविनाश ने गाड़ी रुकवाई। उस स्त्री ने गाड़ी की तरफ देखा। संध्या के समय देखी हुई भिखारिन ही उसकी तरफ देख रही थी। अविनाश ने पूछा—'तुम कौन हो?'

'तुमसे मतलब? अपने रास्ते जाओ।'—वह अपमान-भरे स्वर में बोली।

'तुमको आवश्यकता हो तो मैं कुछ मदद करूँ। इसीलिये पूछता हूँ।'

'चलो, चलो, मदद करोगे!'—कहकर तिरस्कार से मुँह फेरकर वह सीढ़ी पर लेट गई।

अविनाश ने गाड़ी अपने दरवाजे पर जाकर रोकी। गाड़ीवाले को भाड़ा देकर वह कम्पाउन्ड के अंदर गया।

'भाई! आप बहुत देर करते हैं। इससे तबियत खराब होगी!'

'कोई बात नहीं—किसी-किसी दिन जागरण भी होता है।'—कह कर वह भीतर गया।

दरवान ने सिर हिलाया। वह अनुभवी था। वह जानता था कि जवानों का जागरण ही उन्हें वृद्ध बनाता है। किन्तु जवानों को इसकी खबर कहाँ रहती है!

१०

अविनाश बहुत देर से सोकर उठा। रात को उसे नींद तो आई—किन्तु प्रभात में गतरात्रि के दोनों संस्मरण—भिखारिन, और राजेश्वरी—उसकी आँखों के आगे नाच रहे थे।

किशोरावस्था में नाटक देखने के बाद दूसरे दिन तक नाटक का दृश्य जैसे नहीं भूलता, वैसे ही अविनाश की आँखों के आगे कल के चित्र घूम रहे थे। चार बजे के करीब एक नौकर ने आकर कहा—'साहब आपको बुलाते हैं।'

'मैं चाय पीकर आता हूँ।'

'आज वहीं पर चाय पीना है—कोई आया है।'

'कौन है?'

'मैं पहचानता नहीं, माँजी भी वहीं हैं।'

'जाओ; मैं आता हूँ।'—कहकर उसने मुँह धोया, बाल ठीक किये, और नीचे उतरा। एक कमरे में उसके माता-पिता और दो स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। शर्मीले अविनाश का पैर पीछे

हटने लगा। माँ समझ गई। उन्होंने बुलाया—'आओ, आओ हमलोग तुम्हारी राह देख रहे हैं।'

महान योद्धाओं को भी अपरिचित स्त्रियों के सामने जाने में संकोच मालूम होता है। अविनाश सकुचाता हुआ भीतर जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

'तुम इनको पहचानते हो कि नहीं?'

'जी हाँ, साधारण।'

'और निरूपमा, तुम अविनाश को पहचानती हो?'—अविनाश की माता प्रभालक्ष्मी ने सामने बैठी हुई युवती से पूछा।

'हाँ।'—कहकर वह शर्मा गई।

'पहले तो रोज बातें करती थी।'—निरूपमा की माँ पद्मावती ने कहा।

आज दोनों माँ-बेटी को मिलने के लिये प्रभालक्ष्मी ने बुलाया था। दोनों परिवारों में अच्छा सद्भाव था। उस सद्भाव को चिरस्थायी रूप देने के लिये दोनों परिवारों की इच्छा थी। अविनाश कुँआरा था, निरूपमा भी कुँआरी थी। अविनाश कालेज में जब अन्तिम वर्ष में था, तब निरूपमा प्रथम वर्ष में थी। दोनों में जान पहचान थी। बात-चीत नहीं थी।

अविनाश ने अभी तक शादी करने से इन्कार किया था। निरूपमा की नजर में भी कोई युवक नहीं आया था। प्रभालक्ष्मी ने जब पद्मावती से बात-चीत की तब दोनों परिवारों में स्थायी सम्बन्ध के लिये उन्होंने प्रसन्नता प्रकट की, निरूपमा ने भी कुछ आनाकानी नहीं की।

कुछ दिनों से अविनाश के माता-पिता को समझ में आ रहा था कि अविनाश की शादी कर देनी चाहिए। समझदार माता-पिता ने इस सम्बन्ध में अविनाश से कुछ भी नहीं पूछा था। अविनाश और निरूपमा को पहले आपस में मिलाकर—फिर अपने विचित्र लड़के का मन जान कर आगे कदम बढ़ाने की उनको इच्छा थी। उनको विश्वास था कि निरूपमा के साथ शादी करने के लिये अविनाश इन्कार नहीं करेगा।

निरूपमा सुन्दरी नहीं—तो आकर्षक अवश्य थी। बीच में सुमंतराय किसी काम के बहाने से उठकर चले गये। प्रभालक्ष्मी ने पद्मावती को भी वहाँ से टहला दिया। 'आओ, बहिन; मैं आपको स्फटिक के महादेवजी दिखाऊँ। कल ही शिवनाथ शास्त्री ने भेजे हैं। निरूपमा! तुम इतमिनान से चाय पीओ। अविनाश! चाय पीने के बाद निरूपमा को अपना घर तो दिखाओ।'—कहकर दोनों चली गईं।

अविनाश और निरूपमा अकेले रह गये। अविनाश कुछ बात-चीत नहीं कर सका। निरूपमा ने सहायता की। नवीन युग की युवती एकान्त में पुरुष के सामने हृदय धड़कती हुई नहीं बैठती। शर्म भी आकर्षक लगने भर ही आने देती है।

'आप तो प्रोफेसर हो गये।'—निरूपमा ने कहा।

'हुआ कहाँ, हाँ अब होने वाला हूँ।'—अविनाश ने संकोच के साथ उत्तर दिया।

'मुझको भी कालेज का वातावरण बहुत पसंद है।'

'आपने तो ग्रेजुवेट होने के बाद कालेज छोड़ा होगा?'

'एम० ए० पढ़ने की इच्छा है। किन्तु तबीयत जमती नहीं। किसी के साथ पढ़ने की सुविधा नहीं है।'

'मुझको तो अकेले ही पढ़ना अच्छा लगता था।'

'मुझे तो साथ चाहिए—आप कब तक जायँगे ?'

'अभी थोड़े दिन की देर है—बीच में जरा एक जगह जाना है।'—अविनाश को भय मालूम हुआ कि कहीं यह गले न पड़ जाय !

'कहाँ जायँगे ?'

'एक मित्र के यहाँ।'

'मैं उनको पहचानती हूँ ?'

'जी नहीं, आपसे उनसे जान-पहिचान नहीं होगी।'

जैसे-जैसे निरूपमा अविनाश को घेरने लगी, वैसे-वैसे वह घबराने लगा। निरूपमा की बोली मीठी थी। उसकी चाल-ढाल भी आकर्षक थी—फिर क्यों अविनाश घबराने लगा ?

उसके माता-पिता ने उनकी शादी करने का निश्चय किया है, यह बात वह रजनी से सुन चुका था। निरूपमा का आगमन भी उसी निश्चय का एक अंग है, वह यह समझ गया था। किन्तु उसका मन किसी दूसरी दिशा में ही था।

स्त्रियों का प्रथम संकोच दूर होने पर उनकी वाणी का प्रवाह अस्खलित रूप से बहने लगता है। अविनाश का निरूपमा की वाग्छटा का अनुभव हुआ। उसमें मिठास थी। बातचीत में चातुर्य था। उसे मालूम हुआ कि वह एक रूपवती युवती के पास बैठा है। वह विचारने लगा—'स्त्रियाँ सब रूपवती क्यों

मालूम होती हैं ? पुरुष की आँखें स्त्रियों का सौन्दर्य देखने के लिये ही बनाई गई हैं ? निरूपमा रूपवती है, रमा भाभी रूपवती हैं, उस दिन की रूप बेचनेवाली स्त्रियाँ भी रूपवती थीं, और राजेश्वरी ? राजेश्वरी का ख्याल आने से वह उद्विग्न हो गया। उसे निरूपमा के पास बैठना अच्छा नहीं लगा। इतने में कहीं पास ही से गाने की आवाज़ सुनाई दी।

वे दोनों बातें करते हुए रुक गए। गायक का कंठ बहुत अच्छा था। उसमें उस्ताद का कला-प्रदर्शन नहीं था—बल्कि एक कलाकार की तन्मयता थी। उसमें किसी महान संगीत-शास्त्री का गर्व नहीं था—बल्कि एक मानव-हृदय के दर्द का रुदन था।

'दूर रहो रघुराई कैसे धरूँ धीर !'

'कौन गाता है ?'—निरूपमा ने पूछा।

'शिवनाथ शास्त्री !'

'वह गवैये भी हैं ?'

'धुन आने पर गाते हैं—पर बहुत ही अच्छा !'

'वह क्या करते हैं ?'

'पास के राम-मंदिर में रहकर देव-सेवा किया करते हैं।'

'यहाँ पर बुलाया जा सकता है कि नहीं ?'

'वह कहीं जाते-आते नहीं। गाना सुनना हो तो मंदिर में जाना चाहिए—वह भी उस समय, जब वह गाते हों। कोई कहे और वह गाने लगें, यह नहीं हो सकता।' गाना आगे चला—

'घट घट में रमत राम।
दरसन को चाही!
दूर रहो रघुराई……'

प्रभालक्ष्मी और पद्मावती वापस आईं। प्रभालक्ष्मी ने अविनाश से पूछा—'निरूपमा को घर नहीं दिखाया?'

'हमलोग तो यह गाना सुन रहे थे।'—निरूपमा ने उत्तर दिया।

'तुमको गाना आता है?'—प्रभालक्ष्मी ने पूछा।

'नहीं के बराबर—सुनना बहुत प्रिय है। मंदिर में जाया जा सकता है?'—निरूपमा ने पूछा।

'हाँ, हाँ, अविनाश! तुम इनको मंदिर में ले जाओ।'

'मैं भी जाती हूँ। उधर से मंदिर में हो लूँगी।'

निरूपमा की माँ को लड़की को एकदम स्वतंत्र छोड़ देना ठीक नहीं मालूम हुआ।

माँ-बेटी दोनों को लेकर अविनाश मंदिर की तरफ चला।

११

मंदिर पास ही था। मंदिर में होती हुई आरती या कीर्तन अविनाश के घर से सुनाई देता था। दोनों के बीच में केवल कम्पाउण्ड भर था। मंदिर में जाने का रास्ता सड़क की तरफ से था। अविनाश माँ-बेटी को लेकर मंदिर की तरफ चला।

मंदिर की सीढ़ी चढ़ते समय वही भयानक भिखारिन दिखाई दी। वह रो रही थी।

'क्यों रोती है?'—अविनाश के मन में विचार उठा। उसने एक चवन्नी जेब से निकाल कर फेंकी।

चवन्नी की झनझनाहट ने भिखारिन का ध्यान आकर्षित किया—उसने देखा कि उसके पैर के पास एक चवन्नी पड़ी हुई है। उसने उठाकर चवन्नी को सड़क पर फेंक दिया।

निरूपमा समझी कि भिखारिन को कम पैसे मिलने से क्रोध हुआ है। उसने एक रुपया निकाल कर फेंका!

'तुमको कौन कहता है कि पैसे दो! मुझको भिखारिन समझते हो?'—उसकी आवाज़ में क्रोध की स्पष्ट छाप थी।

'कल तो माँगती थी।'—अविनाश ने कहा।

'बड़े तुम देनेवाले! जाओ—अपने रास्ते लगो!'

आश्चर्य के साथ तीनों आदमी मंदिर के भीतर गये। भिखारिन फिर रोने लगी।

'पागल मालूम होती है।'—पद्मावती ने कहा। भिखारिन सचमुच पागल मालूम होती थी।

मंदिर स्वच्छ था। वह शिवालय जैसा न होकर साधारण ढंग से बना था। आगे एक सभा-मंडप था। मंदिर में राम पंचायतन की मूर्ति थी। चार-पाँच पुरुष और छ-सात स्त्रियाँ सभी मंडप में बैठी हुई थीं। एक कोने में कुशा का आसन बिछा हुआ था। आगे रामायण पड़ी थी। शिवनाथ शास्त्री उसपर बैठकर रोज रामायण पढ़ते थे।

उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं थी कि कोई उनका प्रवचन सुने—वह तो अपने को ही सम्बोधन करके पाठ किया करते थे। फिर भो वहाँ दो-एक वृद्ध, दो-चार वृद्धा, एकाध युवक और दो-तीन विधवाएँ बैठकर उनका प्रवचन सुना करती थीं। कभी-कभो कोई पंडित, शास्त्री या संन्यासी भी आ जाते। शिवनाथ कभी उन लोगों के साथ वाद-विवाद नहीं करते थे। उनको पहचाननेवाले उन्हें कभो वाद-विवाद के लिए बाध्य भी नहीं करते—हाँ, अगर कोई बात समझनी हो, तो रामायण पढ़ने के बाद पूछते—और शास्त्रीजी का मन यदि ठीक होता, तो समझा भी देते।

सुदूर देश से कोई संगीत-विद् भी आता—और चार-पाँच दिन रहकर शास्त्री की अनुकूलता के अनुसार एक दो राग के स्वर, ताल, आकार वगैरह ठीक करके चला जाता।

किन्तु जिस समय वह राम-भजन में मग्न होते उस समय कोई बात पूछने पर कहते—'भाई मुझसे मत पूछो। मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो एक पागल और अज्ञान प्राणी हूँ! मैं तो एक ही बात जानता हूँ—'देवै को टुकड़ा भलो, लेवै को हरि नाम।'

लोग उनको शास्त्रो भो कहते और ब्रह्मचारी भी कहते—उन्हें इन दोनों में से एक भी उपनाम अच्छा नहीं लगता था। वह प्रत्येक समय देव-सेवा में संलग्न रहते थे। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर कुएँ से पानी निकाल वह स्नान करते—फिर कपड़े का टुकड़ा या झाड़ू लेकर सम्पूर्ण मंदिर धो डालते—और उसके बाद स्नान करते। मंदिर खोल कर भगवान को सेवा-पूजा, आरती

इत्यादिक करते, और बैठकर पद गाते या रामायण का पाठ करते। कभी-कभी मूर्ति की तरफ एक टक देखते हुए वह रुदन भी किया करते थे।

अविनाश, निरूपमा और पद्मावती को लेकर भीतर गया। उस समय शास्त्री दस बारह आदमियों के सामने कुछ कह रहे थे—'नाव पार लगी। भगवान रामचन्द्र उस शूद्र केवट को किराया देने लगे। किन्तु वह शूद्र नहीं था—वह तो ब्राह्मण का ब्राह्मण, तपस्वी का तपस्वी था। प्रभु जैसा दाता हाथ लंबा करे और वह पैसे से रीझे? उसने भगवान को नदी पार उतारा था। यह उसका धर्म था। भगवान भी भव के नाविक हैं—उनका धर्म यह है कि उनके घाट जाने पर वह भी पार उतारें। केवट कहने लगा—

जाति पाँति न्यारी करी हमरी तुम्हारी नाथ,
केवट करम एक नीके कै निहारिये।
तारो भवसागर दयालु तुम दीनानाथ!
सरिता उतारि दीन है हूँ गुजारिये।
नाई सों न नाई लेत धोबी सों न धोबी लेत,
दे कै उतराई मेरी जाति ना बिगारिये।
धंधा भाई चारो जानि! तुमको उतार दीन्यों,
आऊँगो तिहारे घाट, हमको उतारिये।

शास्त्रीजी का गला भर आया। वे प्रेम से गद्‌गद्‌ हो गये। भावावेश के कारण उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। करीब

पन्द्रह मिनट तक वे चुपचाप बैठे हुए रोते रहे। सारा श्रोता-मंडल स्तब्ध था।

थोड़ी देर बाद शिवनाथ ने आँखें पोछकर चारो तरफ देखा—अविनाश को देखकर बोले—'भाई! तुम कब आये?'

'थोड़ी देर हुई शास्त्रीजी!'

शास्त्रीजी! हूँ!—हँसकर शिवनाथ ने इस सम्बोधन से अरुचि प्रगट की।

'बहुत दिन बाद दिखाई दिये।'—उन्होंने पूछा।

'जी हाँ! ये लोग मेरे परिचित हैं। आपका गायन सुनकर, आपका दर्शन करने आये हैं।'

'बहिन! दर्शन करो, मेरे उस प्रभु का! वे बैठे हैं!—मेरा दर्शन तो निरर्थक है, पाप बढ़ानेवाला है!'

'आपके संगीत को सुनने की मेरी अभिलाषा मन में ही रह गई।'—निरूपमा ने कहा।

'बहिन! संगीत जब कंठ में था उस समय कहने से मैं अवश्य गाता—किन्तु अब तो हृदय में उतर गया है, जबतक उबाल न आवे गाया नहीं जा सकता।'

'तब हमको तो सुनने का लाभ नहीं ही मिलेगा!'

'कैसा लाभ? मैं कौन लाभ देने वाला? लाभ देने में यदि कोई समर्थ है तो वह मेरे रामजी हैं!'

निरूपमा को मालूम हुआ कि शास्त्री भ्रमित चित्तवाले पुरुष हैं। उनका भ्रम भक्ति के रूप में व्यक्त होता है। इनमें

'कामनसेन्स' तो नहीं ही है। सन्ध्या हो चली थी। शास्त्रीजी अविनाश के साथ बातें करते हुए बाहर की तरफ चले।

संस्कृत बहुत कठिन है किसी की मदद बिना समझ में नहीं आती।'—अविनाश ने कहा।

'मेरा तो ठीक नहीं—किसी पंडित से थोड़ी देर समझ लिया करो।'

'उनमें कितनों का अंग्रेजी अनुवाद हुआ है, उसका सहारा लेकर पढ़ता हूँ।'

'ठीक है! यह भी एक रास्ता है। किसी दिन अगर मेरा चित्त शान्त रहा तो मैं भी कुछ बता दूँगा।'

निरूपमा को कुछ समझ में नहीं आया। अविनाश के समान विलायत से पास होकर आनेवाला—इस भ्रमित चित्त-वाले के पास क्या सीखता होगा। उसने पूछा—'आप संस्कृत सीखते हैं?'

'नहीं, थोड़ी आती है, कालेज में पढ़ी थी।'

'तब किसी खास विषय पर अध्ययन करते हैं?'

'हाँ।'—जरा संकोच के साथ उसने उत्तर दिया।

'किस विषय पर?'

'विवाह पर।'—वह बहुत संकुचित हो गया था।

क्षण भर निरूपमा अविनाश की तरफ देखती रही। फिर उसने पूछा—'अर्थात्?'

'विवाह मनुष्य-समाज के लिये आवश्यक है या नहीं, इस विषय पर प्राचीन विचारकों के मत की खोज करता हूँ।'

निरूपमा को प्राचीन या अर्वाचीन विचारकों के मत की अपेक्षा अविनाश का निजी मत जानने की इच्छा हुई—किन्तु ; कुछ कहने के पहले ही चारो आदमी मंदिर के बाहर आये।

दरवाजे पर वही भिखारिन अभी तक बैठी हुई थी। एकाएक वह खड़ी होकर इन लोगों की तरफ आने लगी। भय तथा आश्चर्य से सब चकित हो गये। वह ज्योंही शिवनाथ के सामने आकर खड़ी हुई, त्योंही पद्मावती की गाड़ी आकर सीढ़ी के पास रुकी। अविनाश माँ-बेटी को बैठाने लगा। इससे शिवनाथ और भिखारिन की आँखों में झलकता परिचय कोई देख नहीं सका। भिखारिन तेजी से सीढ़ी उतरकर जाने लगी। शिवनाथ शास्त्री उसे जोर जोर से पुकारने लगे—'नारायणी! नारायणी !!'

अविनाश को आश्चर्य हुआ। शिवनाथ शास्त्री बराबर पुकार रहे थे। भिखारिन बिना पीछे देखे चली जा रही थी। वह एक गली में अदृश्य हो गई। अविनाश के चित्त में अन्वेषण वृत्ति जागृत हुई।

'यह नारायणी कौन है ? शिवनाथ शास्त्री जैसे परमभक्त क्यों रास्ते में खड़े होकर उसे पुकार रहे हैं ?'—शिवनाथ शास्त्री तो मंदिर में मिल जायँगे मगर नारायणी अदृश्य हो गई तो फिर उसका मिलना मुश्किल है। वह तेजी के साथ उसी गली में घुसा जिसमें भिखारिन गई थी।

भिखारिन पीछे देखे बिना बराबर चली जा रही थी।

१२

एक मैदान में कुछ घोड़ा-गाड़ियाँ खड़ी थीं। भिखारिन एक गाड़ी का दरवाजा खोलकर भीतर बैठ गई। गाड़ीवाला उसका मुँह देखने लगा। उसने उसकी हथेली पर कुछ रखा—कोचवान ने घोड़ों को एक चाबुक मारी और गाड़ी चलने लगी।

अविनाश समझ गया कि अब वह अदृश्य हो जायगी। उसने भी एक गाड़ी की—गाड़ीवान को समझाया कि आगे चलती हुई गाड़ी से थोड़ी दूर पीछे रहकर, उसके पीछे-पीछे चलो। गाड़ीवान डरा। किन्तु मुट्ठी में ज्यादा गरमाहट देखकर वह गाड़ी हाँकने लगा।

गाड़ी थोड़ी ही दूर चली होगी कि अविनाश चौंक पड़ा। कोई उसे पुकार रहा था—'अविनाश!'

अविनाश ने गाड़ी रुकवाकर चारो तरफ देखा—रजनी पीछे से पुकार रहा था!

'कहाँ जाते हो?'—गाड़ी के पास आकर रजनी ने पूछा।

'भीतर बैठ जाओ—फिर कहूँगा।'

'इतनी जल्दी क्यों है?'

'बातों में समय मत बरबाद करो—बैठ जाओ।'

रजनी गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी आगे बढ़ी। भिखारिन की गाड़ी एक तंग रास्ते में घुसी। अविनाश की गाड़ी भी उसमें

घुसी। इस तंग मार्ग में आने पर अविनाश का गाड़ीवान बोला—'साहब! मैं एक गरीब आदमी हूँ।'

'जाओ—मेरा आशीर्वाद है कि तुम लखपती हो जाओगे!'—रजनी ने उत्तर दिया।

'मेहरबान, मजाक मत करिये! बाल-बच्चे वाला हूँ!'—गाड़ीवान ने बड़ी नम्रता से कहा।

'इसमें कुछ मेरा कसूर है?'

'कसूर मेरे भाग्य का!—किन्तु अगर मैं किसी झंझट में पड़ जाऊँगा तो मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे।'

'तुम चिन्ता मत करो—यह जो साहब बैठे हैं, इनके पिता मालदार हैं—आवश्यकता होने पर तुम्हारे बाल-बच्चों के लिये इन्तजाम कर देंगे।'

'क्यों बक-बक करते हो?'—अविनाश ने चिढ़कर पूछा।

'गाड़ीवाले को जवाब देता हूँ—परोपकार होता है। उसको डर माल्रम होता है।'

'डर किस बात का?'

'तुम कुछ गुनाह करनेवाले हो, ऐसी इसकी धारणा है।'

'नहीं, नहीं, यह नहीं साहब! मैं जानता हूँ कि आप पुलिस अफसर हैं। किन्तु साहब अगर सारी रात रुकना पड़ेगा या कचहरी में गवाही देने जाना पड़ेगा तो मेरी रोजी मारी जायगी।'

'अ-ह, चलो—तुम गुनहगार नहीं, बल्कि गुनहगारों के पकड़नेवाले हो। ऐसी इस गाड़ीवान की धारणा है। मैं भी यदि

गाड़ीवान होऊँ, तो इस समय की तुम्हारी चाल-ढाल से पुलिस-अफसर ही समझूँ।'

'हाँ, हाँ, मैंने तुमसे यह नहीं कहा कि हमलोग कहाँ जा रहे हैं ! देखो—वह गाड़ी जा रही है न ?'

'हाँ।'

'उसमें एक स्त्री बैठी है।'

'होगी, स्त्रियों की तरफ से ध्यान निकाल डालो।'

'उसका नाम भी मालूम हो गया है।'

'तो, अब जानने के लिये कुछ भी बाकी नहीं है—वापस चलो।'

'वह कहाँ रहती है, यह हमलोग जान लें।'

'इससे हमलोगों का कुछ फायदा होनेवाला है ? घर जान लेने के बाद क्या घर में घुस सकते हैं ?'

'आवश्यकता हो तो घर में भी जाना पड़ेगा।'

'फिर वह घर में जबर्दस्ती घुसने का दावा करेगी तब ? तुमसे तो वकालत होती नहीं।'

'तुम समझे नहीं। शिवनाथ शास्त्री ने इसको देखते ही पहचान लिया—उन्होंने आवाज दी। लेकिन यह भाग आई।'

'उन दोनों को मिलाने का तुमने बीड़ा उठाया है ?'

'मुझको यह जानना है कि यह कौन है, और शास्त्री के साथ इसका क्या सम्बन्ध है ?'

'इतनी-सी बात के लिये इस तरह से गाड़ी दौड़ाते फिरते हो ? यह तो शास्त्री से ही पूछ लेते।'

'शास्त्री शायद न बतलाते।'

'और यह बिना जान पहचान की स्त्री तुमसे कह देगी? क्यों? भले आदमी, इसमें किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं है। बिना पूछे मैं कह सकता हूँ कि दोनों के बीच में क्या सम्बन्ध है?'

सभी के संबंध में बुरा विचार करना भूल है। शिवनाथ पुराने ढंग के हैं—लेकिन हैं बहुत ही पवित्र! और इस स्त्री की मुखाकृति इतनी भयानक है कि उसकी तरफ देखने से डर लगे—इसलिये तुम्हारी धारणा गलत है।'

'मंदिर के अगले हिस्से में किरायेदार रहते हैं—कोई पुरानी जान-पहचान होगी।'

'अरे कल तो मैंने इसको भीख माँगते हुए देखा था। यह क्या किराये पर रहेगी?'

'कल भीख माँगती थी, और आज गाड़ी में घूमती है? तुमने कोई स्वप्न देखा होगा।'

'ऐसा नहीं है। इसकी मुखाकृति को मैं भूल नहीं सकता—बहुत डरावनी है!'

इतने में एक अँधेरी गली में उसकी गाड़ी रुकी। थोड़ी दूर पर अविनाश ने भी अपनी गाड़ी रोकी। नारायणी ने उतर कर एक घर में प्रवेश करना चाहा। अविनाश और रजनी उसके पास आ गये।

'नारायणी! तुम्हारा नाम ही नारायणी है न?'

वह भिखारिन पीछे घूमी। अँधेरे में उसकी आँखें चमक

रही थीं। उसने पूछा—'तुमसे मतलब ? आज मेरा नाम नारायणी नहीं है !'

'लेकिन शिवनाथ शास्त्री ने तुमको इसी नाम से बुलाया था ?'—शिवनाथ का नाम सुनकर वह दाँत पीसने लगी। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। दोनों युवक भय से काँप उठे। उसने पूछा—'लड़के ! तुमको शिवनाथ ने मेरे पीछे भेजा है ?'

'नहीं, मैं अपने मन से आया हूँ।'

'कारण ?'

'कल तुमको भीख माँगते हुए देखा था। आज शिवनाथ शास्त्री ने तुम्हारा नाम लेकर बुलाया। इसलिये मैं जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो ?'

'यह जानकर क्या करोगे ?'

'आवश्यकता होने पर तुम्हारी मदद करूँगा।'

'मेरी ? मदद करोगे ? झूठे, लबाड़ !'

'मैं सच कहता हूँ।'

'मेरी कोई मदद नहीं कर सकता। मुझको किसी के मदद की आवश्यकता नहीं है। तुम मुझको मदद करनेवाले कौन ? मैं कौन हूँ, यह जानते हो ?'

'नहीं।'

'मैं प्लेग हूँ, महामारी हूँ, जीती मौत हूँ।'

दोनों युवकों के शरीर में फिर कँपकँपी होने लगी—फिर भी अविनाश बात-चीत करता ही रहा।

'नहीं, नहीं, मुझसे इतना कहो कि मंदिर की सीढ़ी पर तुम किसलिये बैठी थीं ?'

'तुमको सुनना ही है, क्यों ? मैं कहूँ—मैं वहाँ क्यों बैठी थी ?'

'हाँ।'

'शिवनाथ का खून करने के लिये ! उसको छटपटाकर मरता देखने के लिये ! बस ?'—इतना कहकर वह घर के भीतर चली गई—और दरवाजा बन्द कर लिया।

दोनों युवकों ने अपने धड़कते हुए हृदय के शान्त होने पर देखा—महल्ला गरीब लोगों का है। घर छोटा है। अविनाश ने आवाज दी—'नारायणी !'

किसी ने जवाब नहीं दिया। उसने फिर दो-तीन आवाज दी; किन्तु कुछ उत्तर न मिला ! हाँ हँसने की आवाज सुनाई दी।

अविनाश ने दरवाजे को खटखटाया। खिड़की में एक जवान औरत पानी का डोल हाथ में लेकर खड़ी थी। उसने कहा—जाते हो कि नहीं ? अभी पानी छोड़ती हूँ।'—अविनाश और रजनी वहाँ से हट गये। रजनी ने कहा—'अविनाश अब इसको छेड़ना मत।'

'मुझको जानना है कि वह कौन है और क्या करती है ?'

'तब प्रोफेसरी से इस्तीफा देकर पुलिस में नाम लिखा लो।'

'कैसी अद्भुत औरत है !'

'किसी समय में बहुत सुन्दर रही होगी।'

'मुझको भी ऐसा ही मालूम होता है। यद्यपि उसकी मुखा-

कृति भयानक है—फिर भी एक तेज उसके चेहरे पर झलका करता है। जैसे आधा टूटा हुआ ताजमहल!'

'अब टूटी-फूटी मसजिदें देखना छोड़ दो। मुझे तो खँड़हर भयानक लगते हैं!'

'खँड़हर में क्या सौन्दर्य नहीं होता?'

'जिसको देखना हो वह देखे। मुझे तो खंडित सौन्दर्य नहीं देखना है—तुम्हारी इच्छा हो तो आज तुमको अखंड सौन्दर्य दिखाऊँ?'

'आज तुम इतने रसिक कैसे हो गये हो?'

'तुम्हारी नारायणी को देखने के बाद कोई अच्छा चेहरा न देखने से रातभर खून-खराबी के स्वप्न आवेंगे।'

'तुम्हारे यहाँ तो सौन्दर्य की साक्षात् मूर्ति है।'

'कौन सी?'

'मानो जानते ही नहीं—मुझसे प्रशंसा सुनना चाहते हो?'

'तुम रमा के लिये कहते हो?'

'और क्या?'

'अरे जाओ—वह बेचारी तो साधारण स्त्री है। भारत में यदि सौन्दर्य-प्रतियोगिता हो, और रमा को इनाम मिले, तब भी मैं मानने के लिये तैयार नहीं हूँ।'

'तब तुम किसकी बात कहते हो?'

'मेरे सेठजी को तुम पहचानते हो?'

'कोका सेठ? नाम सुना है। उनको तुम सुन्दर कहते हो?'

'भाई ! वह रुपया देते हैं—इसलिये उनको कामदेव का अवतार भी कहा जा सकता है।'

'उनका चेहरा देखे बिना ही चल जायगा।'

'मैं तो दूसरी बात कहता था। मेरे सेठजी सुन्दर हैं—इतना ही नहीं—वह सुन्दरता खरीदना भी जानते हैं। तुम नाच देखने का आग्रह रखते हो तो चलो—तुमको मालूम हो जायगा कि हमारे नाच में कितनी खूबी है !'

'रात तो हो गई है। अभी घर जाना है और फिर मुझको निमंत्रण भी नहीं है।'

'कोई हर्ज नहीं—मैंने तुम्हारे लिये निमंत्रण ले रखा है। हमलोगों का यह गाड़ीवान मित्र पैसा पाने पर चाहे जहाँ ले जा सकता है।'

१२

आज कीका सेठ का जन्म-दिन था। प्रत्येक मनुष्य को अपना जन्म-दिन बहुत महत्वपूर्ण मालूम होता है। चाहे वह खुद महत्वपूर्ण भले हो न हो। किन्तु कीका सेठ का जीवन बिना महत्त्व का नहीं था। वे एक धुरन्धर व्यापारी थे। उनकी करोड़ों की हैसियत थी। उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण होने का एक कारण और भी था। वह था उनका परिश्रम ! उनके माँ-बाप एक गरीब आदमी थे। यह सारी संपत्ति उन्होंने अपने

बाहुबल से पैदा की थी। मुनीब से दलाल, दलाल से हिस्सेदार और हिस्सेदार से एक दिन वे स्वयं स्वामी ही हो गये। कोका सेठ हो गये। वे कितने पढ़े थे यह कहना कठिन है—उनका कहना था कि उन्होंने लगभग मेट्रिक तक पढ़ा था। परंतु लगभग मेट्रिक का क्या अर्थ—चौथी, पाँचवीं, या इससे भी अधिक, यह कोई नहीं कह सकता था।

वह कम पढ़े थे—यह सोचकर कोई उनका अपमान नहीं करता था—बल्कि वे स्वयं अधिक पढ़ें-लिखों की हँसी उड़ाया करते थे। यदि कोई ग्रेजुएट उनके यहाँ नौकरी के लिये आता तो कहते—'मास्टरी करो, मास्टरी! व्यापार के काम लायक नहीं हो।' परन्तु अधिकतर वे ग्रेजुएटों को ही अपने यहाँ नौकर रखकर, खुद ग्रेजुएट न होते हुए भी, ग्रेजुएटों पर हुकूमत करने का आनन्द उठाते।

रजनी को भी इन्हीं कारणों से सेठजी के यहाँ नौकरी मिल गई थी। वह समझ गया था कि नौकरी करनी हो तो सेठजी को खुश रखना चाहिये। सेठजी को भी रजनी पर खास मेहरबानी रहती थी। क्योंकि सेठजी लगभग मैट्रिक तक अपने को पढ़ा हुआ बताते थे; फिर भी अंग्रजी बोलने के समय घबड़ा जाते थे—दूसरे मनुष्य के बोलने पर वे समझ तो लेते थे। आवश्यकता होने पर यस, नो, आलराईट, थैंक्यू, कहकर काम भी चला लेते थे। परंतु अंग्रेजों का सामना होने पर घबड़ा जाते थे। रजनी ने उनको अंग्रेजी बोलना सिखलाने का बीड़ा उठाया था।

यह शिक्षण सेठजो की इच्छा और सुविधानुसार होता था—इसलिये प्रगति भो धीमो थो। परंतु सेठजो पर अपना कब्जा बनाये रखने के लिये रजनी ने एक और उपाय भी ढूँढ़ निकाला था। उसने अपने एक पत्रकार मित्र को साध रखा था। उसकी सहायता से कभी-कभी सेठजो की खबरें पत्र में निकल जाती थीं। 'कीका सेठ शिमले गये' 'कीका सेठ ने एक पंच कल्याणो घोड़ा खरीदा', 'सेठजी ने दो सौ रुपये गरीबों की औषधि के लिए दान दिए'—कभी-कभी सेठजी का चित्र और जीवन-चरित्र भी पत्र में निकलता—इन सब बातों को देखकर सेठजी भी उदारता के साथ पत्रकारों की मुट्ठी गरम कर देते थे।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे केवल सेठ ही थे! वे साहित्य, संगोत और कला के भी प्रेमो थे। एक कवि को उन्होंने बहुत सा पुरस्कार दिया था। क्योंकि कवि ने सेठजी को अपनी एक पुस्तक समर्पित की थी। उनका संगीत-प्रेम भी बढ़ा चढ़ा था—प्रायः वे गायिकाओं के घर जाकर गाना सुन आते थे, या कभी-कभो अपने घर पर भी महफिल जमाते थे। वे अपने शहर में आने वाली नाटक-मंडली के प्रत्येक खेल देखते—यही नहीं, मंडली के अभिनेता-अभिनेत्रियों से तुरंत मित्रता भी स्थापित कर लेते थे। उन्हें अपने यहाँ निमंत्रण देते थे। इन सब बातों का परिणाम यह होता था कि सेठजी को नाटक होने के समय भी ड्रेसिंग-रूम में जाने की इजाजत रहती—और सेठजी वहाँ जाकर अभिनेत्रियों को शृंगार करने में सहायता देकर अपने कला-प्रेम का परिचय देते।

वह सिनेमा-कम्पनियों से भी प्रेम रखते थे। प्रायः कम्पनियों के शेयर खरीद कर अथवा किसी गरीब कम्पनी को अपने यहाँ गिरवी रखकर वे अभिनेता एवं अभिनेत्रियों के भाग्य-निर्माता बनते थे। कभी गुलज़ार पर मेहरबानी करते, तो कभी गुलनार पर—कभी ज्युडीथ को चाय का आमंत्रण देते तो कभी कलावती का लेकर मोटर पर घूमने निकलते।

चित्रों के भी वे बड़े प्रेमी थे। उनके घर पर और कोठी में सर्वत्र चित्र लटके हुए देखने में आते—और वे भी कैसे?—एकदम कलापूर्ण! नग्न, अर्धनग्न या वस्त्र हो भी तो गीली धोती हो, जो सुन्दरी के सम्पूर्ण अवयवों को व्यक्त करती हो। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वे नास्तिक थे। उन्होंने अपनी गद्दी के सामने श्रीनाथ जी की बड़ी-सी तस्वीर लगवा रखी थी।

किसी के साथ बातें करते-करते 'राज्जा' कहकर सम्बोधन करने की उनकी आदत थी। साधारण मनुष्यों को 'राजा' कहकर सम्बोधन करने में विशेष मनुष्यता प्रदर्शित होती है। कीका सेठ की मनुष्यता इतनी बढ़ गई थी कि राजा शब्द में से कहीं 'ज' छूट न जाय, इसलिये वे एक जकार के साथ दूसरा और भी जोड़ देते थे।

दुनियाँ निर्गुणी नहीं है। कीका सेठ के सम्बोधन को वह उन्हीं पर लगाती—कीका सेठ को वह 'राज्जा सेठ' कहकर सम्बोधन करती।

अपनी जन्म-गाँठ का दिन महत्वपूर्ण था—इसीलिये राजा सेठ ने अपने घर पर महफिल का आयोजन किया था।

राज्जा सेठ का दीवानखाना खचाखच भरा हुआ था। बीच में दो स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। उनके पीछे दो सारंगिया और एक तबलची बैठा हुआ था। तीनों बैठे हुए स्वर मिला रहे थे। टोन-टोन और ठक ठक ठाँय की आवाज़ आ रही थी। सबकी नज़र उन्हीं दोनों स्त्रियों की तरफ थी। उनमें से एक की अवस्था अधिक मालूम होती थी। उसने सादे कपड़े पहने थे। उससे कुछ जरा सा आगे बैठी हुई दूसरी युवती का सौन्दर्य उसे परी या अप्सरा का सा अलौकिकपन अर्पण कर रहा था। उसकी रेशमी आँखों की पलकों का हिलना, तलवार की मार का-सा आंदोलन कर रहा था। खिलते हुए फूल की सी स्मित रेखा उसके चेहरे पर दृष्टिगोचर हो रही थी। उसके महीन वस्त्र, उसके जगमग करते हुए शरीर को और भी भड़कीला बना रहे थे। बारबार सिर पर से हट जाते हुए कपड़े को, फिर से सिर पर खींचती हुई वह युवती, साक्षात् मोह की जीवित प्रतिमा-सी मालूम होती थी। वह सबको आकर्षित कर रही है, यह बात वह जानती थी। उसके सौन्दर्य-सागर की लहरों में प्रत्येक व्यक्ति बह रहा है, यह उसे मालूम था।

वाद्य-यंत्रों के स्वर मिल गये। सारंगिया ने एक दो घसीट ली—तबलची ने एक अटपटा टुकड़ा बजाया—गायिका गाना शुरू ही करनेवाली थी कि इतने में—

'आईए, आईए, वकील साहब! इतनी देरी कैसे?'

आने वाला वकील पद्मनाभ था। वह सेठजी के बगल में बैठ गया। सेठजी ने फिर पूछा—'इतनी देरी से क्यों राज्जा?'

पद्मनाभ का उत्तर पाने से पहले ही एकाएक ध्यान दूसरी तरफ आकर्षित हुआ। गायिका ने गाना शुरू किया। उसका स्वर सारंगी के स्वर के साथ मिलकर एक हो गया—

'देखो री ना माने श्याम।'

क्षण भर तक सम्पूर्ण महफिल स्तब्ध बन गई। गीत का स्वर इस प्रकार बहने लगा मानो अंधकार में एकाएक चाँदनी की धारा बह निकले—स्त्रियों के कंठ में प्रकृति ने ही मिठास भर दी है। संसार भर में शीतलता फैलानेवाली स्त्रियों की गढ़न ही मिठास से भरी हुई है—इसलिये उनका कंठ भी मिठास से भरा होना ही चाहिये। उस कंठ को जब सौन्दर्य के सार रूप संगीत का आकार दिया जाता है, तब मिठास की धारा बहने लगती है।

'देखो री ना माने श्याम।'

गायन के प्रवाह को रोकती हुई एक कर्कश आवाज़ सुनाई दी—'ज़रा भाव बताओ।'

'ठीक कहा राज्जा!'—सेठजी ने भी अनुमोदन किया।

गायिका ने अपने आस-पास सौन्दर्य का वातावरण रच रखा था—उसमें स्वर के प्रवाह ने उसे और भी सघन बना दिया था। जब भाव-प्रदर्शन होने लगा, तब तो जैसे सौन्दर्य स्थूल-रूप धारण करता हुआ मालूम हुआ। उसके हाथ और अँगुलियाँ हवा में छोटी-छोटी रेखाएँ अंकित करने लगीं। उसका मुख और आँखें गीत के भावों के अनुकूल विकार प्रदर्शित करने लगीं।

'देखो री ना माने श्याम।'

एक चरण को बराबर गाते हुए, एक मुग्धा इस भाव को कैसे व्यक्त करती है, एक मध्या कैसे व्यक्त करती है, और एक प्रौढ़ा कैसे व्यक्त करती है—इसका निदर्शन किया। स्वकीया, परकोया, ओर सामान्या के लक्षण भी उसकी चेष्टा से समझ में आ रहे थे। अंत में सम्पूर्ण चित्र एक स्वाधीनपतिका की रूप-रेखा पर रचा जा रहा था।

'बोच डगर मोरी बहियाँ गहि लीनो,
देखो री ना माने श्याम।'

बीच मार्ग में प्रियतम ने प्रियतमा का हाथ किस तरह से पकड़ लिया, उसका दृश्य भी कोशलपूर्ण रोति से व्यक्त किया।

'वाह, वाह! क्या कहना है!' चारों तरफ से आवाज आने लगो। गायन में रस लेना हो तो सिर हिलाना चाहिये—कभी-कभो वाह, वाह के उद्गार निकालना चाहिये।

'रजनीकान्त आया है कि नहीं?'—सेठजो ने गायन के बीच में ही आवाज़ दो—'जी हाँ साहब!'—पोछे से रजनो ने उत्तर दिया।

'तुम क्यों चूकने लगे! बड़े रंगीले हो!'

'नहीं साहब, मैं तो सीधा-साधा आदमो हूँ—आँखें बन्द करके बैठा हूँ।'

महफिल में बीच-बीच में बोली-आवाजा होता रहना चाहिये—ऐसा नियम है। रजनी की आवाज सुनकर सब हँसे। गीत चल रहा था—

'चुरियाँ चरक गईं'

गायिका ने चूड़ी टूटने का अभिनय किया। हाथ पर जोर से दूसरा हाथ पड़ने की मधुर व्यथा का भाव मुख से प्रदर्शन किया। चूड़ी के टुकड़ों का जमीन पर गिरने का दृश्य प्रत्यक्ष किया। टुकड़ों को एक-एक करके बीनना दिखलाया—और आगे बढ़ी—

'चोलिया मसक गई'

गाते हुए उसने उर संकोच करके दोनों हथेलियों को मिलाकर छाती पर दबाया। श्रोता-मंडल ने एक साथ विह्वलता प्रदर्शित की—'अ ह ह ह ह ! क्या बात ! !' प्रशंसा-भरे उद्गारों का सलामों से जवाब देकर गीत का अन्तिम चरण गाने के लिये, स्वरभंग का सात्विक अभिनय कर दोनों हाथ जाँघ पर रखकर निरुपाय हो जाने की भावभंगी दिखाकर गाया—

ऐसे अनाड़ी सों, माहे पर्यो काम।
'देखो रा ना माने श्याम।'

तब तो एक महा रँगीले दर्शक से नहीं रहा गया। उसने अपनी विकलता प्रकट करने के लिये जोर से कहा—'हाय ! हाय !'

'अविनाश ! दाँत क्यों पीसते हो ?'—रजनी ने धीरे से पूछा।

अविनाश के उत्तर देने के पहले कीका सेठ हाय, हाय, के हृदय-द्रावक उद्गारों से प्रसन्न होकर बोले–'यह कौन बफरा ?'

'यह तो अपने आलम मियाँ हैं, सेठ साहब !'—किसी ने उत्तर दिया।

'मैं जानता था राज्जा ! मियाँ बिना दूसरा कौन बोल सकता है । क्यों रघुनाथराव ! कैसा ?'–स्वयं परोसे हुए पकवान की प्रशंसा सुनने की इच्छा रखनेवाले के समान सेठजी ने पूछा ।

दक्षिणी रघुनाथराव एक स्टेशन मास्टर थे । वे संगीत के बड़े शौकीन थे । उन्होंने सिर हिलाकर कहा—'हो, हो, फार छान—कंठ भयंकर सुरेख आहे !'

सब से पीछे—जहाँ और किसी का ध्यान न जाय—ऐसी जगह बैठा हुआ ध्यान-मग्न अविनाश दाँत पीस रहा था—रजनी को कुछ नवीनता नहीं मालूम हुई । गीत बन्द हुआ, गायिका पान लगाने लगी । लेकिन अविनाश की आँखों में भरा हुआ क्रोध अभी उतरा नहीं था । रजनी ने पूछा—'क्यों अविनाश ! गुस्सा कम हुआ या नहीं ?'

'मेरा ऐसा मन होता है कि महफिल के सब आदमियों को पेड़ पर टाँगकर चाबुक से चमड़ी उधेड़ दूँ ।'

'कारण ? तुमको इतना सुन्दर गाना सुनाया, इसीलिये ?'

'गाना सुनाने के लिये तुम मुझको न लाये होते तो अच्छा था । क्या सभी महफिलें ऐसे ही वातावरण से परिपूर्ण रहती हैं ?'

संगीत का माधुर्य और अभिनय की तन्मयता जो उच्च रस भरा वातावरण उत्पन्न कर रही थी, उसे श्रोताओं की लोलुपता और वीभत्स विलास-वृत्ति जरा भी जमने नहीं देती थी। आंगिक, वाचिक और सात्विक अभिनय द्वारा युवती के आसपास एक सजीव स्वाधीन पतिका की प्रतिमा उत्पन्न होने में श्रोताओं की क्षुद्र अश्लील आँखें बाधा देती थीं । मनुष्य भगवान की आराधना

करता है—परन्तु भगवान के आने पर—वह जैसे कोई राज-दरबार का विदूषक हो—ऐसा बर्ताव करता है। सौन्दर्य का अर्थ है प्रभुता ! शरीर से अवलंबित कोई दिव्य-तत्व ! उसके प्रति एक ऐसा घृणित व्यवहार ? अविनाश के हृदय में विचित्र भाव उठ रहे थे। वह एकटक अभिनय को देख रहा था। बीच-बीच में प्रशंसा के उद्गार निकालने वालों पर उसे क्रोध आ रहा था। आखिर उससे रहा नहीं गया—उसने दाँत पोसे।

हाथ में पान का एक बोड़ा लेकर गायिका उठी, और धीरे-धीरे रास्ता करके अविनाश के सामने आकर खड़ी हो गई। वह जिसके पास से होकर निकल जाती थी, वह एक बार अपने भाग्य को सराह लेता था। लेकिन आगे जाते देखकर सबका ध्यान उधर गया। गायिका ने अविनाश की तरफ पान बढ़ाया, अविनाश का हाथ नहीं उठा। उसने कहा—'लीजिये !'

अविनाश ने हाथ बढ़ाया। गायिका ने पान रखकर सलाम किया और हँसती हुई वापस चली गई।

'तुम पहचानते हो ?'—रजनी ने पूछा।

'नहीं के समान।'

'एकाध रुपया तो उसके हाथ में रखना था।'

'किसलिये।'

'महफिलों की यही प्रथा है।'

'तुम्हारी महफिलों की प्रथा मुझे नहीं पालना है।'

इतने में सबकी दृष्टि महफिल के मध्य भाग की तरफ गई। गायिका अपना हाथ कीका सेठ के हाथ में से छुड़ाने की कोशिश

कर रही थी। पान का बीड़ा सेठजी को देते समय उन्होंने उसका हाथ ही पकड़ लिया था। सम्पूर्ण महफिल खिल-खिलाकर हँस रही थी। गायिका के मुँह पर अप्रसन्नता दिखाई देती थी।

'राजेश्वरी एक चपत सेठ को क्यों नहीं लगाती ?'—आस-पास के चार-छः आदमी सुन सकें इतनी जोर से अविनाश ने कहा। गायिका राजेश्वरी ही थी।

'ऐसा करे तो पाँच सौ रुपया उसको कौन दे ?'—रजनी ने उत्तर दिया।

'उसके लिये इतना अपमान सहन करना ?'

'अरे, यह तो मौज है—ऐसी धींगामस्ती न हो, तो गायिका को अपमान मालूम हो। और सेठजी तो इसके बहुत बड़े परिचित हैं। मैं कहता था न—पद्मनाभ कहाँ जाते हैं—इसके ही यहाँ !'

हाथ छुड़ाकर राजेश्वरी अपनी जगह पर जा बैठी। आनन्द-सागर में डूबते-उतराते हुए सेठजी ने अपने हाथ से एक चमकती हुई अँगूठी उतार कर राजेश्वरी के ऊपर फेंकी। सब फिर हँसने लगे। पास बैठी हुई दूसरी स्त्री ने उसे उठा लिया।

'वकील साहब को तो पान दो।'

'पान में क्या जनाब ? अब तो सिर ओढ़ाई की बात है !'—छँटे हुए आलम मियाँ ने गणिका-शास्त्र का एक महान सूत्र प्रकट किया। महफिल के ऊपर पुनः हास्य की एक लहर चली गई। आलम मियाँ पहले एक मौलवी थे। बाद में एक नवाब साहब के मैनेजर हुए—लेकिन उसके बाद नवाब साहब की तिजोरी में

चूहों को दंड पेलते देखकर उनकी नौकरी छोड़, वे अधेड़ अवस्था में ही विश्राम लेने लगे। कीका सेठ और नवाब साहब के बीच में लेनदेन होता था—इसलिये साल में एकाध महीना आलम मियाँ सेठजी की मेहमानदारी का भी मजा उठाते थे।

उनकी बात सुनकर महफिल हँस पड़ी—राजेश्वरी का चेहरा और भी कठोर हो गया। कीका सेठ और पद्मनाभ परस्पर एक दूसरे को देखने लगे। राजेश्वरी की माँ जानकी ने यह देखकर आलम मियाँ को सलाम करके जवाब दिया—'वह भी होगा! आपके जैसे कदर दाँ मेहरबान सलामत रहें!'

राजेश्वरी ने इस प्रकार मुख बनाकर दूसरा गाना गाना शुरू किया मानो वह ऐसी बातें स्वप्न में भी सुनना नहीं चाहती।

१४

संगीत वास्तव में रत्नाकर है। भारतीय संगीत की गहराई नापना अशक्य है। वह मनुष्य को विलासी भी बना सकता है; और विरक्त भी। गायिका गा रही थी—

'कुञ्जन वन में श्याम झूलें हिंडोला।'

राजेश्वरी ने हवा में मोर पक्ष धारण किये हुए मुरलीधर बालकृष्ण की मूर्ति खड़ी की। वृक्ष की डाल पर झूला डालकर गोपियों द्वारा उन्हें झुलाया। प्याली और तूलिका द्वारा जैसे चित्रकार चित्र बनाता है, वैसे ही राजेश्वरी ने अँगुलियों द्वारा हवा

में रेखाएँ खींचकर मुखमुद्रा से रंग भर महफिल के सामने 'कुञ्जन वन में श्याम को झूला झूलते प्रत्यक्ष' दिखला दिया। ज्ञानी-अज्ञानी सब के नेत्र खुल गये। कुछ क्षण तक तो महफिल राजेश्वरी के बनाए हुए चित्र को देखने में तल्लीन रही।

परन्तु रसिकता की आदी जनता से रहा नहीं गया—वाह, वाह,—की पुकार के साथ ही वह गाने के बीच में शेर की जमावट चाहने लगी। किन्तु शेर के बदले गीता का गम्भीर सूत्र गाया जा रहा था—

'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥'
'कुञ्जन वन में श्याम झूलें हिंडोला'

उसने पूर्व से पश्चिम चलते हुए सूर्य की त्रिकाल-स्थिति दिखलाई—प्रभात, मध्याह्न और संध्या का चित्रण किया। द्वितीया का चन्द्र, अर्ध चन्द्र, और पूर्णचन्द्र दिखला कर चन्द्रमा का चित्रण किया। दियासलाई जलाकर काठ में अग्नि का अभिनय किया—और इन तीनों प्रकाशों की निरर्थकता उसने कुञ्जन वन में दिखलाई।

यह चित्र पूरा हुआ। महफिल कुछ व्याकुलता धारण करती हुई मालूम हुई। राजेश्वरी ने आगे भी बहुत मधुरता के साथ गीता का सूत्र ही गाया—

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥'
'कुञ्जन वन में श्याम झूलें हिंडोला'

अभिनय द्वारा उसने धर्मों के अलग-अलग प्रकार दिखलाये—तिलक, माला, जटा और कमंडल धारण करके उसने हिन्दू-धर्म दिखाया—हाथ पैर धो स्वच्छ वस्त्र बिछाकर पश्चिमाभिमुख बैठी हुई मूर्ति चित्रण कर—इस्लाम धर्म का निर्देश किया—घुटनों के बल बैठे क्रास धारण कर प्रार्थना करते हुए चित्रण कर ख्रीष्ट धर्म का प्रदर्शन किया। इन सभी धर्मों के बाह्य चिन्हों को परित्याग कर एक भगवान की शरण में जाने का संकेत करती हुई राजेश्वरी गीता के निश्चय पर आ गई—

'कुञ्जन वन में श्याम झूलें हिंडोला।'

अविनाश मन्त्र-मुग्ध हो गया। उसने कभी भारतीय अभिनय-कला ध्यान से नहीं देखी थी। भारतीय नाटकों को देखकर वह ऊब गया था। नाटक में होनेवाले अभिनय यदि हमारी कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना हो तो भले ही इस कला का विसर्जन हो जाय—ऐसी उसकी धारणा थी। उसने एकाध बार महफिल भी देखी थी—परन्तु उसमें एक ही चरण का पुनरावर्तन और व्यर्थ की हस्त-चेष्टा देखकर वह ऊब गया था। उसे योरोपियन नृत्य बहुत पसन्द आया था। उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं कि थी कि भारत में भी अभिनय-कला है। रजनी के आग्रह से ही वह आया था। स्त्रियों के लिये उसके हृदय में सम्मान था। उसके यौवन का प्याला अब छलकने लगा था। उसे जैसे विवाह संतोषदायक नहीं मालूम हुआ; वैसे ही विवाह के बिना कोई सम्बन्ध भी संतोषदायक नहीं लगा।

मंथन में पड़े हुए अविनाश ने एक बार अकस्मात् एक वेश्या

देखी। उस वेश्या का आकर्षण उसके छलकते हुए हृदय को खींच सका। वह विचित्र घटना और शिवनाथ तथा पद्मनाभ जैसे पूज्य पुरुषों का रहस्यमय जोवन, उसे चंचल बना रहा था। उस चंचलता से छूटने के लिए वह रजनो के साथ महफिल में आया। वहाँ आकर उसने हृदय पर नृत्य करती हुई वेश्या को देखा। उसके साथ होतो हुई दिल्लगो में अविनाश को सम्पूर्ण स्त्रो-जाति का अपमान होता हुआ मालूम हुआ। वह राजेश्वरी के और भी निकट आ गया। उसे राजेश्वरी पर ममता उत्पन्न हुई और जब राजेश्वरी की अवर्णनीय कला का परिचय मिला, तब उसे मालूम हुआ कि उसका आकर्षण वास्तविक है—वह मोह नहीं है—वरन् आदरणीय है।

अविनाश की कल्पना में जो बात भारतीय अभिनय में नहीं थी, वही बात राजेश्वरी ने मूर्त रूप में दिखा दी। यही नहीं—दर्शन शास्त्र को अगम्य बातों को उसने अभिनय के द्वारा व्यक्त किया। अविनाश के मन में भारतोय कला के लिये पूज्य भाव उत्पन्न हुआ।

राजेश्वरी की दृष्टि बारबार अविनाश पर पड़ती थी। परंतु उसे कोई देख नहीं सका—अविनाश भो नहीं।

वह पद्मनाभ को तरफ भी देखतो थी। वह गम्भीर समाज-सेवक वकोल दूसरों की तरह बेहयाई नहीं करता था। वह अभिनय देखता था—और उसके अच्छे अंशों को समझ रहा था। कभो-कभो उसके चेहरे पर विषाद झलकने लगता—और बारबार आवेश में आते कीका सेठ की तरफ—कोई न देखे—इस प्रकार घृणा के साथ देखता।

अभिनय बहुत अच्छा था। लेकिन महफिल को पागल बना दे—ऐसा नहीं था। लोग गाना सुनने जाते हैं, वे कुछ भक्त या विरागी बनने के लिये नहीं। दुर्भाग्य से घर का वातावरण ऐसा रहता है कि वह विरागी बनाने के लिये काफी होता है। वे लोग मूर्ख पत्नियों से ऊबकर दो घड़ी चित्त बहलाने के लिये गाना सुनने आते हैं। उनको मोक्ष प्राप्ति की लालसा नहीं होती। वे तो—'साँवरी सूरत' 'बांके नैन खंजर' 'धरकत छतियाँ हमार' 'ले गयो चीर मुरारी' 'जिया ललचाय'—ऐसे-ऐसे रसपूर्ण गायन सुनने आते हैं।

महफिल को नींद-सी आने लगी। राजेश्वरी ने गाना बन्द किया। राजा सेठ एकदम से बोल उठे—'यह सब पूजा-पाठ कहाँ से निकाला? राजेश्वरी! अब तो नाच होने दो!'—महफिल के लोगों ने सेठजी का अनुमोदन किया।

जानकी ने राजेश्वरी के हाथ में घुँघुरू दिये—राजेश्वरी ने वह पहनकर जमीन पर पैर रखे—साथ ही सबों के हृदय छमछमा उठे। सारंगी और तबले की आवाज आने लगी। तबला के ठेके के साथ राजेश्वरी ने पैर चलाना शुरू किया। छूम छनननन की आवाज़ से महफिल व्याप्त हो उठी।

पैर के साथ-ही-साथ अब वह हाथों को भी मरोड़ देने लगी। उसका सिर भी मधुरता के साथ हिलने लगा। और जब उसने कटिभंग की रचना दिखानी शुरू की, तब उसका सम्पूर्ण शरीर नाचने लगा। देह, कमर, पैर, हाथ और मुख, कोई प्रमाण-बद्ध वर्तूल, अर्धवर्तूल, सम्पूर्ण वर्तूल रचित करने लगा।

नृत्य में तेजी आने लगी। शरीर पर का दुपट्टा भी शरीर का अनुसरण करने लगा। चन्द्रिका तेज-भरे बादलों को उड़ाती हुई नाच रही थी। राजेश्वरी की कमर का लहँगा भी सौन्दर्य-पूर्ण वृत्त रचने लगा। सारंगी का हृदय-भेदक स्वर, अटपटे ठेके से मार्गदर्शक बनती हुई तबला की ताल, नर्तकी के घुँघुरू की छमछमाहट और उसके शरीर और वस्त्रों को रूपभरी रेखावली सम्पूर्ण महफिल को नचा रही थी।

सौन्दर्य परितृप्ति ही नहीं—नेत्र-परितृप्ति भी हो रही थी। राजेश्वरी का दुपट्टा बार-बार उसकी छाती पर से हट जाता था। उसका घेरदार लहँगा घुटनों तक उठ जाता था। सब लोग क्षुधित की तरह देख रहे थे। किसी के ओठ खुल गये थे। किसी की आँखें स्थिर हो गई थीं, कोई सिर हिलाने लगा। सम्पूर्ण महफिल को नर्तकी नचा रही थी।

एकाएक किसी पर जोर से धमाका पड़ा। नृत्य रुक गया और स्वप्न जैसा दृश्य पीछे परछाहीं छोड़ता हुआ अदृश्य हो गया। सब लोग इधर-उधर देखने लगे। एक आवाज सुनाई दी—'सूअर!'

ऐसे समय में भीतर ही भीतर कौन सा झगड़ा उठा? गणिका के शरीर और सौन्दर्य-दर्शन का प्रसंग था—इससे किसी को अनुदार होने की आवश्यकता नहीं थी। फिर यह गाली कहाँ से सुनाई दी?

शान्ति कोलाहल के रूप में परिवर्तित हो, इसके पहले ही रजनी अविनाश का हाथ पकड़कर बाहर खींच ले गया। अवि-

नाश के पास बैठे हुए मध्यवय के पुरुष की समझ में यह नहीं आया कि ऐसे आनंद के समय कोई मनुष्य कंधे पर हाथ क्यों मारता है। बहुत से आदमी अविनाश को पहिचानते नहीं थे। रजनी और अविनाश सबसे पीछे बैठे हुए थे। अपने एक मित्र को महफिल में लाने की आज्ञा जब रजनी ने कीका सेठ से ली थी, तब सेठजी को अपने मित्र का परिचय नहीं दिया था। भीतर-भीतर बात होने लगी—'पिये हुए था, बीड़ी नहीं दी, नहीं, नहीं, जगह के लिये झगड़ा था।'—केवल पद्मनाभ ने, जब रजनी अविनाश को बाहर ले जा रहा था, पीछे घूमकर देखा—और अविनाश को पहचाना।

'अरे, क्या करते हो ?'—रजनी ने बाहर निकलकर आश्चर्य से पूछा।

'घृणित ! असभ्य ! जंगली !'—बड़ी कठिनता से अविनाश अपना क्रोध दबाते हुए बोला।

'अरे होगा—लोगों से मार-पीट क्यों करते हो ?'

'सबका गला दबा दबाकर मार डालना चाहिये !'

'तुम्हारे हाथ में जब शासन आवेगा, तब ऐसा करना, अभी तो चुप-चाप बैठे रहो। इस तरह से लोगों से मारपीट करने से तुमको उत्तर देना कठिन हो जायगा।'

'लोगों की पशुता—नीचता—को मैं बरदास्त कर लूँ, क्यों ?'

'इसमें हर्ज ही क्या है ? तुम समझते हो कि लोग ऐसे जलसों में मनुष्य बनने आते हैं ?'

'चलो—भीतर चलकर बैठें।'

'मैं कभी भीतर नहीं जाऊँगा—सुन्दरता और कला का ऐसा अपमान ?'

'तो तुम सब को सुधारने निकले हो ?'

'बेशक !'

'तब तो भाई ! हमलोग घर वापस चलें ।'

'चलो—मैं एक क्षण भी यहाँ ठहरना नहीं चाहता ।'

दोनों मित्र घर चले । रजनी अविनाश के विचारों को अच्छो तरह से जानता था । किन्तु महफिल का वातावरण उसको पागलपन भरा क्रोध उत्पन्न करेगा—यह वह नहीं जानता था ।

मनुष्य जब-जब स्त्री-सौन्दर्य देखता है, तब-तब मनुष्याहारी राक्षस बन जाता है । वैवाहिक जीवन में भले ही यह हो कि रोग, क्लेश और लड़कों से परिपूर्ण स्त्री एक मनुष्य की शिकार बन जाय—किन्तु जहाँ कला की उपासना होती है, वहाँ भी मनुष्य इस राक्षसी वृत्ति को नहीं छोड़ता । वैवाहिक जीवन में एक स्त्री एक ही पुरुष का शिकार बनती है । परन्तु कला को मूर्त्त बनाने वाली कोई कलावता, क्या सम्पूर्ण मनुष्यों के शिकार के लिये बनी है ?

नृत्य करती हुई राजेश्वरी के प्रति महफिल के लोगों की वृत्ति देखकर अविनाश के मन में हो रहा था कि मानो बाघ के झुंड में एक गाय छोड़ दी गई है । दर्शकों की ललचाई आँखें, विकलता भरे मुँह, और श्वान-पुच्छ की हरकतें देखकर, वह बहुत देर से उकता रहा था । गुस्से से बार-बार दाँत पीस रहा था । लेकिन जब उसके आगे बैठे हुए एक अधेड़ पुरुष ने नाच की

एक मनोहर लचक देखकर सिसकारी भरी, तब उससे नहीं रहा गया। उसका हाथ अपने आप उठा, और उस मनुष्य के कंधे पर धमाका पड़ा।

कोका सेठ के घर के बाहर भी एक बड़ी-सी भीड़ जमा थी। भीड़ में से कितने ही लोग आसपास के मकानों के खम्भों पर चढ़कर गाना सुन रहे थे, और वाह, वाह, कर रहे थे। वे लोग भी महफिल के लोगों से अपने को ज्यादा सभ्य बनाना पसंद नहीं करते थे।

अविनाश और भी उत्तेजित हुआ। सुधारक लोग चाहते हैं कि दुनिया उनके मन के अनुसार चले—लेकिन दुनिया को अपने मन के अनुसार चलाने के लिये बड़े धैर्य की आवश्यकता होती है। अविनाश लोगों को एक दिन में साधू बना देना चाहता था। लोगों की पशुता देखकर वह बड़ी जल्दी उत्तेजित हो जाता था। उस दिन रात भर उसे नींद नहीं आई—विचारों की शृंखला चलती रही—आखिर में उसने निश्चय किया कि राजेश्वरी से मिलकर माफी माँगू। दूसरे दिन शाम को वह रजनी के पास जाकर बोला—'रजनी! मुझे राजेश्वरी से मिलना है। तुमने तो उसका घर देखा है।'

रजनी हँसा। उसने पूछा—'क्यों भाई! तुम क्यों पागलपन करते हो? सीधे से ब्याह कर लो। निरूपमा बुरी नहीं है!'

अविनाश जल उठा। रजनी भी उसको सबों के समान पामर समझता है? मनुष्य के हृदय में कोई भूत पैदा हो और उस भूत के संतोष के लिये विवाह किया जाता हो—अविनाश

को रजनी की बातों से ऐसा मालूम हुआ। अविनाश को पुरुष, स्त्री और विवाह तीनों का अपमान होता हुआ मालूम हुआ—वह बोला—'तुम समझते हो कि मैं किसलिये राजेश्वरी से मिलना चाहता हूँ ?'

'अच्छी तरह से।'—रजनी ने हँसकर उत्तर दिया।

'हँसो मत, नहीं तो एक चपत लगा दूँगा ?'

'ऐसा न करो—मारपीट के समान महत्व दुनियाँ में दूसरी चीज का नहीं है—इसलिये मैं हँसना बंद कर देता हूँ।'

'मुझे राजेश्वरी से माफी माँगना है।'

'तुमने ऐसा कौन सा अपराध किया है ?'

'कल सारी महफिल ने अपराध किया है। मनुष्य मात्र के लिये शर्म की बात है।'

'तुमको महफिल ने प्रतिनिधि चुना है क्या ?'

'मैं ऐसी महफिल का प्रतिनिधि हो ही नहीं सकता।'

'तुम्हारी माफी की उसको क्या आवश्यकता है ?'

'उसको आवश्यकता हो या न हो—हम लोग मनुष्यता से क्यों हाथ धो दें ?'

'शायद वह तुमको घर में घुसने भी न दे। पुरुषों की शरारत स्त्रियों को अच्छी नहीं लगती ?'

'अच्छी कैसे लगेगी ?—किसी भी स्वाभिमानी स्त्री को ऐसा बर्ताव अच्छा न लगेगा।'

'ओ बेवकूफों के सरदार ! तुमको स्त्रियों का क्या अनुभव ?

स्त्रियों को क्या अच्छा लगता है, और क्या नहीं, यह कहने वाले तुम कौन ?'

'क्यों, स्त्रियों के मन की बातें मैं नहीं समझ सकता ?'

'देखो अविनाश ! मेरा विवाह हुआ है। अपनी पत्नी का मुझे पूरा ज्ञान है—फिर भी उसके मन की बातें मैं समझता हूँ, ऐसा कहने की हिम्मत नहीं होती।'

'तुम पति होने के योग्य नहीं।'

'अपनी सब प्रकार की नालायकी मुझे मंजूर है। रमा उसे निभा ही लेती है।'

'तुम्हारे समाज का यह जुल्म है—विवाह के आगे तुम्हारी दृष्टि जा ही नहीं सकती। उसके अतिरिक्त और कोई कल्पना आ भी नहीं सकती।'

'कल्पना तो आती है—विवाह के अतिरिक्त कितने ही सम्बन्ध किसी-न-किसी तरह निभाये भी जाते हैं। किन्तु उसके अतिरिक्त और कौन-सा सम्बन्ध स्थापित करें—यह समझ में नहीं आता।'

'उस सम्बन्ध में पूरी स्वतंत्रता चाहिये—किसी प्रकार का बन्धन न हो।'

'जिसे तुम बन्धन कहते हो, उसे बहुत से लोग जीवन का अंग कहते हैं। उसके बिना बहुत-सी अड़चनें पैदा होती हैं।'

'मैं नहीं मानता। तुम्हारे जीवन के अंग तो कैद की दिवाल बन जाते हैं।'

वाद-विवाद से किसी प्रश्न का निराकरण नहीं हो सकता।

अविनाश ने इतना अधिक आग्रह किया कि रजनी को उसे स्वीकार करना ही पड़ा। उसने कहा—'अविनाश! यह भयंकर मार्ग है। पाप को हम लोग न मानें, नीति के प्रति बहुत उदारता रखें—लेकिन एक क्षण की भी निर्बलता दावानल प्रकट कर देगी।'

अविनाश को नारायणी याद आई। उसे गणिका-गृह वाला अपना ही प्रसंग याद आया। उसे भय मालूम हुआ। भीतर-ही-भीतर कँपकँपी मालूम हुई। परन्तु युवक के हृदय का साहस भय की परवाह नहीं करता। उसने उत्तर दिया—'तुम्हारे पड़ोस में तो दावानल सुलग ही रहा है। मैं, तुम या सभ्य समाज का एक भी व्यक्ति उसकी लपट से बचा हुआ है—ऐसा कह सकते हो? यदि उसको बुझाना हो तो आग में पड़ना चाहिये।'

'चलो—कूद पड़ो आग में—बढ़ो आगे।'

कहकर दोनों राजेश्वरी के घर की तरफ चले।

रजनी मानव-हृदय की निर्बलताओं से परिचित था। वह समझ गया कि सारी पुरुष जाति का प्रायश्चित्त करने के लिए निकला हुआ अविनाश राजेश्वरी के रूप में पागल बन गया है। वह माफी के आवरण में अपनी कमजोरी को छिपा रहा है। थोड़ी दूर चल कर जब अविनाश ने कहा—'इस रास्ते चलो' तब रजनी को बहुत आश्चर्य हुआ—क्योंकि यह रास्ता निम्न कोटि की गणिकाओं के घरों का था। उसने पूछा—'क्यों?'

'इस तरफ मुझको कुछ देना चुकाना है।'

'यहाँ भी देना-लेना कर गये हो क्या?'

'हाँ, थोड़ा-सा पैसा बाकी है।'

'चलो—देने का तो दास होकर रहना चाहिये !'

अविनाश इस गली में आया था। पहले अकेला आया था। इस बार मित्र के साथ था—वैसी ही जागृति, वैसी ही जगमगाहट, वैसा ही रूप-प्रदर्शन, और वैसी ही रूप लोलुपता थी।

गृह-जीवन में क्या कमी है—जिससे संसार ऐसे आनन्द के पीछे पड़ा रहता है ? शिष्ट-समाज में क्या नहीं मिलता, जिससे शिष्ट-समाज के मनुष्य ऐसे अशिष्ट-समाज में दौड़े आते हैं ? अशिष्ट कहकर भी उसके प्रेमी गृहस्थाश्रमी इस बहिष्कृत आश्रम में आकर क्या खोजते हैं ? क्या पाते हैं ?

'देखो—अविनाश ! वह कौन जा रहा है।'—रजनी ने धीरे से कहा।

'प्रोफेसर जयंत ! दर्शन और धर्म के मर्मज्ञ ?'

'हाँ, वही।' थोड़ी दूर आगे चलकर रजनी ने फिर पूछा—'इनको पहचानते हो ?'

'नहीं।'

'वह मेरे पड़ोस में जो गंगा बहन रहती हैं न—उनके पति !'

'पर इनको तो चार-पाँच लड़के हैं।'

'एक और होनेवाला है, इसीलिये तो वह इस तरफ आये हैं।'

दोनों मित्र जब एक मकान के सामने आये तब उसमें से विद्यार्थी अवस्था के तीन मित्र निकल रहे थे। उनमें चन्द्रानन और धर्मानन्द शर्मा विशेष परिचित थे।

'इनको पहचानते हो या नहीं ?'

'धर्मानन्द ! जो कालेज में ब्रह्मचर्य-पालन का उपदेश दिया करते थे ?'

'हाँ।'

'मुझको भी इसी मकान में काम है।'

रजनी हँसा। एक भी मनुष्य निर्बलता से परे नहीं है। प्रोफेसर जयंत जैसों को जरूरत, कोका सेठ जैसों को शौक, शर्मा और अविनाश जैसों को आवश्यकता—उसके जैसे विवाहित, गंगा बहन के पति भी इस मार्ग की धूल छानते हैं।

'क्यों हँसते हो ?'—अविनाश ने पूछा।

'मेरे मन में यह विचार आया कि यहाँ देना बाकी न रहता होगा।'

'मुझको काम है, चलो।'—कहकर अविनाश ने घर में पैर रखा।

'आइए साहब ! मैं आपकी राह देखता था।'—लठैत ने अविनाश का स्वागत किया। वह उसी दिन समझ गया था कि तेजी से भागता हुआ यह युवक, फिर यहाँ वापस आवेगा।

लठैत के स्वागत की तरफ ध्यान दिये बिना अविनाश ऊपर गया। रजनी उसके पीछे था। इस समय अविनाश को पहले दिन जैसी घबराहट नहीं थी। राक्षस को रोज देखने की आदत डालें तो राक्षस का भय जाता रहता है।

वे ही युवतियाँ भीतर बैठी हुई थीं। अविनाश जिसके पास से छूट कर उस दिन भागा था, वह अविनाश को देखते ही झट

उसके सामने आकर खड़ी हो गई। और उसका हाथ पकड़ कर खींचने लगा।

'आइए, आइए, बाबू साहब। दो दिन से मैं आपकी राह देख रही हूँ।'

'जिंजर के पैसे बाकी हैं, वही देने के लिये आया हूँ।'—धीरे से हाथ छुड़ाकर अविनाश ने कहा।

'जाओ जी! वह क्या लिया जा सकता है?'—कहकर युवती ने उसके गले में हाथ डालने का प्रदर्शन किया।

अविनाश की आँखों में आश्चर्य प्रकट हो रहा था। युवती के हावभाव से उत्पन्न होती विह्वलता, उसके चेहरे पर दिखाई नहीं देती थी। युवती भी आश्चर्य से उसकी तरफ देखने लगी। अविनाश ने कहा—'आप से कुछ पूछना है।'

'प्रसन्नता से पूछिये। जरा आराम से बैठ कर बातें कीजिये।'—कहकर उसने अविनाश को एक मसनद पर ले जाकर बैठाया। रजनी को दूसरी युवती ने पकड़ कर एक तरफ अपने पास बैठाया। युवती ने अविनाश से पूछा—'क्या मँगाऊँ?'

'कुछ भी नहीं।'

'आपके लिये?'—उसने रजनी की तरफ देखकर पूछा।

'कुछ भी नहीं—कुछ पी लें, तो रात में नींद न आवे।'

'रात को तो बेवकूफ सोते हैं।'—रजनी के पास बैठी हुई युवती ने कहा।

'बाई जी! दुनियाँ में बेवकूफ कम हैं?'—रजनी ने उलटा

प्रश्न किया। युवतियाँ हँसने लगीं। उनके हास्य में मनोविकार को बढ़ाने वाली उच्छृङ्खलता थी।

अविनाश इतना बेसुध हो गया था कि उसके पास बैठी हुई युवती उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर हिला डुला रही थी, उसे इसकी भी खबर नहीं थी। अविनाश ने पूछा—'आपका नाम क्या है?'

'लज्जावती।'

'एक बात पूछूँ?'

'अवश्य—एक नहीं हजार बात पूछिये। आप जैसे की मुहब्बत.........।'

'आपको यह सब अच्छा लगता है?'

लज्जावती ने अविनाश का हाथ छोड़ दिया और क्षण भर एकटक अविनाश की तरफ देखती रही—फिर हँसकर बोली—हाँ, क्यों न अच्छा लगेगा?'

अविनाश शान्त रहा। उसके मुख पर प्रश्नों की परंपरा आ रही थी। इसे लज्जावती ने लक्ष्य किया। वह अविनाश के और भी निकट आना चाहती थी। सर्वदा विजयी होनेवाली यह रूपवती अपने एक पराजय को सहन नहीं कर सकती थी। इतना निकट आया हुआ पुरुष, एकाएक उसको छोड़कर चला जाय—यह उसके जीवन में पहला ही प्रसंग था। इसलिये अविनाश और उसका डरपोंकपन उसे बारंबार याद आता था। उसे आशा थी कि अविनाश फिर आवेगा। वह दो दिनों के बाद फिर आया।

लज्जावती ने उसकी जिज्ञासा तृप्त करके भी उसे फँसाने का निश्चय किया था।

'देखिये—तीन आदमी अभी यहाँ से गये हैं, और हम दो आये हैं······।'

'अभी बारह और आवेंगे !'—उसने अविनाश का वाक्य पूरा किया। उसकी आँखों में तिरस्कार भर आया। उसकी आवाज़ सख्त हो गई। उसके शरीर से मृदुता गायब होकर एक योद्धा जैसी कठिनता प्रकट हो गई। अविनाश जरा पीछे हटने लगा। यह देखकर लज्जावती ने उसका हाथ पकड़ हँसकर पूछा—'अब और क्या पूछना है ?'

'वास्तव में यह अच्छा लगता है ?'

'और क्यों न अच्छा लगे ?'

'सब पुरुष आपकी रुचि के अनुकूल आते हैं ?'

'यह आप विचार लें। आप जानते हैं कि हर प्रकार के मनुष्य यहाँ आते हैं—आफिसर, डाक्टर, वकील, विद्यार्थी, चोर, गाड़ीवान और मजदूर !—फिर आप यहाँ क्यों आये ?'

'मुझे माफ करिए—मैं आपका अपमान करने नहीं आया हूँ।'

लज्जावती फिर हँसी।

'अपमान ? हमलोग तो मानापमान से परे हैं। अपमान हो तो यहाँ आनेवालों का।'

'क्यों ?'

'मैं आपसे एक प्रश्न पूछूँ ?'

'हाँ।'

'आपको यह सब अच्छा लगता है ?'

अविनाश समझ गया कि यह प्रश्न सम्पूर्ण पुरुष-वर्ग से किया जा रहा है। वेश्याओं को उत्पन्न करनेवाला कौन ? उनको पोषण देनेवाला कौन ? पुरुष ! और पुरुष जब अपने बलिदान से पूछता है कि तुमको अग्नि में जलना अच्छा लगता है ? यही प्रश्न अगर उससे किया जाय तो वह क्या उत्तर देगा ? अवश्य, यह सब अच्छा ही लगता है ! इसमें अपमान किसका ? पुरुष का या स्त्री का ? अविनाश कुछ उत्तर नहीं दे सका। लज्जावती ने उसको उलझन में देखा—उसको और भी उलझन में डालने के लिये उसने पूछा—'उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं।'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आता।'

'क्या आपकी समझ में यह आता है कि इन वेश्यालयों में कितनी आपकी बहनें हैं, कितनी लड़कियाँ हैं, कितनी भतीजियाँ और कितनी भानजियाँ हैं ?'—उसकी आँखों से आग बरस रही थी। चेहरे पर नसें उमड़ आईं और वह पहले की अपेक्षा अधिक अवस्था की मालूम होने लगी। रजनी के पास बैठी हुई युवती उठकर चली गई थी। वह अकेला बैठा था। उसने अविनाश को सहारा देने के लिए उत्तर दिया—'इसमें केवल पुरुषों का ही दोष है ?'

'स्त्रियों के लिये पुरुषों ने इसके अतिरिक्त और कौन सा रोजगार छोड़ा है ?'

'वह स्त्रियों को कमाने की चिन्ता से मुक्त करने के लिये स्वयं स्त्रियों का भार उठा रहे हैं।'

'ठीक है—पुरुषों का बहुत बड़ा उपकार! या तो पत्नी बनाकर एक पुरुष उसका सौन्दर्य लूटे, या वेश्या बनाकर सब उसका सौन्दर्य लूटें—और बदले में पोषण!'

'आप पढ़ी-लिखी हैं।'

'हाँ।'

'कहाँ तक?'

'यह जानकर क्या करेंगे? यह सब बातें जाने दीजिये—और जरा जिन्दगी का लुत्फ उठाइए।'—एकाएक उसके चेहरे पर और आँखों में विलास नृत्य करने लगा। अविनाश को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—'अभी तो आप गुस्से में थीं। इतनी जल्दी किस तरह से भाव बदल दिया?'

'हमारी देह, देह नहीं है—यह तो साँचा है। पुरुषों को जब वह सौंपती हैं, तब उसमें से आत्मा को निकाल लेती हैं।'—उसका चेहरा फिर तेज हो गया! इतनी बुद्धिमती स्त्री एक गणिका का जीवन व्यतीत करे यह बहुत दुखप्रद था। उसके हृदय में अग्नि जल रही थी—फिर भी उस अग्नि के जलानेवाले पुरुषों को क्षण भर में शरीर सौंपने के लिये वह तैयार थी।

'अब चलें।'—रजनी ने कहा।

'कहाँ जायँगे?' लज्जावती ने पूछा।

'एक जगह जाना है।'—अविनाश ने उत्तर दिया।

'फिर भी वही की वही बातें।'

'नहीं, नहीं, हमको गाना सुनना है।'—रजनी ने कहा।

'किसके यहाँ जायँगे?'

'राजेश्वरी के यहाँ ।'—अविनाश ने कहा ।

'हा······हा···हा······' लज्जावती हँसते हुए बोली—'वह आज से केवल संगीत-सेविका ही नहीं रही ।'

'अर्थात् ?'

'कल उसकी 'नथ' नहीं देखेंगे ।'

'इससे क्या ?'

'ओ बेवकूफ ! दूसरे किसी ने तुम्हारी तरह बातें की होतीं, तो मैं धक्के देकर बाहर निकाल देती । लेकिन न जाने क्यों मुझे तुम्हारी बेवकूफी पसंद आती है—इसलिये तुम्हारी बातों का जवाब देती हूँ—राजेश्वरी ने आज पहले पहल अपना शरीर बेंचा है ।'

'क्या ?'—बोलते-बोलते अविनाश उठकर खड़ा हो गया ।

'नहीं समझे ?'—लज्जावती ने हँसते हुए पूछा !

'आपसे किसने कहा ?'

'राजेश्वरी मेरी बहन है—इसीलिये जानती हूँ ।'

अविनाश के हृदय में अकथनीय वेदना हुई । वह दरवाजे की तरफ चला । रजनी पीछे रह गया था । अविनाश ने आवाज दी—'चलो रजनी ! दौड़ो !'

सीढ़ी उतरकर तेजी से चलते हुए अविनाश का हाथ पकड़कर रजनी ने पूछा—'क्यों ? क्यों ? इतनी जल्दी क्यों करते हो ? कहाँ जाना है ?'

'राजेश्वरी के यहाँ ।'

'वहाँ जाकर क्या करोगे ?'

कह नहीं सकता—पर मैं जाऊँगा जरूर !'

रजनी को मालूम हुआ कि अविनाश में कुछ पागलपन आ गया है। उसको रोकना भी मुश्किल था, अविनाश ने रास्ता नहीं देखा था। इसलिये रजनी ने मार्ग दिखाया। राजेश्वरी का घर पास ही था, वे लोग पहुँच गये।

मकान के बरामदे में कौन था ?

इस महल्ले में दीपक जलाकर रात का अंधकार मिटाने के लिये प्रयत्न हो रहा था। रजनी और अविनाश ने दीपक के प्रकाश में बरामदे में खड़े कीका सेठ को पहचाना।

अविनाश को उड़ने का मन हुआ। बरामदे में जाकर कीका सेठ का गला दबाकर मार डालने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी। लेकिन दोनों बन्धुओं को द्वारपाल ने रोका।

'आज बाईजी की तबीयत ठीक नहीं है—गाना नहीं होगा।'—उसने कारण बताया।

'भीतर एक आदमी तो है।'—अविनाश ने कीका सेठ की तरफ निर्देश किया।

'उसकी तुमको क्या पंचायत ?'—आँखें लालकर मजबूत द्वारपाल ने कहा।

'मुझको जरूरी काम है।'—अविनाश ने आग्रह किया।

'जाओ-जाओ !'—सभ्यता की मूर्ति द्वारपाल ने उत्तर दिया।

द्वारपाल के साथ हाथापाही करके अविनाश को भीतर जाने की चेष्टा से रोककर, रजनी ने उसको पीछे खींचा। हर स्थान पर हाथापाही ठीक नहीं। इसके अतिरिक्त एक दूसरा भी कारण था।

रजनी ने धीरे से कहा—'देखो-देखो—पद्मनाभ आ रहे हैं।'

दोनों आदमी हटकर अलग खड़े हो गये। द्वारपाल ने खड़े होकर गुदड़ी के नीचे से एक छूरा निकाला और हाथ में छिपा लिया।

पद्मनाभ दूर से छिपता-छिपता आ रहा था। मनुष्य को बुरा काम करने की शर्म नहीं होती पर—बुरा काम करते हुए पकड़ जाने की शर्म रहती है। पद्मनाभ ने द्वार में पैर रखा। दरवान ने झुककर सलाम किया। उसने सीढ़ी पर एक पैर रखा, और उसकी गर्दन पर एक मजबूत पंजा पड़ा—इतना ही नहीं, उसकी आँखों के सामने एक छूरा चमका।

१६

भोग-विलास के बाजार में छूरे क्यों चमकें? पैसा देकर जो आवश्यक हो उसे लेना—यह वैश्य सिद्धान्त है। इस वैश्य सिद्धान्त का पालन वेश्याएँ बराबर करती हैं। फिर छूरा क्यों? लेकिन नहीं, एक सिद्धान्त इससे भी बड़ा है—संसार में कामिनी और कांचन के लिए सब कुछ हो जाता है।

पद्मनाभ के ऊपर चले हुए छूरे में कोई ऐसी ही बात होनी चाहिये? राजेश्वरी को खिड़की पर बैठे थोड़े ही दिन हुए थे। उसके शरीर पर डाक बोली जा रही थी। उसको 'नथ' अभी नहीं उतरी थी।

जानकी ने अपने यौवन काल में अच्छी गानेवालियों में नाम पैदा किया था। गायन-कला में निपुण और केवल वेश्यावृत्ति करने वाली वेश्याओं में बहुत अन्तर होता है। कलावती में संगीत, नृत्य और अभिनय की उपासना रहती है। इन कलाओं में निपुण होने के लिये बड़े परिश्रम की आवश्यकता होती है। बहुत बड़ा संयम करना पड़ता है। इन कलाओं के परिचय से कलावती में रसिकता आती है। उसमें वाक्-पटुता आ जाती है। साधारण वेश्याओं की परिस्थिति ऐसी नहीं होती। यह बात ठीक है—कलावती भी अपने शरीर को बेंचती है—किन्तु दो-चार के हाथों ही। कोई-कोई तो एक ही के साथ अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देती हैं। और अपनी लड़कियों को इस व्यवसाय में न उतरने देने का भरसक प्रयत्न करती हैं—यद्यपि सभ्य-समाज उनके इस प्रथा को सफल नहीं होने देता।

जानकी अपनी दोनों लड़कियों के लिये बहुत प्रयत्नशील थी। संगीत की शिक्षा के बाद विद्याध्ययन की भी उसने व्यवस्था की। एक वेश्या की लड़कियाँ सभ्य-समाज की लड़कियों के साथ बैठकर पढ़ने में अयोग्य समझी गईं। यद्यपि यह कोई नहीं कह सकता कि सभ्य-समाज की लड़कियों के पिता और इन वेश्या-पुत्रियों के पिता एक ही न होंगे। प्रधानाध्यापिका को मालूम हुआ कि पाठशाला में आनेवाली दो लड़कियाँ वेश्या की हैं। उन्हें यह अनीतिपूर्ण प्रतीत हुआ और उन्होंने उन दोनों निर्दोष लड़कियों को पाठशाला से निकाल दिया।

जानकी ने दोनों लड़कियों को बाहर भेजकर पढ़ाने की व्यवस्था

की। दोनों बहनें वेश्या की लड़कियाँ है—यह खबर किसी को न मालूम हो—ऐसी व्यवस्था की।

लज्जावती, राजेश्वरी से दो वर्ष बड़ी थी। दोनों बहनें पढ़ने में तेज थीं। लज्जावती पढ़ने में जितनी दिलचस्पी लेती थी, संगीत में उतनी नहीं लेती थी। किन्तु राजेश्वरी ने छोटेपन से ही संगीत की ओर अपनी अभिरुचि दिखलाई थी।

लज्जावती हँसमुख और बातूनी थी। उसके शरीर ने बहुत जल्दी विकास पाया। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में एक शिक्षक उसपर मोहित हो गये। शिक्षक ने पत्र लिखकर लज्जावती पर अपना प्रेम प्रकट किया। जवानी का समय विचित्र होता है—उस समय भावुकता का वेग होने के कारण गलतियाँ जल्दी हो जाती हैं। प्रेमी शिक्षक के प्रेम में पड़कर लज्जावती ने विवाह की शर्त पर अपना शरीर उसको सौंप दिया। जब लज्जावती ने उसको अपने वंश का परिचय दिया, तब शिक्षक की नैतिक भावना ने प्रेम को दबा दिया। लज्जावती से की हुई प्रतिज्ञा भंग करने में ही शिक्षक को अपना कल्याण जान पड़ा।

इस प्रसंग की बहुत चर्चा हुई। लज्जावती ने शिक्षक के प्रेम-पत्र प्रकट किये। इससे उसकी नौकरी छूट गई। लज्जावती को किसी ने सहायता नहीं दी। पाठशाला की सब परिचित लड़कियों ने बातचीत करना बन्द कर दिया। दोनों बहनें पाठशाला से निकाल दी गईं। शिक्षक का दोष किनारे रखकर गणिका-पुत्री के जातिस्वभाव पर प्रहार होने लगे। सभ्य-समाज में चर्चा होने लगी—और अनीतिमय जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्रियों के बालि-

काओं को पाठशाला में न भरती करने का नियम बना दिया। इस नियम द्वारा पाठशाला की पवित्रता की रक्षा की गई।

लज्जावती ने फिर दूसरी पाठशालाओं में पढ़ने का प्रयत्न किया। प्रसिद्धि-प्राप्त गणिकापुत्री को भला शिक्षा कैसे दी जाती?

जानकी ने लज्जावती को फिर से संगीत में लाना चाहा—उसमें उसका मन नहीं लगा। उपन्यास पढ़-पढ़कर उसके स्वप्न में विचरण करनेवाली इस युवती को जब मालूम हुआ कि उसके जीवन की घटनाएँ उसे उपन्यास में भी जगह नहीं दे सकतीं, तब उसके हृदय में बड़ी चोट लगी। और जब उसको विश्वास हो गया कि उसका जीवन सभ्य-असभ्य सब प्रकार के पुरुषों की वासनातृप्ति के अतिरिक्त और किसी उपयोग में न आवेगा; तब उन्मत्त होकर वह उसी मार्ग पर चल पड़ी। जानकी की अनिच्छा होते हुये भी उससे अलग होकर, लज्जावती ने वासनातृप्ति की एक दूकान खोली। सभ्यता की चादर ओढ़कर बैठे हुए समाज के मुखियों को, लुक-छिपकर समाज का अनादर करके गणिकाओं के यहाँ जाकर, सभ्यता की आहुति देते देख, लज्जावती बहुत आनन्द पाती थी। और अपनी श्रेष्ठता का अनुभव करती थी। पुरुषों को प्रसन्न करने में पत्नियाँ असफल रहती हैं। और गणिकाएँ सफल होती हैं—यह देखकर उसने पत्नियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा। वेश्याओं को असभ्य समझने वाले समाज के मुखियों को अपनी ओर आकृष्ट कर, बेवकूफ बनाने में, उनसे बदला लेने में, वह आनन्दानुभव करती। उसमें संस्कार था, वाग्छटा थी, और था मादक लावण्य—इसलिये संस्कारी कहलाने

वाले पुरुष उसके जाल में बहुत फँसते थे। विनय से प्रारंभ करके निर्लज्ज अमर्यादा तक धीरे धीरे ले जाती हुई, यह गणिका अपने पाश की ग्रंथियाँ वज्र जैसी सुदृढ़ बनाती थी। अफसरों, साहित्यकों, लोक-नेताओं और कुशल व्यवसायियों को पवित्र पत्नियों से विमुख बनाने में, पुरुषों को पवित्रता को धूल में मिलाने में, उनके घमंड को ठोकर मारने में, वह अपूर्व आनन्द मानती थी।

राजेश्वरी का मन दूसरे मार्ग पर चला। वह छोटेपन से शर्मीली थी। उसके शरीर और शृङ्गार को छोटेपन से महत्व दिया जाता था। उसमें स्वाभिमान की मात्रा अधिक थी, इससे शर्मीलापन बढ़ा और रूठने की वृत्ति जाग्रत हुई। स्वाभिमान के कारण, बात न सह सकने के कारण, उसने छोटेपन से ही संगीत को साध्य कर लिया। लज्जावती को जब संगीत न रुचता और जानकी उससे कुछ कहती, तब वह सामने होती—उपद्रव कर या रोकर माँ को निरुत्तर बना देती। किन्तु राजेश्वरी बात कहने का अवसर ही न आने देती। यदि ऐसा होता भी तो लज्जावती की तरह रो गाकर उसे भूल जाने की शक्ति उसमें नहीं थी। बात का उसके हृदय में घाव हो जाता। मन-ही-मन वह उस घाव की पीड़ा का अनुभव करती। उसकी आकृति और बर्ताव संकोच से भर जाते, यह ढंग कई दिनों तक चलता। इससे जानकी उससे कुछ कहने की हिम्मत न करती।

उसको शिक्षा देनेवाले उस्ताद और कत्थक भी उसकी बुद्धि देखकर प्रसन्न होते थे। शिष्याओं को अपनी कला से अपरिचित

रखने में अपना गौरव माननेवाले ये महा क्रोधी संगीत-गुरु राजेश्वरी के आगे ठंढे पड़ जाते थे। लज्जावती के हठीलेपन से वे ऊब जाते थे—इसीलिये लज्जावती संगीत कम सीख सकी। राजेश्वरी ने गुरुओं की सब कलाएँ सीखकर उसमें अपनी बुद्धि और कल्पना का प्रयोग करके, उसे और भी अधिक बढ़ा लिया। जानकी छोटेपन से उसे महफिलों में अपने साथ ले जाती थी—और महफिल के वातावरण से उसे परिचित कराती थी। महफिलों के अनुभव उसे बहुत दुःखद मालूम होते थे। माँ की तरफ पड़ती नजरों का उद्देश्य वह समझती थी। माँ से होती हुई निर्लज्ज दिल्लगी से उसका हृदय फट जाता था।

महफिलों में उतरने का प्रसंग उसको जल्दी ही आया। जानकी ने उसका कौशल परखकर अपने बदले धीरे-धीरे राजेश्वरी को आगे करना शुरू किया। जब तक राजेश्वरी छोटी थी, तब तक तो उसके गायन से प्रसन्न होते हुए पुरुष उसके प्रति सभ्य रहे। किन्तु अवस्था और रूप बढ़ने के साथ ही उसकी तरफ आँखों के हमले होने लगे—और वीभत्सतापूर्ण दिल्लगी भी होने लगी। स्वाभिमानी स्वभाव वाली राजेश्वरी को यह बर्ताव बहुत अपमानजनक मालूम होता। वह बीच में ही, किसी कारण के बिना, गीत या नृत्य बंद करके अपनी अप्रसन्नता प्रदर्शित करती। अटक गई राजेश्वरी से फिर से गाना गवाना कठिन था। उसके प्रथम बार के ही इस प्रकार के बर्ताव से चिढ़कर जानकी ने पूछा—'यह क्या किया? ठीक समय पर गाना बन्द क्यों कर दिया?'

'मुझको लोगों की ऐसी हरकतें अच्छी नहीं लगतीं।'

'इन हरकतों पर तो हम लोगों का जीवन है।'

'ऐसे जीने से तो न जीना अच्छा !'

जानकी ने कुछ जवाब नहीं दिया। लेकिन दूसरी बार जब राजेश्वरी ने दिल्लगी न सह सकने के कारण गाना बीच में ही बन्द कर दिया, तब जानकी क्रोध से आपे के बाहर हो गई। महफिलों पर ही उनका जीवन यापन होता था। राजेश्वरी ऐसा करेगी तो उसको कौन बुलावेगा ? उसके घर कौन आवेगा ? जानकी ने धमकाया। मारने का भी डर दिखाया। जो माँ उसकी बात तक कहने की हिम्मत न करती, वह इस अवस्था में मार का भय दिखावे, यह राजेश्वरी के लिये असह्य था। उसके स्वभाव ने मार की धमकी से उसको और भी हठी बना दिया।

देखते ही देखते राजेश्वरी का अच्छी गाने वालियों में नाम हो गया। उसके कोठे पर संगीत-रसिकों का ताँता लगा रहता था। उसे धमकाने के दूसरे ही दिन फिर ऐसी ही घटना हुई। प्रत्येक जलसे में ऐसा ही होता है। संगीत की दिव्यता को मनुष्य झट से पार्थिव बना देता है। परन्तु जानकी ने विह्वल बने हुए पुरुषों से बिनती की—'हुजूर लड़की से छेड़छाड़ मत करिये, डरती है ! गाना बन्द कर देगी !'

गाना बन्द करने की तैयारी करती हुई राजेश्वरी ने गाना चालू रखा। उसको माँ पर दया आई। उनका पेशा ही ऐसी लोलुपता को आश्रय देता है। फिर जानकी क्या करे ? मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है—फिर जलसों की दिल्लगी कैसे रोकी जा सकती है ? राजेश्वरी विचारशील बनी। उसने हठ छोड़

दिया। जलसों में विह्वल बनते पुरुषों की हरकतें देख, व्यग्र बनती जानकी ने देखा कि अब राजेश्वरी गाना बन्द नहीं करती। मार की डर और लड़की की शालीनता, इन दो कारणों से वह सुधर गई।

यद्यपि राजेश्वरी अब रुष्ट होकर गाना बन्द नहीं करती थी, लेकिन पुरुषों की उच्छृङ्खलता को वह जरा भी उत्तेजन नहीं देती थी। बहुत सिर हिला-हिलाकर 'वाह-वाह' की पुकार करने वालों की ओर वह बिना देखे सलाम कर देती। आँखें चार होने पर यदि कोई पुरुष आँख का इशारा करता तो वह अपनी आँखों में ऐसी शालीनता ला देती कि उस मनुष्य को फिर इशारा करने की प्रवृत्ति ही नहीं होती। दिल्लगियों का वह उत्तर ही नहीं देती थी। रुपया लेते या पान देते समय पुरुषों के सामने वह जरा भी संकोच या शर्म का भाव प्रदर्शित नहीं करती।

राजेश्वरी ने पुरुषों को पहचान लिया। वे क्या चाहते हैं—यह वह समझ गई थी। किन्तु इस समझ ने उसमें पुरुषों के प्रति कुछ सद्भाव नहीं उत्पन्न किया। पुरुष उसके रूप की प्रशंसा करते—उसकी कला का उदारता के साथ पोषण करते—किन्तु इस प्रशंसा और उदारता में कोई ऐसी ज्वाला थी, जिससे उनके प्रति सद्भाव होने के बदले राजेश्वरी के हृदय में उनके प्रति तिरस्कार उत्पन्न हुआ।

इस तरह भिन्न-भिन्न मार्गों के द्वारा दोनों बहनों ने पुरुष जाति के प्रति तिरस्कार प्रदर्शित किया। लज्जावती का तिरस्कार

उग्र और प्रेरक बन गया। राजेश्वरी का तिरस्कार सौम्य और शिथिल रहा। लज्जावती के तिरस्कार ने उसको पुरुषों में मिलाया। राजेश्वरी के तिरस्कार ने उसको पुरुषों से अलग रक्खा। लज्जावती के भयंकर तिरस्कार ने अपने शरीर के द्वारा पुरुषों से बदला लिया। राजेश्वरी के स्थिर तिरस्कार ने उसको पुरुषों के स्पर्श से घृणा उत्पन्न की।

१७

जानकी दोनों लड़कियों को पढ़ाने का प्रयत्न क्यों करती थी? यह समझना कठिन है। सब वेश्याएँ अपढ़ नहीं होतीं। कला की उपासना करने वालियों को लिखने-पढ़ने की शिक्षा अवश्य दी जाती है। यह शिक्षा मौलवी या गुरुजी के द्वारा घर पर ही होती है। किन्तु लड़कियों को पाठशाला में भेजकर उच्च शिक्षा दिलाने का जानकी का प्रयत्न विफल हुआ। उसे समझना चाहिये था कि इसमें सफलता मिलना कठिन है। सम्भव है—वह समझती भी हो—फिर वह ऐसा प्रयत्न क्यों करती थी?

शिक्षा के आवरण के नीचे लड़कियों का वंश छिपाने का उसका विचार था? शिक्षा के बल से पुत्रियों को गणिका-वर्ग से पत्नी के वर्ग में ले जाने का विचार था? या शिक्षा के रंग में रँग कर नवीन प्रकार की गणिका गढ़ने का विचार था? जो भी हो, इतना अवश्य था कि लड़कियों को पढ़ाने के लिये जानकी ने

बहुत प्रयत्न किया, यदि लज्जावती ने शिक्षक के साथ प्रेम करने को और उस हालत में अपने वंश का सच्चा परिचय देने की भूल न की होती तो ये दोनों बहनें अवश्य उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेतीं। जानकी ने अपने को अदृश्य रखने में सफलता प्राप्त कर ली थी।

सभ्य-समाज की पाठशालाओं में उनका शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया। विवाह चाहनेवाला लज्जावती ने अपने प्रेमी की भीरुता देखकर समस्त पुरुष जाति को विवाह के अनुपयुक्त समझ लिया। विवाहित पुरुषों की बाहर घूमने की प्रवृत्ति देखकर उसे विवाह निरर्थक मालूम हुआ। जब तक संसार में गणिकाएँ हैं, तब तक विवाह एक प्रवंचना प्रतीत हुई। एक पति और एक पत्नी! अति विलास के अन्त में होने वाली यह पश्चात्ताप की क्षणिक कल्पना है! इसकी अपेक्षा गणिका अधिक सत्य है। विवाह के आवरण में सभ्य-समाज वेश्यावृत्ति का ही पोषण नहीं करता—ऐसा क्यों नहीं?

ऐसे विचारों के द्वारा वह स्वाभिमान का अनुभव करती। और पुरुष जाति के विवाह को निरर्थक बनाने में सहायक होती।

उग्र स्वभाव की बहन को जो अशक्य अनुभूत हुआ वह स्थिर स्वभाव की राजेश्वरी का सफल होने योग्य स्वप्न बन गया। 'मेरा विवाह क्यों न हो?'—पुरुष की दृष्टि और स्पर्श का खेदपूर्ण अनुभव रखनेवाली राजेश्वरी का हृदय—मुझको कोई देखे भी नहीं और स्पर्श भी न करे—ऐसे किसी एकांकी पुरुष का चित्र बना रहा था। शरीर को सार्वजनिक बनाकर उसे सब के उपभोग का यंत्र बनाना, इस घृणाजनक कार्य की अपेक्षा, उसका

स्पर्श न हो, वह उपभोग का साधन न बने—ऐसे किसी एकांकी पुरुष को सौंपकर विशिष्टता भरा स्वसंवेद्य कंप का अनुभव करना, यह अधिक सुखमय और अधिक मान भरी भूमिका है—ऐसा उसका विश्वास था।

किन्तु, संसार में ऐसा पुरुष होगा? राजेश्वरी ने अब तक अनुभव नहीं किया—फिर, यदि ऐसा पुरुष जन्म भर देखने में न आवे तो? पुरुष बिना जन्म बिता देना! बेहूदी लड़की! बेहूदी कल्पना! यह चाहे जो हो। गणिका को समाज में मिलने का अधिकार भले ही न हो—किन्तु; कल्पना करने का अधिकार तो है ही। जैसे-जैसे उसका यौवन विकास पाता गया, वैसे-वैसे उसको यह कल्पना स्पष्ट होने लगी! उसका शरीर अकथ्य झनझनाहट और गर्म साँसों से तृप्ति माँगता था। किन्तु उसकी दृष्टि में आनेवाले प्रत्येक पुरुष का दर्शन या स्मृति उसको इस तृप्ति में सहायक हो, ऐसा उसे नहीं प्रतीत हुआ। पुरुषों को देखकर उलटे उसके भाव रुक जाते। भाव तृप्ति नहीं—बल्कि; पुरुषों के दर्शन के परिणाम-स्वरूप तिरस्कार भरा निर्वेद उत्पन्न होता।

थोड़े दिनों से जानकी उसको विचित्र ढंग की सूचनाएँ देती थी। किसी समय पूछती—'तुमको कौन अच्छा लगता है?'

'कोई नहीं'—राजेश्वरी उत्तर देती।

किसी समय जानकी कहती—'आज की महफिल में सबसे सुन्दर मनुष्य कौन है—यह खोज रखना।'

महफिल समाप्त होने पर माँ खोज का परिणाम चाहती।

राजेश्वरी कहती—'मुझको तो कोई भी सुन्दर नहीं मालूम हुआ—उनमें सुन्दरता कहाँ?'

जानकी हँसती और फिर से खोज करने को कहती। किन्तु; पुरुषों में सुन्दरता खोजने का राजेश्वरी का प्रयास मिथ्या था। माँ ने दूसरी व्यूह-रचना प्रारंभ की। 'देखो राजेश्वरी! यह सेठ साहब जो अपने यहाँ आते हैं उनको अच्छी तरह से पहचान रखना।'

'क्यों?'

'उन्होंने तुम्हारे लिये यह हीरे के ऐरिंग भेजे हैं।'

'कौन से सेठ? वह जो सारी गद्दी छेंककर बैठते हैं? बहुत मोटे हैं। और हँसते हैं तो कैसे बेवकूफ मालूम होते हैं?'

'तुम्हारी नजर में कोई भी नहीं आता—क्यों?'

'अपनी नजर में किसी को लाने का कारण?'

'मूर्ख, जरा समझ, तू बड़ी हुई।'—कहकर अपनी आँखों में ऐसा भाव भरती, जिससे सारा अर्थ समझ में आ जाय। राजेश्वरी सब समझती, फिर भी मुँह पर शिला जैसी शीतलता लाकर बैठी रहती। जानकी को जरा संदेह हुआ। उसने एक दिन पूछा—'तुम भाव बताती हो, तब सब समझती हुई मालूम होती हो—पर फिर कैसे पत्थर जैसी बन जाती हो?'

'मैं क्या जानूँ! तुमने जैसा सिखाया, वैसा भाव बताती हूँ।'

'तुम मुझसे भी अच्छा भाव बता सकती हो। तुम सबको कितना उत्तेजित कर देती हो, यह जानती हो?'

'भाग्य उनका! मेरा इसमें क्या? वे क्यों सुनने आते हैं?'

एक दिन जानकी ने फिर बात निकाली—'वे वकील साहब तुमसे मिलना चाहते हैं।'

'कौन से ?'

'उस दिन वे और सेठ साहब दो ही आदमी बैठकर तुम्हारा गाना सुनते थे, याद है न ? उन्होंने तुम्हारे लिये मोती का हार बनवाया है।'

'उनसे कहो—भेज दें।'

'वह अपने हाथों से तुमको पहनाना चाहते हैं।'

आनेवाले प्रत्येक पुरुष से पद्मनाभ में भिन्नता थी। उसने यह मार्ग, कीका सेठ की दोस्ती में पाया था। इसमें कुछ कीका सेठ का दोष नहीं था। उसे यह मार्ग खोजना ही पड़ता—उसकी मानसिक परिस्थिति ही ऐसी थी। और पैसे के प्राबल्य के कारण वह उसके लिये सुगम भी हो जाता—केवल उसकी प्रतिष्ठा और संस्कार उसको कुछ रोक रहे थे। बीमार,—अदेखी और बहमी स्त्री के साथ हुए विवाह में उसको अपनी स्त्री और अपने जीवन में कुछ भी आकर्षण नहीं दिखाई दिया। वकालत में सफलता प्राप्त करनेवाला संस्कार-संपन्न और भावनाशील युवक, गार्हस्थ सुख से वंचित रहा। वह घर के बाहर सुख की खोज करने लगा।

वह सभा-सोसाइटियों में भाग लेने लगा। अकस्मात् एक कन्या-पाठशाला की व्यवस्था-समिति का वह सभापति हो गया। स्त्रियों का मुख-दर्शन भी किसी-किसी समय संतोषप्रद होता है। शिक्षिकाओं के साथ उसका परिचय होने लगा। इस तरह से वह स्त्रियों की व्यवस्था में सम्मिलित हो गया। उसमें बुद्धि थी,

पैसा था और व्यवस्था-शक्ति थी। स्त्री शिक्षा पर वह बहुत भाषण देता और लिखता—इसलिये वह स्त्री-उन्नति के शुभेच्छु कार्यकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हो गया। कन्या-पाठशाला और आश्रमों की संचालक स्त्रियों का समागम उसके लिए उत्तेजक हो गया। संस्थाओं में बराबर आना-जाना उसको रुच गया।

उसे आशा थी कि इन परिचयों में से एकाध परिचय गुप्त प्रेम में परिणत हो जायगा—किन्तु; उसको आशा फलीभूत नहीं हुई। दूसरे अनेक पुरुषों को प्रेम-कहानियों को वह सुनता था—किन्तु; वह स्वयं अभी तक किसी कहानी का नायक नहीं बन सका था। युवतियाँ और अधेड़ उसके साथ बातें करतीं, हँसतीं, सलाह पूछतीं और उनकी योजनाओं को कार्य में परिणत करतीं। सभा करनी होती तो पद्मनाभ से ही पूछा जाता। इस प्रकार से उसको बुद्धि को सब छेड़तीं—किन्तु; किसी की आँख में पद्मनाभ के हृदय को दशा पूछने का संकेत भी न था। उसका हृदय जल रहा था—और स्त्रियों द्वारा उसके प्रति सम्मान-प्रदर्शन ने उस ज्वाला को और भी तेज बना दिया। स्त्रियों के मन में वह पूज्य बन गया—किन्तु; उसको पूज्य नहीं बनना था, उसे तो प्रेमी बनना था।

अपना दुःख वह किससे कहे? किस तरह कहे? उसका हृदय संस्कार-संपन्न था—इसलिये उससे अशिष्ट वातावरण में उतरा नहीं जा रहा था। उसके चारो तरफ एक प्रतिष्ठा का वातावरण उत्पन्न हो गया था। उस वातावरण से वह निकल सके—ऐसा संभव न था। प्रेम की भूखी उसकी आत्मा प्रेम की

खोज में घर से बाहर निकली—किन्तु; वहाँ भी उसके संस्कार ने और प्रतिष्ठा ने उसे प्रेम नहीं मिलने दिया। अनेक समय उसको अपनी प्रतिष्ठा से अरुचि होती। उसकी प्रतिष्ठा न जमी होती तो अच्छा था। साधारण मनुष्य जिस स्वतंत्रता के साथ दुनिया का आनन्द उठाते हैं, उस स्वतंत्रता के साथ सब की आँखों पर चढ़े हुए लोक-नेता नहीं उठा सकते। उनकी प्रतिष्ठा उनके लिये बेड़ी बन जाती है।

भक्त को भारी हृदय-व्यथा के बाद जैसे भगवान मिलें, पद्मनाभ को वैसे ही कीका सेठ मिल गये। सेठजी का अदालती काम पद्मनाभ को सौंपा गया था। अनेक गड़बड़ों को ठोक कर, लेना वसूल करा देने वाले और देना, गलत साबित कर देने वाले वकील की तरफ असामियों का सद्भाव हो ही जाता है। कीका सेठ को पद्मनाभ बहुत अच्छा मालूम हुआ। दोनों की अवस्था करीब-करीब एक ही थी। यद्यपि दोनों के संस्कारों में जमीन-आसमान का अंतर था। सेठजी के द्वारा स्त्री उपयोगी संस्थाओं के लिए चन्दा वसूल करने का पद्मनाभ को एक साधन मिल गया। अखबारों में सेठजी का दान छपने से सेठजी को भी बदला मिल जाता था।

एक महिला-आश्रम की सभा के लिये सेठजी को सभापति-पद ग्रहण करने की प्रार्थना हुई। सेठजी को वह पद तो अच्छा लगा—किन्तु; उसकी एक जवाबदारी ने उनको डरा दिया—'वकील साहब! आप तो अपना चंदा लेकर मेरी जान छोड़िए, मुझसे तो मचान पर चढ़कर बोला नहीं जायगा।'

'अरे कुछ नहीं सेठ साहब ! जैसे घर में बातें करते हैं—वैसे ही बोलना है ।'

'यह तो आपका बोलने का रोजगार है—इसलिये आपको ऐसा मालूम होता है । अपने से तो सबके बीच में मुँह नहीं खुल सकता ।'

'देखिये-सेठ साहब ! केवल दो चार बातें याद रखनी चाहिए-सभापति बनाने के लिये मैं सबका कृतज्ञ हूँ ! इनाम बाँटते समय मुझको बहुत प्रसन्नता होती है । यह जमाना भाषण करने का नहीं है, काम करने का है । आपलोग ठोस काम करते हैं, यह आज की सभा से मालूम होता है ।'

इतना ही बोलने से अगर सभापति का आसन मिले तो वह स्वीकार कर लेने के योग्य है-सेठजी ने नकारात्मक हाँ की, और अखबारों में उनको सभापति होने की खबर छपी । सभा के दिन पद्मनाभ सेठजी को बुलाने आया । दोनों मोटर में बैठकर सभा में गये । किन्तु; कुर्सी पर बैठने के बाद सेठजी की बुद्धि चकराने लगी । वे घबरा गये । अपने एक मात्र आधार रूप पद्मनाभ की तरफ वह बराबर देखने लगे । कई आदमी बोल चुके, किन्तु; सेठजी की बेचैनी नहीं गई । और जब पद्मनाभ ने पास आकर खड़े हो बोलने के लिये कहा, तब सेठजी का शरीर काँप उठा ! उनकी रसना सूख गई । उनकी हालत बलिदान के बकरे जैसी हो गई । वे खड़े हुए, और तालियों की गड़गड़ाहट ने उनकी कँपकँपी को और भी बढ़ा दिया । स्वप्न में बोलते हुए मनुष्य की तरह वे बोलने लगे—'यह सब खेल और गाना जो

तुमलोग करते हो वह ठीक है—किन्तु; यह जमाना बहुत बकवाद करने का नहीं है। इस तरह से बक-बक नहीं करना चाहिये, बल्कि; घर का काम-काज करते रहना चाहिये। आप लोगों ने मुझे सभापति बनाया, यह बड़े प्रसन्नता की बात है।'

आस-पास के दो-चार आदमी सुन सकें, ऐसी आवाज़ में जल्दी से बोलकर सेठजी बैठ गये। सभापति के मुख से इससे अधिक शब्द सुनने की आशा रखनेवाला श्रोतामंडल दो तीन मिनट बीतने पर लाचार होकर छिटपुट ताली बजा उठा।

इनाम देने की लम्बी क्रिया ने उनको स्थिर किया। स्त्रियों की सभा में स्त्रियाँ ही अधिक होती हैं, इससे माननीय सभापति सब स्त्रियों को ध्यान-पूर्व देख रहे थे। सभा समाप्त हुई। पद्म-नाभ ने सेठजी की प्रशंसा की। सेठजी को यह सब अच्छा लगा। जाते समय कई एक प्रमुख स्त्रियों ने उनके पास आकर नमस्कार किया। कुछ युवतियों ने हाथ भी मिलाया। सेठजी का हृदय प्रफुल्लित हो गया। वे मन में सोचने लगे कि ऐसी सभाओं में कभी-कभी आ जाना आवश्यक है।

प्रसन्न हुए सेठजी ने पद्मनाभ को साथ लिया। दोनों मोटर में बैठे। सेठजी की प्रसन्नता कुछ और बढ़ी, उन्होंने पद्मनाभ से कहा—'वकील साहब! आपने बहुत अच्छी-अच्छी औरतें दिखलाईं।'

सभा में सम्मिलित होने से ऐसी गंदी भावना उत्पन्न होगी—पद्मनाभ को स्वप्न में भी यह आशा न थी। उन्होंने सेठजी की तरफ देखा। बातचीत में कुशल वकील को यह नहीं सूझा कि

क्या उत्तर दें—पर सेठजी ने बात आगे बढ़ाई—'अब राज्जा, मैं दिखलाऊँ वह देखो—है मरजो ?'

पद्मनाभ का हृदय तेजी से धड़कने लगा। सेठजी किसी स्त्री को दिखलाने की इच्छा प्रदर्शित कर रहे थे। संभवतः वह स्त्री अधमवर्ग की ही होगी। शिष्ट स्त्री-समाज से निराश हुए पद्मनाभ ने एक नया अवसर मिलता देखा। फिर ऐसा अवसर मिले या न मिले, इस विचार से उसने झट से हामी भर ली।

'चलो राज्जा ! हमलोग आ पहुँचे हैं।'—कहकर सेठजी ने मोटर खड़ी की, और पद्मनाभ ने राज्जा सेठ के साथ राजेश्वरी के मकान में पैर रक्खा।

१८

उसी दिन से पद्मनाभ का राजेश्वरी के साथ परिचय हुआ। राजेश्वरी का रूप, उसकी कला और विनय पद्मनाभ के शुष्क हृदय को नव-पल्लवित करने लगा। राजेश्वरी को देखकर वह कीका सेठ की तरह विह्वल नहीं बन जाता था—उसको मालूम हुआ कि जो सुख घर में नहीं मिलता, वह गणिका-गृह में मिलता है। ऐसी रूपवती और कलावती युवती यदि पत्नी के रूप में मिले तो ?

विधुर अवस्था भोगने वालों को विधवा-विवाह का पक्ष अच्छा लगता है, और पत्नी से ऊबे हुए लोगों का ध्यान गणिका

या रक्षिता की ओर जाता है। पद्मनाभ की प्रतिष्ठा और संस्कार उसको खुल्लमखुल्ला गणिका-संसर्ग से रोकते थे; लेकिन उसकी इच्छा थी कि राजेश्वरी को रक्षिता के रूप में रख लूँ।

प्रारम्भ में वह दो तीन बार कीका सेठ के साथ राजेश्वरी के यहाँ गया—लेकिन; बाद में वह अकेला जाने लगा। राजेश्वरी को भी यह सभ्य पुरुष दूसरों की अपेक्षा कुछ अच्छा मालूम हुआ। शरारत नहीं, उपद्रव नहीं, लोलुपता-भरी बातचीत नहीं, ऐसा शान्त पुरुष राजेश्वरी के यहाँ दूसरा कोई नहीं आता था।

कभी वह कला की बात करता, और राजेश्वरी में निपुणता बढ़े, ऐसी सूचनाएँ देता। राजेश्वरी की बुद्धि देखकर योरोपियन नृत्य सीखने का उसने निर्देश किया। उसमें होनेवाले खर्च को वह स्वयं देने के लिये तैयार हुआ।

राजेश्वरी पढ़ी-लिखी थी। पढ़ने के शौक के कारण उसकी योग्यता और भी बढ़ गई थी। एक गुरु ने उसको गीता में रुचि उत्पन्न कराई थी। वह हिन्दू था। गाने के बीच में शैर कहने से वह बहुत चिढ़ता था।

'अरे यह क्या निरर्थक गाना गाती हो! तुम्हारी गजल, कव्वाली और शैरों में, कत्ल और खून, कब्र और कयामत, शराब और साकी, इसके अतिरिक्त और क्या रहता है? इसके बदले देखो, इस श्लोक को राग में उतारो।'—कहकर वह संस्कृत के श्लोक ही याद कराता। ऐसा करने से राजेश्वरी को भर्तृहरि के शतक, गीत-गोविन्द, मेघदूत और गीता कंठस्थ हो गई।

गणिका के मुख से संस्कृत का मधुर उच्चारण सुनकर पद्मनाभ

मुग्ध हो जाता। ऐसी युवती के साथ व्यतीत किये हुए समय के संस्मरण से उसे रोमांच हो आता—वह अधिक नियमित रूप से राजेश्वरी के पास जाने लगा।

परंतु ऐसी स्त्री के परिचय से उसके मन को अतृप्त वासना और भी जागृत हुई। यद्यपि राजेश्वरी या उसकी माँ जरा भी उत्तेजन नहीं देती थीं। गणिकाएँ भी नियमित अवस्था तक कौमार का पालन करती हैं—फिर किसी एक पुरुष के 'नथ' उतारने पर गाना-बजाना और अपनी अन्य सहयोगिनियों को प्रीति-भोजन कराने के बाद पुरुष-समागम आरम्भ करती हैं। यदि कोई पुरुष 'नथ' उतारने वाला न मिला तो किसी देवता के सामने 'नथ' उतार कर फिर व्यापार की बेलगाम दौड़ में उतरती हैं।

कौमार की परवाह न करके लज्जावती ने मनमानी राह पकड़ी थी। लेकिन; राजेश्वरी का कला-विधान उसके कौमार-व्रत को बढ़ा रहा था। उसने अभी तक किसी पुरुष के प्रति अपना समभाव प्रदर्शित नहीं किया था। समभाव जागृत होकर कभी उग्र रूप धारण करेगा—अनुभवी जानकी इस बात को जानती थी। वह समभाव उग्र होकर कहीं निरंकुश न बन जाय, उसके पहले ही राजेश्वरी को ठीक मार्ग पर ले जाने की आवश्यकता जानकी को मालूम हुई।

गणिकाएँ अपने शरीर-विक्रय के प्रामाणिक तत्त्व को मानकर चलती हैं। जहाँ खरीदने की गरज होती है, वहाँ अधिक से अधिक दाम वसूल करने की प्रवृत्ति रहती है। लड़की को यौवन में

प्रवेश करती हुई जानकी उससे अधिक से अधिक उपार्जन कराना चाहती थी।

पुरुषों को स्त्रियों के प्रथम संसर्ग का बड़ा मोह होता है। सम्भव है स्त्रियों को भी रहता हो—परंतु वे तो सदा मौन ही रहती हैं। जानकी ने राजेश्वरी के आकर्षण से आनेवाले पुरुषों पर ध्यान देना प्रारंभ किया। थोड़ा पैसा खर्च कर गाना सुनकर चले जाने वालों को उसने एक तरफ रक्खा, और अति उदारता के साथ राजेश्वरी पर पैसे खर्च करने वाले दो पुरुषों पर विशेष नज़र रक्खी।

वे दो पुरुष कीका सेठ और पद्मनाभ थे। कीका सेठ के साथ आते हुए पद्मनाभ ने अकेले आना शुरू किया। जानकी ने इन दोनों के बीच में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करने का अवसर देखा। एक दिन पद्मनाभ ने स्वतंत्र जलसा किया। उस दिन एकाएक कीका सेठ आ पहुँचे। कितने ही ग्राहक आदर-पूर्वक बुलाने योग्य होते हैं। उनके स्वागत-सत्कार में कुछ खर्च करने से भी नुकसान नहीं होता। कीका सेठ इसी दर्जे के ग्राहक थे। दरबान उनको नहीं रोक सकता था, सम्भव है जानकी ने भी सेठजी को न रोकने के लिये कहा हो। पद्मनाभ को अकेले बैठकर राजेश्वरी के हाथ से पान लेते देख सेठजी को आँखों में खून उतर आया।

'मैं ही इसे यहाँ ले आया और यह मुझको छोड़कर अकेले-अकेले मौज करता है ?'—सेठजी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। प्रशंसा के लिए दिखाई हुई चीज उसीके द्वारा चुरा ली जानें

पर मन में जैसा क्रोध होता है, वैसा ही क्रोध कोका सेठ को उत्पन्न हुआ। उन्होंने हँसते हुए कहा—'क्यों राज्जा! अकेले-अकेले? मुझे छोड़कर?'

'ओहो! सेठ साहब, आइए, आइए! मुझे विश्वास था कि आप यहाँ आवेंगे ही।'—पद्मनाभ ने संकोच के साथ कहा।

'दूसरा और कोई नहीं है? निजी जलसा जमाया है राज्जा! क्यों ठीक है न जानकी?'

'जी, सेठ साहब! पर आपसे अलग कुछ नहीं हो सकता।'

सेठजी को व्याख्यान देना भले ही न आता हो, लेकिन व्यवसाय करने की उनकी प्रवीणता व्याख्यान देने वाले नहीं दिखला सकते थे। प्रतिद्वन्द्वी को बढ़ने नहीं देना चाहिये—उन्होंने तुरन्त व्यापार-नीति का प्रयोग किया। वे बहुत देर तक बैठे रहे। पद्मनाभ के चले जाने के बाद उन्होंने जानकी से राजेश्वरी के शरीर का मूल्य निर्धारित कर लिया।

लेकिन जानकी शीघ्रता के साथ व्यवहार करने वाली न थी। उसने पूर्णरूप से स्वीकार न करके राजेश्वरी से पूछकर उत्तर देने को कहा। वास्तव में राजेश्वरी से नहीं, बल्कि वह पद्मनाभ से पूछना चाहती थी। दूसरे दिन पद्मनाभ को एकांत में ले जाकर प्रणाम कर कहा—'हुजूर! लड़की बड़ी हो गई है।'

वाक्य का अर्थ समझने के साथ ही पद्मनाभ का हृदय धड़कने लगा। उसकी सभ्यता ने एक नासमझी का प्रश्न किया—'हाँ, ठीक है।'

'आप तो भारी कद्रदान हैं—लड़की की 'नथ' किससे उतरवाऊँ ?'

वेश्याओं में 'नथ' कौमार-सूचक चिह्न है—पुरुष-संसर्ग के बाद 'नथ' नहीं पहनी जाती।

पद्मनाभ की सभ्यता थोड़ी-सी कांप उठी। जिस बात की इच्छा वह बिना संकेत ही किया करता था, वह प्रसंग आने के पहले वह गड़बड़ाया—फिर उसे अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल आया। प्रतिष्ठा के चारो ओर पैसा परदा डाल सकता है। इसलिये उसमें कुछ महत्त्व नहीं मालूम हुआ। साथ-ही-साथ घर का स्मरण हुआ। जलती और जलाती हुई दुर्गावती की मूर्ति उसके सामने आकर खड़ी हुई। डगमगाता हुआ मन एक निश्चय पर आ गया।

जानकी ने पद्मनाभ का निश्चय परखा, और अपना पासा फेंका—'कीका सेठ दो हजार देते हैं, लेकिन उस घामड़ के पास कौन जाय ?'

'मैं पाँस सो अधिक दूँगा।'—पद्मनाभ उदार बनकर बोला। जानकी ने झुककर सलाम किया, और राजेश्वरी को समझाने का वचन दिया। उसकी समझ में तो सेठजी और वकील साहब दोनों ही 'घामड़' थे।

पद्मनाभ और कीका सेठ समझते थे कि इस विषय में जल्दी ही निर्णय हो जायगा। लेकिन जानकी मूर्ख नहीं थी। समय बढ़ने से दोनों आदमियों की तीव्र बनती हुई वासना अभी अधिक मूल्य दिलावेगी। यह उसका विश्वास था। धीरे-धीरे राजेश्वरी के लिये भेंट आने लगी। एक आदमी साड़ी देता

जानकी राजेश्वरी को पहनाकर दूसरे से कहे—'हुजूर ! वकील साहब ने यह साड़ी दी है।'

हुजूर आवेश में आकर हीरे को ऐरिंग देते। जानकी यह बात वकील साहब से कहती, वकील साहब मोती की माला भेजते।

जानकी ने साथ-ही-साथ राजेश्वरी को भी भेंट के भीतर छिपा हुआ रहस्य समझाना प्रारंभ किया। परन्तु राजेश्वरी को एक भी भेंट आकर्षित नहीं करती थी। यौवन में प्रवेश करती हुई सब कुमारियों की तरह गणिका-कुमारियों को भी स्वप्न आते हैं। उनके हृदय में भी प्रेम उत्पन्न होता है। और इसके परिणाम स्वरूप उनका हृदय विचित्र पसंदगी में पड़ता है। जानकी यौवन के इस पागलपन से भली-भाँति परिचित थी। गणिकाएँ ऐसा पागलपन करें, यह उचित नहीं है। सभ्य-समाज में भी ऐसा ही होता है न ? माता-पिता कब उत्तेजन देते हैं ? उस पागलपन को दूर करने के लिये साम, दाम, दंड और भेद राजनीति के ये चार प्रयोग काम में लाये जाते हैं। जानकी भी इन प्रयोगों से काम ले तो इसमें नवीनता क्या है ?

जानकी जानती थी कि राजेश्वरी हठीली है। लेकिन उसका आज तक का अनुभव यही था कि मृदु उपचार उसका हठ छुड़ा देते थे। उसे नवीनता मालूम हुई कि साम, दाम और भेद इन तीन उपचारों में से एक भी उपचार इस विषय में राजेश्वरी पर क्यों प्रभाव नहीं डालते ? एक दिन उसने शेष चौथे को भी आजमाने का निश्चय किया।

राजेश्वरी ! आज निश्चय कर दो ।'—जानकी ने जरा तेजी के साथ कहा ।

'क्या माँ ?'—जानते हुए भी अनजान बनकर राजेश्वरी ने पूछा ।

'अब बातों से काम नहीं चलेगा—तुमको कीका सेठ पसंद हैं ?'

'उनका तुम नाम भी न लो—इतने मोटे हैं······!'

'किसी का भी तुम नाम लेने दोगी या नहीं ? ऐसा मिजाज हमलोगों के लिये अच्छा नहीं ।'

राजेश्वरी ने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसने अपनी परिस्थिति समझने का प्रयत्न किया । क्या मैं केवल पुरुषों की वासना-तृप्ति की ही साधन हूँ ।

'वे वकील साहब तुम्हारे पीछे मर रहे हैं—सेठ न अच्छे लगते हों तो उनसे 'हाँ' कहें'—जानकी ने कहा ।

राजेश्वरी को पद्मनाभ के प्रति सद्भाव था, पूज्य भाव था । दूसरों की अपेक्षा उसका बर्ताव भी न्यारा था । वह कभी असभ्यता नहीं करता था । कभी विह्वल नहीं होता था । वह भी मुझको ही खोजता है—ऐसा विश्वास होने के साथ ही राजेश्वरी के हृदय में भयंकर निराशा छा गई । केवल कला को देखकर संतुष्ट रहनेवाला कोई पुरुष दुनियाँ में न होगा ?

'जरा बड़े लगते हैं—पैर पड़ने का जी चाहता है ।'—राजेश्वरी ने पद्मनाभ के प्रति अपना भाव व्यक्त किया ।

'बहुत चालाकी करने से ये दोनों हाथ से निकल जायँगे—और बाद में किसी कबाड़ी के हाथ चढ़ना पड़ेगा—समझी ?'

जानकी का उत्तर सुनकर राजेश्वरी मुँह फुलाकर बैठ गई। उत्तर मिले या न मिले—लेकिन; जानकी ने तो चिढ़ाने का निश्चय कर लिया था। उसने कहा—'बोलती क्यों नहीं ? जवाब दो।'

'क्या जवाब दूँ ? मुझे तो विवाह करना है !'—राजेश्वरी ने अपनी भावना व्यक्त की। मनुष्य अप्राप्य को ही अपना आदर्श बनाता है। राजेश्वरी का जीवन और विवाह, ये दोनों असम्बद्ध परिस्थितियाँ कही जा सकती थीं—फिर भी राजेश्वरी के हृदय को विवाह की लगन लगी हुई थी।

जानकी क्रोध से तमतमा उठी—लेकिन उसने मन को रोका, सम्भव है उसे अपनी जवानी के स्वप्न याद आये हों। गाली देने के बदले वह हँस कर बोली—'तुम्हारी बहन ने जैसा विवाह किया, उसे देखा या नहीं ?'

'उससे बना नहीं ?'

'वह तुमसे बनेना क्यों ? पगली ! हमलोगों से कोई विवाह नहीं करेगा—और अगर विवाह करने के लिये कहे भी, तो झूठ बोलकर फँसाने के लिये।'

'मेरा विश्वास है कि मैं नहीं फँसूँगी।'

'तुम सबसे अलग हो, क्यों ! देखती नहीं—यहाँ जितने आते हैं, करीब-करीब सब विवाहित होते हैं। पुरुष मौज करें, और स्त्री कैदखाना भोगे ! ऐसे विवाह से स्वतंत्र रहना क्या बुरा है ?'

'मैं ऐसे के साथ विवाह करूँगी, जो मुझे न छोड़े।'

'पर ऐसा कौन तुमसे विवाह करने के लिये बैठा है? खोजते-खोजते तमाम उम्र बीत जायगी, फिर भी नहीं मिलेगा।'

'बीत जाय उम्र। बिना विवाह के मर जाऊँगी!'

'क्या? तुमको बकबक करना है, क्यों? बदमाश!'

'ओ माँ! मुझे किसलिये धमकाती हो? मुझे डर लगता है।'

'माँ? मैं तुम्हारी माँ नहीं। तुम्हारी माँ तो मर गई।'—मुख पर क्रूर भाव लाकर जानकी ने कहा।

'मेरी माँ मरी नहीं है—तुम्हीं मेरी माँ हो।'—कहकर राजेश्वरी ने जानकी का पैर पकड़ा। क्षण भर के लिये जानकी का गला भर आया—लेकिन वह दूसरे ही क्षण सँभल गई। ऐसी निर्बलता के वश में होने से राजेश्वरी सदा के लिये हाथ से निकल जायगी। उग्र स्वभाव की लज्जावती तो हाथ से निकल गई। नम्र स्वभाव की राजेश्वरी को वह खोना नहीं चाहती थी।

उसने राजेश्वरी का हाथ झटक दिया। वह उठकर खड़ी हो गई। शत्रु की जैसी कठोरता के साथ उसने कहा—'इससे काम न चलेगा। बोलो तुम हाँ करती हो, या नहीं?'

१६

राजेश्वरी माँ के मुख की ओर देखती रही। उसे मालूम हुआ कि वास्तव में उसकी माँ मर गई। और उसके शरीर में

से एक राक्षसी फूट निकली है। हठ की एक लहर उसके ऊपर से निकल गई। उसने जोर से उत्तर दिया—'नहीं ! नहीं !! नहीं ! ! ! हजार बार नहीं ! ! !'

जानकी दरवाजे की तरफ घूमी। उसने धीमी आवाज से पुकारा—'हबीब !'

एक मजबूत मुसलमान भीतर आया। जानकी ने उससे कहा—'देखो—यह राजेश्वरी 'नहीं' कहती है। इससे 'हाँ' कहलवाओ। यह 'हाँ' कहे तब मुझको बुलाना।' कहकर वह कमरे के बाहर निकल गई।

हबीब ने दरवाजा बन्द कर दिया। वह जानकी के मकान पर दरवानी करता था। यह कसरती कुश्तीबाज मनुष्य चार वर्ष से जानकी के यहाँ नौकरी करता था। उसके पहले वह दो वर्ष तक जेल भोग चुका है, ऐसा उसके विरोधी लोग कहा करते थे। प्रत्येक गणिका-गृह में ऐसे मजबूत आदमी रखवाली के लिये रक्खे जाते हैं। दिन में हबीब बढ़िया कपड़े पहनकर घूमता या सोता और रात को दरवाजे पर मचिया बिछाकर बैठता। किसको किसको मकान में आने देना, इसकी सूचना जानकी की तरफ से उसको मिलती। गाना सुनने के लिये आनेवालों को रोक नहीं थी। शराब पीकर आनेवाले, गायिका को गाना सुनने के बाद कम पैसे देनेवालों के लिये ऊपर आने देने की मनाही थी। जीवन अतिशय अनीतिमय होने पर भी ये दरवान लोग अपने शरीर को मजबूत बनाये रखते हैं और शरीर तथा जबान दोनों का एक साथ उपयोग करने के कारण दूसरों पर काफी असर भी

उत्पन्न करते हैं। अक्सर गणिका-गृह में एक से अधिक लड़कियाँ रहने पर मुख्य नायिका की आज्ञा न मानने पर उन लड़कियों को ठीक करने का काम भी इन्हीं दरवानों को करना पड़ता है।

जिस दरवान के द्वारा अपनी आज्ञा-पालन कराने की राजेश्वरी की आदत थी, वही दरवान उसकी 'नहीं' को 'हाँ' में बदलने की कोशिश करे, यह राजेश्वरी के हृदय की ज्वाला को और भी बढ़ानेवाला था! उसने जोर से कहा—'हबीब!'

हबीब ने मुँह टेढ़ा करके अपने क्रूर चेहरे को और भी क्रूर बनाया।

'चले जाओ यहाँ से!'—राजेश्वरी ने आज्ञा दी।

आज्ञा की अमान्यता राजा और प्रजा दोनों को पागल बना देती है। हबीब पीछे हटने के बदले धीरे-धीरे आगे आ रहा था। राजेश्वरी जल उठी —'जाते हो कि नहीं?'

राजेश्वरी का निर्बल और निष्फल क्रोध देखकर प्रसन्न होता हुआ हबीब आगे बढ़ रहा था। ऐसी कितनी ही सुकुमार लड़कियों को वह ठिकाने ला चुका था। वह गर्व के साथ स्वस्थता-पूर्वक राजेश्वरी के सामने आया—और उसके मुख पर एक जोर का प्रहार हुआ। राजेश्वरी ने पानदान में से एक डिबिया खींच कर मारी।

सामना करने के कारण हबीब को क्रोध आया। एक क्षण के लिए तो उसको कष्ट का बोध हुआ—लेकिन दूसरे ही क्षण वह उछल कर राजेश्वरी के पास पहुँच गया। उसने जोर से

राजेश्वरी का हाथ पकड़ा ! पानदान में से छुरी लेकर तैयार खड़ी हुई राजेश्वरी ने छुरी उसके हाथ में घुसेड़ दी। चोट लगते ही हबीब ने राजेश्वरी का हाथ छोड़ दिया। उसके हाथ से खून बह रहा था। बिछी हुई सफेद चाँदनी पर खून की बूँदें टपकने लगीं।

हबीब घबड़ाया। वह नहीं समझता था कि राजेश्वरी जैसी शान्त लड़की सामना करेगी ! एक दो रद्दा और एक दो चपत में राजेश्वरी अपनी माँ का कहना मान लेगी—ऐसी उसकी धारणा थी। इसीलिये वह अपनी बेंत या चाबुक कुछ भी नहीं लाया था। खाली हाथ लड़ने की उसकी आदत थी। उसने जोर से राजेश्वरी के छुरीवाले हाथ पर झटका दिया। छुरी नीचे गिर गई। राजेश्वरी जैसे ही छुरी उठाने के लिये नीचे झुकी, वैसे ही हबीब ने उसकी पीठ पर एक घूँसा मारा। असह्य बल का अनुभव होने से राजेश्वरी गिर पड़ी। सामना करनेवाले को पूरा दंड देने के लिये हबीब ने उसको एक लात मारी—इतना ही नहीं, उसका गला पकड़ कर जोर से दबाया।

राजेश्वरी को बहुत चोट लगी। गला दबाने से और अपमान तथा मार के कारण वह मूर्छित हो गई। क्रोध की तृप्ति होने पर हबीब ने उसका गला छोड़ दिया। गणिका के मुख पर पराजय का स्वीकार देखने की इच्छा रखनेवाले हबीब ने उसको मूर्छित देखा। वह घबड़ा उठा।

होश में आने पर राजेश्वरी ने अपने को सोनेवाले कमरे में पाया। उसे कौन लाया ? किसलिये वह सो रही है ? उसके

शरीर में और खास करके गले में दर्द क्यों होता है ? जानकी और लज्जावती दोनों को उसने अपने पास बैठे देखा। उसको जानकी के शब्द याद आये—'मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ—तुम्हारी माँ तो मर गई !'

माँ के चेहरे पर उसने मातृत्व की मृत्यु ही देखी। माँ की दृष्टि में उसने मालिकी ही देखी। बहन भी अपने मार्ग का ही महत्त्व गावे, यह स्वाभाविक था। दुनियाँ में उसका, उसके स्वप्न का, उसकी भावना की रक्षा करनेवाला कोई नहीं था ! वह स्वयं करे, ऐसी शक्ति उसमें है ? एक स्त्री ! प्रकृति ने ही उसे कोमल बनाया है—उसको स्वतन्त्रता कहाँ ? सभ्य-समाज की पत्नी को कितनी स्वाधीनता होगी ? पति मनमानी जगहों में घूम सकता है, इसका उसको विश्वास था—किन्तु पत्नी कहाँ ? दुनियाँ में वह दिखलाती ही नहीं। अगर जरा-सा भी वह मुख खोलने की कोशिश करे तो पति उसको पीस डालता है। जब पत्नी की यह स्थिति है, तब पतिता को दूसरी स्थिति कैसे हो सकती है ? उसको स्वतंत्रता कैसे मिल सकती है ?

बिस्तर से उठने पर हबीब फिर न मारेगा—ऐसा विश्वास कैसे हो ? संगीत पर सदा जी सकेगी ? पुरुष संगीत माँगते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, किन्तु वह संगीत यदि किसी अगोचर देह-रहित तत्त्व में से आता हो, तो उसे सुनने के लिये पुरुष खड़े रहेंगे ? संगीत के पीछे दौड़नेवाले; संगीतकार के शरीर को भी माँगते हैं। जानकी किसी समय राजेश्वरी का गला बिगाड़ सकती थी—खाने में, पीने में, हवा में, कोई ऐसी

करामात हो कि जिससे उसका गला संगीत के लिये सर्वदा के लिये अयोग्य बन जाय—ऐसे प्रसंग राजेश्वरी ने सुने थे। माँ ने उसका मार्ग निर्धारित कर दिया था। बहन कौन मार्ग बतावेगी, यह वह जानती थी। सभ्य समाज में उसको कौन खड़ी होने देगा? गृह-द्वार उसके लिये बन्द थे। सभ्य-समाज एक ही शर्त पर उसका पोषण कर सकता है—रक्षिता के रूप में!

पत्नीत्व की अभिलाषा सेती हुई राजेश्वरी को कँपकँपी मालूम हुई।

'इस समय कैसी हो?'—जानकी ने पूछा।

'ठीक हूँ।'—राजेश्वरी ने जरा फीकी हँसी हँसकर कहा।

'हँसती क्यों है?'—लज्जावती ने छोटी बहन को जरा धमकाया।

'क्या करूँ तब? मेरी एक भूल हुई, उसका विचार करके हँसती हूँ।'—बहन भी माँ से मिलकर उसको धमकाने के लिये आई है—ऐसा उसको विश्वास हो गया।

'कौन सी भूल?'—लज्जावती ने और अधिक तेजी से पूछा।

'माँ का कहना नहीं माना।'

जानकी के उदास मुख पर चमक आ गई। लज्जावती ने धीरे से पूछा—'और अब?'

'माँ का कहना करूँगी।'—मृत्यु का आलिंगन करनेवाले वध्य पुरुष की सी निराशा उसकी आवाज़ में थी।

लज्जावती ने अपना कपाल पीट लिया। बहन का यह कार्य राजेश्वरी की समझ में नहीं आया। वह बिस्तर पर बैठने की

कोशिश करने लगी। वह उठ नहीं सकी। उसने घबड़ाकर पूछा—'बहन, बहन ! यह तुम क्या करती हो ?'

'मुझको आशा थी कि जो मैं नहीं कर सकी, वह तू करेगी–इसीलिये मैंने माँ के साथ झगड़ा किया। और तू तो माँ का कहना मानने के लिये तैयार हो गई।

'दूसरा और हो क्या सकता है ? माँ के कहने में कौन-सी गलती है ?'

'तब, इतना झगड़ा क्यों किया ?'

'मेरी भूल थी—मुझसे कौन विवाह करेगा ?'

'बिना विवाह किये मरना था !'

'मरने की स्वतंत्रता भी कहाँ है ? यदि माँ होती तो मरने देती—किन्तु माँ, माँ नहीं है !'

'मेरी बिटिया ! यह क्या कहती है ?'—कहकर जानकी ने राजेश्वरी के सिर पर हाथ फेरा।

'तुम्हारा पोषण मैं करती—अब भी करूँगी, जो तुम माँ का कहना न मानो तो।'—लज्जावती ने कहा।

'तुम्हारे रोजगार से अपना पोषण कर मैं पवित्र रहूँ—इसकी अपेक्षा मैं भी तुम्हारे बराबर पतिता बन बैठूँ—यह अधिक न्याय-संगत है। अब तुम इस बात को मत निकालना !'

लज्जावती क्रोध से भर कर वहाँ से चली गई। राजेश्वरी की अचेतनावस्था अधिक समय तक बनी रहने के कारण जानकी ने लज्जावती को बुलाया था। किसी-किसी समय यह भिन्न मार्ग पर चलने वाली युवती अपनी माँ और बहन से

मिलने के लिये आ जाया करती थी। जानकी को आशा थी कि वह उसके कार्य का समर्थन करेगी; किन्तु लज्जावती के विचार उससे भिन्न निकले। उसे भी विवाह के प्रति मोह था—यद्यपि यह आदर्श उसके लिये अशक्य था। फिर भी अपनी छोटी बहन से उसे आशा थी कि वह आदर्श को प्राप्त करेगी। मनुष्य स्वयं भले ही खराब हो, लेकिन अपने से छोटों का खराब होना उसे अच्छा नहीं लगता।

राजेश्वरी शीघ्रता के साथ अच्छी होने लगी। उसे अधिक चोट नहीं लगी थी। मानसिक वेदना की अधिकता ने ही उसे अधिक अंशों में बेहोश बना दिया था। राजेश्वरी का जागृत हुआ मन बहुत अंशों में निर्बल हो गया। परिस्थितियाँ मनुष्य से बहुत से पाप कराती हैं। परिस्थिति के कारण असहाय बन पाप करने वाले मनुष्य का तिरस्कार किया जाय, या पाप-वृत्ति उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का तिरस्कार किया जाय? दंड पापियों को दिया जाय या परिस्थितियों को? कार्य की निन्दा की जाय या कारण की?

राजेश्वरी को बे-मन की पसंदगी करनी थी। मनुष्य उत्तरध्रुव के बर्फ पर भी रह सकता है, और सहारा के धधकते रेगिस्तान में भी रह सकता है। मनुष्य के समान ही मनुष्य का मन भी स्थिति-भक्त होता है। राजेश्वरी ने अपने भाग्य के साथ लड़ना छोड़ दिया।

बे-मन की पसंदगी में भी मन लगाना पड़ता है—और अनेक नापसंदों में से एक को पसंद कर लेना पड़ता है। माँ

ने बहुत प्यार के साथ राजेश्वरी से पूछा—'किसको 'हाँ' कहा जाय पद्मनाभ को या कोका सेठ को ?'

पद्मनाभ का नाम उसकी जीभ पर आया—लेकिन; परिस्थिति के आगे पूर्णरूप से पराजित होने के लिये पूछा—'कौन ज्यादा रकम देगा ?'

'यह तो नहीं कहा जा सकता—लेकिन, सेठ जो दें, उससे पद्मनाभ पाँच सौ ज्यादा देने को कहता है। इतना ही नहीं, बाद में भी तुमको प्रत्येक महीने वेतन देने के लिये तैयार है।'

'तो पद्मनाभ से 'हाँ' कहो।'—इतना कहकर उसने तिरस्कार से मुख फेर लिया।

पद्मनाभ के हृदय में आनन्द व्याप्त हो गया। वह संस्कारी पुरुष विषयी वातावरण में रहते हुए भी जड़ विषयी नहीं बन गया था। राजेश्वरी की सम्मति मिलने के साथ ही उसने योरोपियन नृत्य अभिनय के चित्र और पुस्तकें भेंट कीं। उसके साधारण अंग्रेजी-ज्ञान को बढ़ाने के लिये एक शिक्षक रख दिया। और इच्छा-पूर्ति के अवसर को एक प्रकार के संकोच के कारण टालता रहा।

कोका सेठ की चकोर दृष्टि यह सब न परखे, यह नहीं कहा जा सकता। वह अधिक आने जाने लगे। और अधिक समय तक बैठने लगे। राजेश्वरी की तबियत ठीक नहीं है—यह बहाना उनको आने से रोक नहीं सकता था। वे जानकी के साथ बैठकर गप्प लड़ाया करते थे। एक बार तो राजेश्वरी को अंग्रेजी पढ़ते पकड़ा।

'क्यों ? मैडम बनना है ?'—कहकर सेठजी हँसे। उन्हें भय मालूम हुआ कि वह पढ़ा लिखा वकील उस पर विजय पा जायगा। वे अधिक सतर्क बन गये। और दरबान हबीब को मिलाना शुरू किया। वफादारी भी खरीदने से मिल जाती है। हबीब को शराब और जुए में खर्च करने के लिये पैसे मिलने लगे—और उसने सेठजी का पक्ष लिया। वह पद्मनाभ के आने पर, दूसरों के आने का कठोर प्रतिबन्ध होने पर भी, सेठजी को किसी न किसी बहाने से भीतर दाखिल कर देता।

पद्मनाभ को सेठजी की लपक-झपक से छूटने का मन हुआ। उसका संकोच भी धीरे-धीरे छूट चला था। उसने एक मकान किराये पर लिया। एक मंदिर का वह ट्रस्टी था। मंदिर के अगले भाग में किरायेदार रहते थे। फरजी नाम से उसने दो कमरे किराये पर लेकर उसको सजाया। इसमें जानकी की भी सम्मति थी। राजेश्वरी भी सहमत हुई। जानकी रात में सेठजी से दूर रहने के लिये राजेश्वरी को किराये की मोटर में घूमने ले जाने लगी। वेष-रचना वेश्याओं की सिद्ध कला है। वेश्या का वेष छोड़कर जब माँ-बेटी घूमने निकलतीं, तब कोई भी यह नहीं कह सकता था कि ये कुलीन घर की स्त्रियाँ नहीं हैं।

लेकिन, उस मकान के पास आते ही राजेश्वरी का जी घबरा उठता। एक-न-एक बहाना करके वह उस मकान में प्रवेश करते रुकती। दो तीन बार विवश होकर वह भीतर गई—मंदिर के शिवनाथ ब्रह्मचारी ने अर्ध रात्रि में अपना दर्दमय संगीत शुरू किया। राजेश्वरी ने इस संगीत में कोई महान

संगीतविद् की कला परखी। उसका मस्तक झुक गया—और हृदय दर्द से भर आया। इस स्थिति में देह का विचार करना भी संभव न था। पद्मनाभ असंतुष्ट हो रहा।

योरोपियन नृत्य देखने से राजेश्वरी में उत्तेजना बढ़ेगी—यह सोचकर पद्मनाभ ने एक दिन योरोपियन नृत्य दिखाने की व्यवस्था की। वह भी नृत्य देखने गया, यद्यपि नाट्यशाला में कोई भी यह नहीं जान सका कि इन दोनों से उसका कुछ भी परिचय है।

निश्चित स्थान पर एकत्र होकर तीनों मंदिर की तरफ गये। लेकिन मंदिर का वातावरण राजेश्वरी में विषाद के अतिरिक्त दूसरा और कोई भी भाव उत्पन्न नहीं करता था। सीढ़ी चढ़कर राजेश्वरी पीछे लौटी। योरोपियन नृत्य देखकर विह्वल बना हुआ पद्मनाभ समझता था कि वह आज राजेश्वरी की सम्मति पावेगा। वापस होती हुई, राजेश्वरी का हाथ उसने पकड़ लिया। मीठे शब्दों में आमंत्रण दिया। राजेश्वरी लौटी नहीं। पद्मनाभ ने हाथ खींचा—जानकी ने भी कहा—'इतना आग्रह करते हैं तो जरा बैठकर चलना चाहिए।'

'नहीं, नहीं, आज नहीं, फिर किसी दिन देखा जायगा।'—राजेश्वरी ने उत्तर दिया।

अविनाश और रजनी की आँखों के सामने यह घटना हुई। रजनी ने पद्मनाभ को पहचान लिया। अविनाश ने भी पहचाना, लेकिन वह पद्मनाभ था, यह मानने के लिये उसका मन तैयार नहीं हुआ!

पद्मनाभ और वे दोनों स्त्रियाँ आगे बढ़ीं। पद्मनाभ के मधुर आग्रह के कारण अन्त में राजेश्वरी ने कहा—'अगर मुझको चाहते हो तो मुझे इस मंदिर में फिर कभी न ले आइएगा।'

'क्यों?'

'संगीत की झनकारें चोट करती हैं।'

'इससे क्या?'

'मैं आपके लिये अयोग्य बन जाती हूँ।'

'राजेश्वरी! तुम मुझको बहुत दुःखित करती हो—तो अब क्या इलाज है?'

'घर पर ही आइये—मंदिर में नहीं।'

'अब तुम्हीं दिन निश्चित कर दो।'

'देखिये—परसों बाहर जाना है। एक दिन वहाँ लगेगा। फिर एक दो दिन आराम करूँगी, फिर कीका सेठ की जन्मगाँठ को मुजरा होगा। मैं कौन-सा दिन दूँ?'

'कीका सेठ की जन्मगाँठ के दूसरे दिन।'—पद्मनाभ ने कहा।

'बहुत अच्छा!'—राजेश्वरी ने उत्तर दिया, और वह मौन हो गई।

२०

समाज-द्वारा निर्धारित जीवन व्यतीत करने का दिन तो राजेश्वरी ने निश्चित कर दिया, लेकिन उस दिन के आने के पहले उसको ऐसा विचित्र अनुभव हुआ, जिसकी स्मृति वह एक क्षण के लिये भी नहीं भूलती थी। उसने गाड़ी में एक युवक देखा! उसने बहुत से युवक देखे थे। सुन्दर, सुडोल, पढ़े-लिखे और मूर्ख—किन्तु वह सब से निराला था। उसकी असहाय अवस्था और निर्दोषपन उसके मुख को अत्यन्त आकर्षक बना रहे थे। पट्टी बाँधना भी नहीं आया! गाड़ी की सम्पूर्ण जनता राजेश्वरी को नहीं—बल्कि उसकी जाति को पहचान कर, अनुचित लाभ उठाने की कोशिश कर रही थी। लेकिन उस युवक के विनय की तो सीमा ही नहीं थी! यद्यपि वह भी राजेश्वरी को गुप्त रूप से देखने की कोशिश करता था, पर उस गुप्त कोशिश में कितनी संस्कार-शीलता और मर्यादा थी! राजेश्वरी गृहस्थ युवती है, या व्यवसायी गणिका है? वह इसका भी निर्णय न कर सका। वह भोलाभाला युवक राजेश्वरी के पिता का परिचय चाहता था। कितनी ही नासमझियाँ बहुत प्रिय प्रतीत होती हैं!—बालक के समान दोष-रहित युवक! और जब राजेश्वरी ने अपना व्यवसाय कहा, तब भी सारा स्टेशन देख सके, इतनी स्पष्टता के साथ हाथ ऊँचा करके उसने विदा-चिह्न प्रदर्शित किया!

कैसा विचित्र युवक ? कितना असाधारण ? कितना सभ्य ? उसका विवाह तो हुआ ही होगा ! उसकी स्त्री को उसकी कितनी देख-रेख करनी पड़ती होगी ? उसकी किताबें बिखरी पड़ी होंगी। स्त्री को उन्हें ठिकाने रखना पड़ता होगा। उसके कपड़ों का भी ठिकाना न रहता होगा। कपड़े पहनाने तक की चिन्ता उसकी स्त्री रखती होगी। यदि ऐसा न करती हो तो ? बेचारा ! असहाय बालक की तरह कितनी कठिनाइयाँ भोगता होगा ?

'पर मुझे क्या ?'—कहकर राजेश्वरी ने एक निश्वास छोड़ा। निश्वास के साथ राजेश्वरी के युवक सम्बन्धी विचार रुके नहीं—निश्वास ने उसके विचार को धक्का देकर आगे बढ़ाया।

'अगर उसका विवाह न हुआ हो तो ?'

इस विचार के साथ ही राजेश्वरी का हृदय धड़कने लगा। इस विचार में कितनी कल्पनाएँ समाई हुई थीं ?' 'उसकी माँ तो होगी ही। वह उसकी देखभाल करती होगी।' युवक की माँ को राजेश्वरी ने कल्पना में खड़ी किया। उसकी काल्पनिक माता से ईर्ष्या हुई। वात्सल्य में पूर्णता होती है ? हृदय की मैत्री में तो वात्सल्य भी समा जाता है। वह मैत्री पत्नी ही पूरी कर सकती है।

'नौकर होंगे, आदमी होंगे, वे सब उसकी देखभाल करते होंगे।'

माँ का विचार बहुत न सह सकने के कारण उसने नौकरों

की तरफ ध्यान दौड़ाया, लेकिन जिसे माँ न अच्छी लगे, उसे नौकर अच्छे लगेंगे ?

'नौकर ! और देखभाल करते होंगे ?'

राजेश्वरी ने फिर निश्वास छोड़ा। मानो अविनाश को पट्टी बाँधने का समय हो गया हो, इस तरह से उसकी कल्पना बोली—'कौन यत्न के साथ उसको पट्टी बाँधेगा ?'

विचार-मग्ना राजेश्वरी ने देखा नहीं कि जानकी की सतत रखवाली, उसे प्रश्न करने के लिए कहती थी। एकाएक जानकी ने पूछा—'राजेश्वरी किस विचार में पड़ी हो ?'

'कुछ नहीं माँ !'

'निश्वास क्यों छोड़ती हो ?'

'यों हो।'

राजेश्वरी ने इन विचारों से छूटने के लिए किसी काम में मन लगाना चाहा। उसके साधन, उसकी परिस्थिति ऐसी न थी कि वह कुछ काम कर सके। फिर भी उसने वाद्य-यंत्रों को साफ कर ठीक से सजाया—और फिर उठाकर नये ढंग से सजाकर रखने लगी। मन दूसरी तरफ लगाने के लिये काम करते करते गाने लगी—

'मो सों देखे बिन रह्यो न जाय'

गाने के साथ भाव बताने की आदत ने राजेश्वरी को फिर अविनाश की तरफ खींचा। गाना बंद हो गया। राजेश्वरी के मानस में अविनाश की मूर्ति प्रकट हुई। गाना भी कहता था कि

उसको देखे बिना कैसे रहा जायगा ? उसको गाना अच्छा लगता होगा ? अच्छा लगता होगा तो खूब सुनाऊँगी ।

उसने अविनाश को सुनाने के लिये अच्छे-अच्छे गाने चुने, और स्थान भी निश्चित किया ।

'दूसरे किसी को नहीं आने दूँगी ।'

राजेश्वरी ने अपने संगीत का प्रभाव अविनाश पर होने की कल्पना की—एकाएक उसको रोमांच हो आया । उसका मुख लाल हो गया । वह शर्मा गई ।

'उसके अकेले रहने के कारण मुझसे भाव नहीं बताया जायगा, यह तो हो ही नहीं सकता ।'

मन-ही-मन विचारती हुई राजेश्वरी ने अपने सिर के कपड़े को खींचकर आगे किया ।

'तुम यह दो-तीन दिन से क्या किया करती हो ?'—जानकी ने पूछा ।

लड़की की हर एक हरकतें उसके ध्यान में रहती थीं ।

'कुछ भी नहीं ।'

'तुम पागल तो नहीं हो रही हो ?'

पागलपन कभी अपने को पहचानता है ? अगर पहचाने भी, तो उसका उपयोग क्या ? राजेश्वरी ने कहा—'नहीं, नहीं ।'

'पद्मनाभ के विचार में पड़ी हो ?'—जानकी समझती थी कि प्रत्येक समय राजेश्वरी को पद्मनाभ के ही विचार आने चाहिएँ ।

राजेश्वरी का मुँह उतर गया । तीव्र और त्वरित कल्पनाओं

का प्रकाश उसके मुख पर से उड़ गया। उसने निराश होकर पूछा—'माँ! गाड़ी में मिले हुए बाबू साहब का पता तुम जानती हो?'

'नहीं।'

'हमलोग कहाँ रहते हैं, यह उन्होंने पूछा था न?'

'तुमने तो आने के लिये मना किया था?'

'पर वह खोजकर यहाँ नहीं आ सकते?'

'ऐसे भोले आदमी यहाँ आ ही नहीं सकते।'

'और अगर आवें तो?'

'अगर आना चाहें भी तो रास्ते में से ही कोई गुम कर देगा।'

राजेश्वरी का हृदय भय से व्याप्त हो गया। अनुभवी जानकी इतनी बात-चीत से भाँप गई थी कि राजेश्वरी को गाड़ी में मिले हुए युवक पर मोह उत्पन्न हुआ है। राजेश्वरी को वेश्या-जीवन से घृणा थी। उसकी प्रकृति उसे एक में लीन बनाना चाहती थी, अनेक में नहीं। उसका हृदय अनेक धाराओं में बहकर अपने प्रवाह को वेग-रहित बना शुष्क रेगिस्तान में अदृश्य होना नहीं चाहता था। वह तो एक अस्खलित प्रवाह के रूप में बहकर शुष्क रेगिस्तान को भी प्लावित करता हुआ, रस के महासागर में मिल जाना चाहता था। जैसे-जैसे उसकी परिस्थिति उसके आदर्श के लिये असंभव बनती जा रही थी, वैसे-वैसे उसका मन अधिक दृढ़ होता जा रहा था। माँ की बात ने उसको भयभीत बना दिया। उसे कोई गुम कर देगा—'मतलब?'

साधारण मनुष्यों की कतार में उसने अविनाश को भी खड़ा देखा। यह तो असह्य था ही—किन्तु, स्वेच्छाचार के दंड-स्वरूप

कोई व्याधि उसके कंचन जैसे शरीर को नष्ट कर देगी तो? राजेश्वरी का कलेजा धड़कने लगा। मैं अगर उसकी पत्नी होऊँ तो? स्त्री को सब कला अपने ही में विकसित करूँ और जबतक जीवित रहूँ, तबतक अपने में ही लीन रखूँ!

मन जब किसी एक विचार में लग जाता है, तब अपने आस-पास एक नवीन सृष्टि की रचना करने लगता है। वह कल्पना में पत्नी-जीवन व्यतीत करने लगी। 'ऐसी सफाई के साथ कपड़े पहनाऊँगी कि सम्पूर्ण जगत मोहित हो जाय।'

अपने पति पर सम्पूर्ण जगत मोहित हो जाय, यह पत्नी की परम इच्छा होती है—लेकिन इसके विपरीत सिद्धान्त एक क्षण के लिये भी नहीं चल सकता। पति तो अपने को ही—पत्नी को ही—देखता रहे!

'वह चाहे जहाँ कपड़े फेंक दें; मैं उठाकर ठीक से रख दूँगी।'

काल्पनिक पत्नी ने प्रेम के साथ बिखरे हुए कपड़ों को बटोर कर ठिकाने रखा।

'बाहर से आने पर कुछ जलपान के लिये भी तो चाहिये?'

रसोईदार को आज्ञा देने के लिये तैयार हुई पत्नी के विचार में आया—रसोईये के हाथों से क्या अच्छा बनेगा? लाओ, मैं बनाऊँ! उसने अपने हाथों से विविध व्यञ्जन बनाये।

'वह आए।'

पति को पद-ध्वनि से पहचान कर पत्नी स्वागत करने के लिये आगे आई—पर यह कैसा ढंग है? बूट की डोरी खुली हुई है? सबेरे तो ठीक से पहनाया था। और कोट के जेब में रूमाल का

कैसा गट्टा कर दिया है ? बाल का तो किसी दिन ठिकाना ही नहीं रहता—किन्तु, कोट में सिकुड़न पड़ रही है, उसका भी ख्याल नहीं है ! 'कपड़ों की व्यवस्था का तुमको किसी दिन भी ख्याल रहेगा ?'

पत्नी से रहा नहीं गया, इससे उसने टोका। लेकिन पति को तो कपड़ों की ही नहीं, दूसरी भी किसी बात की सुधि नहीं थी। वह तो पत्नी के मुख को ही ध्यान से देख रहा था। प्रश्न के उत्तर में उसने पत्नी का हाथ पकड़ा, और अपनी तरफ खींचा—'अ-ह ! यह क्या करते हैं ? कोई देख लेगा !'

पत्नी एक मनोहर कठिनाई में पड़ी। अपने चारो तरफ उसने सास, ससुर, ननद, देवर इत्यादि को हँसते या मुँह चिढ़ाते हुए देखा। बड़ी कठिनाई से उसने अपना हाथ छुड़ाया—और पति के लिये मेज पर रकाबी लाकर रक्खी।

'मुँह धोने में कितनी देर है ?'

पति का प्रत्येक कार्य पत्नी की टीका का पात्र था। पत्नी के चक्रव्यूह के बाहर पति को निकलने की मनाही है।

'रूमाल कहाँ है ?'—निराधार पति ने पूछा। पति को निराधार बनाकर अपने ही आधार पर रखने वाली पत्नी, नकली रोष दिखाकर रूमाल लेने जाती हुई बोली—'कोई काम अपने हाथ से नहीं होता—लो !'

पति के हृदय में तूफान उठा। उसने रूमाल लेने के बदले अपने दोनों गीले हाथ पत्नी के मुँह और देह पर झटकारे। प्रत्येक बूँद ने पत्नी के रोम-रोम को जगा दिया। वह काँप उठी।

जाड़ा लगा होगा ? या दूसरा कुछ ? कंप के साथ सम्पूर्ण शरीर चमक उठा।

उस चमक के साथ ही राजेश्वरी का जागृत स्वप्न नष्ट हो गया। जानकी ने पूछा—'राजेश्वरी ! काँपती क्यों है ? जाड़ा लगता है ?'

काल्पनिक-सृष्टि से वह वास्तविक जगत में उतर आई। मनुष्य के स्वप्न-खिलौने भी संसार नष्ट कर देना चाहता है ? राजेश्वरी ने आँखों पर हाथ रखा और तकिये पर ढुलक कर रोने लगी—'मुझे पत्नी न बनने दोगी ? मैंने क्या अपराध किया है ?'

यही विचार उसके रुदन में था। छोटी गणिका पुत्रियों को, यौवन से पूर्ण व्यापारी गणिकाओं को—किसी-किसी आदमी के लिये ऐसा पागलपन उत्पन्न होता है—यह जानकी की जानकारी के बाहर नहीं था। उसने राजेश्वरी के पास जाकर उसे धैर्य दिया–'खोज दूँगी–तुम्हारे उन बाबू को। ऐसा रोती क्यों है ?'

'माँ ! आज ही खोज दो !'

'ज़रूर—पर तुम अब तैयार हो जाओ। कीका सेठ के यहाँ जाने का समय हो गया।'

'जहन्नुम में जायँ सब—मेरा तो कहीं आने जाने का मन नहीं होता।'

'यह कैसे हो सकता है ? आज उनकी जन्म-गाँठ है।'

'वास्तव में यह नहीं हो सकता था। हबीब का भय तो मौजूद ही था। और शारीरिक-कष्ट भोगने पर भी इस जीवन

से उबारने वाला कौन मिलेगा ? अविनाश सम्बन्धी लाखों कल्पनाएँ करने पर भी यह निर्जीव सत्य उन लाखों कल्पनाओं को मिथ्या कर सकता था। निराशा के साथ संधि करके राजेश्वरी ने भारी हृदय के साथ आँखें पोछीं, धीरे-धीरे कपड़े पहने और गाड़ी में बैठकर कोका सेठ के यहाँ गई।

अविनाश वहीं था ! यह कैसा विचित्र संयोग ? जिस अविनाश के लिये वह हमेशा झंखती रहती थी। जिससे मिलने के लिये वह अनेक शक्य अशक्य कल्पनाएँ किया करती थी। वही महफिल में दिखाई देगा—ऐसी धारणा उसके मन में नहीं थी।

सब की नजरों से दूर एक कोने में अविनाश बैठा था। तब भी, उसको राजेश्वरी की आँखों ने कैसा पकड़ लिया ? राजेश्वरी का हृदय प्रफुल्लित हो गया। उसके कंठ में स्वयं संगीत की धारा बहने लगी। वह क्या महफिल को गाना सुनाती थी ? कदापि नहीं—उसने किसी की सूचना पर भाव बताना शुरू किया था ? क्या वह अरसिक महफिल को भाव बता रही थी ? कदापि नहीं—उसकी दृष्टि तो अविनाश की तरफ ही थी। उसका संगीत अविनाश को सुनाने के लिये था। उसका अभिनय अविनाश को उद्देश करके हो रहा था। पर वह समझेगा ? मार्ग में उसको रोक कर वह कब हाथ पकड़ेगा ? आगे के गीत का भाव तो कोई भाग्यवती ललना ही बता सकती है ! प्रियतम के प्यार को भोगती, प्रियतम को पागल बनाती, कोई भाग्यवती मानिनी ही चूड़ी टूटने की फरियाद कर सकती है ! अविनाश

को राजेश्वरी के अस्तित्व की क्या आवश्यकता होगी ? उसने आगे गाया—

'ऐसे अनाड़ी सों, माहे पर्यो काम ।
देखो री ना माने श्याम !'

गाड़ी में भी वह भाव से देखता था । मफफिल में भी उसकी आँखें राजेश्वरी पर ही रुकी हुई थीं । असभ्य व्यवहार उसे रोष उत्पन्न कर रहे थे, यह राजेश्वरी की दृष्टि से छिपा नहीं रहा । राजेश्वरी ने साहस के साथ सेठजी को एक तरफ रखकर सम्पूर्ण महफिल का ध्यान खींच अविनाश को पहले पान दिया ।

'कुछ भी होश नहीं है ! पान लेने में भी······!' अविनाश के लिये व्यग्र रहने के बाद अकस्मात् उसको देखकर उसे छूए बिना वह कैसे रह सकती थी ? पास आई हुई राजेश्वरी को देखकर अविनाश की अचेत बन गई हुई मनस्थिति देह को भी स्तब्ध बना रही थी । वह हाथ भी नहीं उठा सका ।

'लीजिए ! राजेश्वरी ने कहा ।

अविनाश का हाथ यंत्रवत् उठा । राजेश्वरी के हाथ से पान लेते समय अविनाश का हाथ उसके हाथ से छू गया । राजेश्वरी ने किसी भी स्पर्श में न अनुभव की हुई बिजली, उस स्पर्श में अनुभव की । स्पर्श में यह क्या ? अंग-अंग में बिजली क्यों दौड़ गई ? राजेश्वरी के मुख पर प्रसन्नता छा गई ।

लेकिन कोका सेठ ने उसकी प्रसन्नता को दबा दिया, और असभ्य, लेकिन वास्तविक सत्य ने उसको उद्विग्न बना दिया । उसके शरीर के लिये प्रतिद्वन्द्वी बने हुए, कोका सेठ और पन्ना-

नाभ परस्पर घूर रहे थे। सेठजी स्थूल थे। पद्मनाभ का मध्यवय उसकी स्थूलता को सफाई के साथ छिपाने की चेष्टा कर रहा था। उन दोनों की अपेक्षा अविनाश का पतला शरीर अधिक कमनीय मालूम हुआ। सेठजी का स्पर्श कैसे अच्छा लगेगा? पद्मनाभ का हाथ कैसे पकड़ा जायगा? अविनाश तो दोनों हाथ पर लेकर झुलाया जा सकता है!—तत्काल उसके कंठ से धारा निकली—

'कुञ्जन बन में स्याम झूलें हिंडोला।'

आज उसको महफिल की परवाह नहीं थी। एक संस्कारी युवक को लक्ष्य कर वह अपनी कला प्रदर्शित कर रही थी। अविनाश इस युवती की कला देखकर मुग्ध हो गया। लेकिन इसके साथ ही उसमें किंचित विह्वलता और क्रोध क्यों दिखाई देता था? नृत्य की छमछमाहट शुरू हुई। राजेश्वरी स्थूल देह-धारी से देह रहित दिव्य लावण्यमयी बन गई। उसने देखा कि वह अविनाश पर भारी असर डाल रही है।

एकाएक कोलाहल हुआ। राजेश्वरी ने नृत्य बन्द कर दिया। अविनाश के क्रोध से काँपते हुए शरीर को एक दूसरा युवक बाहर घसीट कर ले जा रहा था। क्यों? राजेश्वरी बहुत देर से समझ रही थी कि अविनाश से महफिल का असभ्य व्यवहार सहन नहीं होता। किन्तु वह इस प्रकार चला गया, ऐसा क्यों? उसने वापस आने की राह देखी। अविनाश कहीं दिखाई नहीं दिया। उससे रहा नहीं गया—इसलिये उसने जानकी से पूछा—'वह बाबू साहब गये?'

'गये होंगे—तुमको क्या काम है?'

'मुझे मिलना था !'—महफिल समाप्त होने पर अविनाश से मिलने की उसको इच्छा थी। वह गया, और राजेश्वरी के उत्साह को लेता गया। उसने गाया, भाव बताए, नृत्य किया, महफिल को वह अच्छा भी लगा—तथापि उसका मन अपने कार्य से बार बार हट जाता था। उसने मध्यरात्रि होते ही मालकोश गाया और जल्सा बन्द किया। लोगों का आग्रह भैरवी का स्वर सुनने का था—लेकिन उसे पहचानने वाले जानते थे कि राजेश्वरी का 'नहीं' कभी 'हाँ' में परिवर्तित नहीं होता।

घर जाकर वह फिर स्वप्न रचने लगी। जागृतावस्था का विवेक शिथिल बन गया। इसलिये स्वप्न-रचना को पूर्ण स्वराज्य मिला। उसके स्वप्नों को अन्त में सूर्य की किरणों ने रोका। वह जागी, और उसे याद आया कि आज का दिन तो उसके बलिदान का दिन है।

उसका समय किसी तरह से नहीं कट रहा था। एक तरफ स्वप्न–जाग्रत स्वप्न–सता रहे थे, और दूसरी तरफ पास आता हुआ, भयानक सत्य उसके स्वप्न को फूँक मार कर उड़ा दे रहा था। जैसे-तैसे करके संध्या तक समय उसने व्यतीत किया। किन्तु; दीपक के प्रकाश ने उसको चौंका दिया। वे दीपक प्रकाश फैलाते थे ? नहीं, वह अग्नि-शिखाएँ उसको जलाने के लिये प्रकट हुई थीं। उसने श्रृंगार किया। अलंकारों में से भी उसने अंगारे निकलते हुए अनुभव किये। वह तकिये से ओठंग कर बैठ गई। उसमें प्राण नहीं था। अपने दुर्भाग्य को क्षण-क्षण भर में नजदीक आते देख कर वह जड़ बनती जा रही थी।

क्षण भर के लिए उसमें चेतनता आ गई। मैं पद्मनाभ के पैरों पड़ूँगी, मेरा प्रेम दूसरे के साथ है यह व्यक्त करूँगी। वह संस्कारी पुरुष मुझे छोड़ नहीं देगा ?

पद्मनाभ में दया उत्पन्न करने के लिये राजेश्वरी ने दयामय से प्रार्थना की। उसमें एक उत्साह का संचार हुआ। वह उठकर बरामदे में गई। बाहर कुछ कोलाहल हो रहा था। झाँक कर देखने के साथ ही उसने अविनाश, हबीब, रजनी और पद्मनाभ को गुत्थम-गुत्था करते देखा।

२१

हबीब को छुरा निकालते हुए अविनाश और रजनी ने देखा। वे छिप गये। पद्मनाभ आ रहा था। सलाम करके हबीब ने छूरा हाथ में लिया, साथ ही अविनाश और रजनी बाहर निकल आये। पद्मनाभ की पीठ में छुरा भोंका होता तो बचना मुश्किल था, लेकिन हबीब उसे सामने देखकर छुरा भोंकता हो, ऐसा भास हुआ। पद्मनाभ ने जोर से हबीब का हाथ पकड़ा। हबीब ने वह हाथ छुड़ाया, और पद्मनाभ के मुख पर छुरा चलाने के लिये उसने हाथ उठाया।

हबीब की समझ में नहीं आया कि वह कैसे चूक गया। वह खिझलाया। किन्तु उसका हाथ और शरीर किसी मजबूत पकड़ में जकड़े हुए मालूम हुए।

'छोड़ नहीं तो मार डालूँगा !'—हबीब ने जोर से कहा।

अविनाश ने उसका हाथ पकड़ लिया था। रजनी ने उसकी कमर पकड़ रखी थी। हबीब की धमकी को वे लोग मानने के लिये तैयार नहीं थे। हबीब ने पद्मनाभ को छोड़ दिया और उन दोनों अनजान युवकों की तरफ जोर लगाया। युवक गुंडई का रोजगार नहीं करते थे, उनकी चाल से हबीब को यह मालूम हो गया। उसने दोनों को गड़बड़ाने का प्रयत्न किया। किन्तु, उसकी इच्छा के अनुसार यह काम कुछ सरल नहीं मालूम हुआ। इतना ही नहीं, अविनाश ने हबीब के हाथ को झटका दिया। उसके हाथ से छूरा जमीन पर गिर गया। छूरा उठाने के लिये या युवकों से छूटने के लिये हबीब दरवाजे पर से सड़क पर कूदा।

दोनों युवक उससे लिपटे हुए थे और उसके साथ ही सड़क पर गिरे। कोलाहल होने लगा। आस-पास के मकान की खिड़कियों से लोगों के सिर बाहर निकल आये। लेकिन कोई इस युद्ध में भाग लेने के लिये तत्पर नहीं दिखाई देता था।

'पुलिस ! पुलिस !'—अविनाश और रजनी ने आवाज दी। लेकिन वह सर्वव्यापी सत्ताधीश ऐसे स्थलों में भाग्य से ही मौजूद रहते हैं। अन्त में हबीब युवकों की पकड़ से छूटा। वह बोला—'पुलिस ? मैं अभी तुमको पुलिस दिखाता हूँ !'—वह फिर अविनाश की तरफ बढ़ा। दोनों युवकों और हबीब के बीच में फिर मार-पीट शुरू हुई। ऐसे स्थानों में अनुभवी मनुष्य अपने साथ मजबूत लकड़ी या छूरी लेकर आते हैं। इन अनुभवहीन युवकों को हथियार की कुछ आवश्यकता नहीं मालूम हुई

थी। यौवन ही उनका रक्षक था। वे शीघ्र ही थक कर हार जानेवाले नहीं थे। गुंडे के सामने वे डटे रहे।

एकाएक पुलिस की एक छोटी टुकड़ी आ पहुँची। तीनों वीर लड़ते हुए रुक गये। पुलिस ने तीनों को पकड़ा। हबीब के चेहरे पर कुछ परिवर्त्तन नहीं दिखाई दिया। लेकिन रजनी और अविनाश के मुख पर स्याही दौड़ गई। अपनी सचाई दिखाने के लिये अविनाश बोला—'कब से हमलोग पुलिस, पुलिस, चिल्ला रहे हैं।'

'अभी हमारे साथ चलो, थाने में सुनवाई होगी।'—पुलिस के एक जमादार ने कहा।

'हमने कुछ कसूर नहीं किया है।'

'साहेब! ये बदमाश गुनहगार हैं।'—हबीब बोल उठा।

'थाने पर चलो, वहीं निश्चय होगा।'—जमादार ने कहा।

'पर हमको पकड़ते क्यों हैं? हम भागेंगे नहीं—हमलोग सुशिक्षित हैं।'

'मैं विश्वास करता हूँ। आपलोग सुशिक्षित होकर इस गली में घूमते हैं! मार-पीट करते हैं!'

चुपचाप पुलिस के साथ जाने में ही फायदा था। वे आगे बढ़े। अंधकार के कारण आसपास के लोग उनका मुँह नहीं देख सके—ऐसा दोनों युवकों को विश्वास था। नवीन परिस्थिति में कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसका विचार करते हुए अविनाश का हाथ किसी ने पकड़ा। उसने घूमकर देखा—राजेश्वरी को देख कर वह भौंचक हो गया।

बरामदे से मारपीट देखती हुई राजेश्वरी को भय मालूम हुआ कि इस प्रकार आया हुआ अविनाश फिर आना बन्द कर दे तो ? आज का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति से यह मुहल्ला छुड़ा सकता है—ऐसा हो तो ? वह हिम्मत करके नीचे उतरी, और उसने पुलिस के साथ जाते हुए अविनाश का हाथ पकड़ा अविनाश कुछ बोल नहीं सका। राजेश्वरी ने पूछा—'फिर आवेंगे न ?'

'हाँ।'—अविनाश ने मंत्रमुग्ध की तरह उत्तर दिया।

'जरूर ?'

'हाँ।'

सिपाहियों के हास्य ने अविनाश को जागृत किया। राजेश्वरी वापस चली गई।

'अरे यार ! रास्ते में भी ?'—एक सिपाही ने अविनाश से कहा।

'तुम क्या समझोगे ? यह तो लैला-मजनूँ का किस्सा है !'—दूसरे सिपाही ने उत्तर दिया। ऐसा एक भी स्नेह-प्रदर्शन न होगा, जो मनुष्यों में हँसी न उत्पन्न करे।

अविनाश को फिर क्रोध चढ़ आया। वह उस सिपाही को कुछ इनाम देना ही चाहता था—इतने में रजनी ने उसका हाथ पकड़ लिया।

'हर समय लड़कपन ठीक नहीं।'—रजनी ने धीरे से कहा।

'इसका क्या मतलब ?'

'वर्तमान परिस्थिति पर भी विचार करो।'

अविनाश रुक गया। थाना पास ही था। तीनों गुनहगार

थानेदार के सामने पेश किये गये। अविनाश तथा रजनी ने हबीब के छुरे से पद्मनाभ को बचाया था—इसलिए पद्मनाभ ने घर भागते समय थाने में जाकर पुलिस को पैसे देकर युद्ध-क्षेत्र की तरफ भेज दिया था। थानेदार वकील साहब को पहचानते थे। वकील साहब ने अधिक देर वहाँ न ठहर कर घर की राह ली थी।

कोका सेठ कब, और कहाँ सटक गये—यह किसी को नहीं मालूम हुआ। लेकिन पुलिस की जाँच में इतना मालूम हुआ कि इस युद्ध के मूल कारण वे ही हैं। इसलिये वह कुछ बहुत बड़े दुष्ट हैं, यह नहीं मानना चाहिये। उन्होंने हबीब को पैसे दिये थे, वह पद्मनाभ का खून करने के लिये नहीं। ऐसा पाप वह कभी नहीं कर सकते थे। राजेश्वरी के संबंध में पद्मनाभ की प्रतिद्वन्द्विता खून करने के लायक ही कृतघ्नता थी—लेकिन उन्होंने उदारता के साथ हबीब से इतना ही कहा था कि पद्मनाभ की केवल नाक ही काट लेना।

खून करना या नाक काटना, यह हबीब के लिये खेल था। यद्यपि खून करना ज्यादा सरल था। नाक काटने का उद्योग करते समय पद्मनाभ ने हाथ पकड़ लिया। और अविनाश तथा रजनी ने बिना कारण बीच में पड़कर हबीब का—और खासकर कोका सेठ का—खेल बिगाड़ दिया।

हबीब पुलीसवालों का पुराना परिचित था। पुलिस ने उसे अनेक समय जेल भेजा था। कई बार छोड़ भी दिया था—इतना ही नहीं, दूसरे बदमाशों को पकड़वाने में भी हबीब ने मदद की थी। फरियादी कोई था नहीं—केवल पद्मनाभ अपने

परिचित थानेदार से सिफारिश कर गये थे। पुलीस ने हबीब और दो शिक्षित युवकों को केवल साधारण रूप से लड़ते देखा था। झोका सेठ, पद्मनाभ और अविनाश जैसे प्रतिष्ठित मनुष्यों को फजीहत का डर दिखाकर अच्छी रकम ऐंठी जा सकती थी। इसलिये पुलीस ने युक्तिपूर्वक कागज बनाये। अच्छी रकम मिले तो साधारण झगड़े का रूप देकर कागज दाखिल-दफ्तर कर दिया जाय, और अगर अच्छी रकम न मिले तो सबको फाँसा जा सके—ऐसे संदिग्ध प्रश्नोत्तर लिखकर उन्हें धमका कर उस दिन छोड़ दिया। यद्यपि, अभी ज्यादा जाँच की धमकी बाकी ही थी।

थानेदार नीति-उपदेशक बन गये। उन्होंने कहा—'भले घर के लड़के होकर तुम लोग ऐसी जगह जाते हो?' उन्होंने अविनाश को शर्माया। भला आदमी कौन, इसकी व्याख्या अभी अविनाश की समझ में नहीं आई थी।

लोगों की इज्जत की कितनी कीमत होती है, यह थानेदार जानते थे, और उसी कीमत की आशा में ही उन्होंने उपदेश देकर गुनहगारों को छोड़ दिया था।

हबीब फिर अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। वह नहीं जानता था कि रजनी और अविनाश उसी दिन राजेश्वरी के मकान पर फिर आवेंगे।

'क्यों, तुम लोग फिर आये?'—हबीब ने पूछा।

'हमको राजेश्वरी से मिलना है।'—अविनाश ने उत्तर दिया।

'इस समय नहीं मिल सकोगे।'—मारपीट की खार उसके

दिल में नहीं रह गई थी। उसे तो केवल पद्मनाभ पर क्रोध था।

'हबीब ! ऊपर आने दो।'—राजेश्वरी की आवाज बरामदे में से सुनाई दी।

रजनी ने कुछ पैसे निकाल कर हबीब के हाथ पर रक्खे। उसका रहा-सहा क्रोध भी जाता रहा। दोनों ऊपर गये।

'तुमने उसको पैसे क्यों दिये ?'—अविनाश ने नाराज होकर पूछा।

'रिशवत देने से काम सरलता के साथ होता है-इसलिये !'

'तुम जानते हो कि मुझको यह पसंद नहीं है !'

'तुम जब स्वदेशी सरकार के प्रेसिडेण्ट होना, तब तुम्हारी पसंदगी का विचार किया जायगा।'

सीढ़ी के दरवाजे पर ही राजेश्वरी खड़ी थी। अविनाश ने उसे नमस्कार किया। नमस्कार के कुछ निश्चित नियम हैं। शिष्टसमाज की सभ्यता की यहाँ आवश्यकता नहीं थी। रजनी यह विचित्रता देखकर हँसा। राजेश्वरी भी इन नियमों से परिचित नहीं थी। फिर भी स्वाभाविकता के साथ उसने भी नमस्कार किया।

राजेश्वरी ने दोनों युवकों को ले जाकर गद्दी पर बैठाया और आप उनके सामने बैठी। रात्रि की शान्ति में जगत नीरव बन गया था। राजेश्वरी नीरव बैठी रही। उसका हृदय अशान्त-सागर में चक्कर खा रहा था। वह कुछ बोल नहीं सकी। मुँह नीचा किये बैठी रही।

उसने शान्त रात्रि के अनुकूल सौम्य वस्त्र पहने थे। दीप्ति-

मान वस्त्रों और अलंकारों के नीचे छिपा हुआ देह किसी परम सुंदरी अप्सरा का होगा, ऐसा अविनाश ने नृत्य देखकर विचारा था। लेकिन; आज उसे कुछ दूसरा ही भास हुआ। अग्नि शीतल हो गई थी, सूर्य एकाएक चंद्र बन गया था। सौम्य स्वरूप ऐसा दर्शनीय था। उसके स्वरूप से अमृत-वर्षा हो रही थी। आकाश के विशाल पट को क्षण-क्षण भर में अपनी ज्योति से चमकानेवाली स्वतंत्र विद्युत्, किसी काँच के गोले में शान्त होकर बैठी हुई थी।

'आपने मुझे क्यों बुलाया है ?'—अविनाश ने पूछा।

राजेश्वरी को कंप मालूम हुआ। यह विचित्र युवक वास्तव में दूसरों से भिन्न प्रकार का था। ऐसी परिस्थिति में सामान्य पुरुषों ने राजेश्वरी को कंकड़ी मारी होती, उस पर फूल फेंका होता, रूमाल मारा होता—और कुछ नहीं तो सीटी ही बजाई होती। यह युवक तो नमस्कार करता है! आप कह कर सम्बोधन करता है! शान्त बैठा हुआ है!

राजेश्वरी ने सिर ऊपर उठाया। उसने अविनाश से आँखें मिलाईं। अविनाश ने अपनी निगाह नीची कर ली। दिल मजबूत करके राजेश्वरी बोली—'मुझे आपसे कुछ पूछना है।'

'क्या ?'

'आप मुझको पहचानते हैं ?'

'जी हाँ, आप पहले गाड़ी में मिली थीं। आपका उपकार क्या मैं भूल सकता हूँ ?'

'आप समझे नहीं—आप मेरी जाति पहचानते हैं ?'

'बेशक, आप कोई विद्याधरी हैं—किन्नरी हैं !'

राजेश्वरी हँसी। उसकी सुन्दरता का बखान रोज होता था—लेकिन उसकी कला को लक्ष्य कर वर्णन करनेवाला यह अकेला मनुष्य था।

'तब, आप मुझे नहीं पहचानते—मैं तो वेश्या हूँ !'—राजेश्वरी ने निश्वास छोड़कर कहा।

'इससे मुझे क्या ? आप चाहे जो हों !'

राजेश्वरी थोड़ी देर शान्त रही। रजनी उठकर कमरे में टहलने लगा !

'आपको संगीत अच्छा लगता है ?'—राजेश्वरी ने पूछा।

'बहुत अच्छा लगता है।'

'स्वयं भी कभी गाते हैं ?'

'बिलकुल नहीं—मैं गाऊँ तो भारत में बलवा हो जाय !'

राजेश्वरी मुस्कराई। उसे बातचीत करने के लिये कोई विषय नहीं मिल रहा था—इसलिये वह मनमाने विषय पर बातचीत कर रही थी।

'आपको कौन सा राग अच्छा लगता है ?'

'आपका राग।'

'नहीं, नहीं, यह नहीं !—बागेश्री, हिंडोल, भैरवी···'

'मैं इनको जरा भी नहीं समझता—हिंडोल कब गाया जाता है ? भैरवी किसको कहते हैं ? यह मैं नहीं जानता—और जानना चाहता भी नहीं।'

'तब, आपको कैसा संगीत अच्छा लगता है ?'

'मेरे हृदय को जो स्पर्श करे, वही संगीत ! राग-ताल का मुझे ज्ञान नहीं है। इसलिये मैं संगीत का वास्तविक मूल्य जानता हूँ !'

राजेश्वरी फिर मौन हो गई। उसने अविनाश के मुख को तरफ देखा। अपनी अँगुली की अँगूठी का निरीक्षण किया। पैर का अँगूठा चाँदनी पर रगड़ा। ललाट पर नृत्य करती हुई, केश की एक लट को ठीक किया। एकाएक उसने पूछा—'आपकी स्त्री को तो संगीत आता ही होगा ?'

यह पूछने के लिये ही इतनी तैयारी थी। पूछने के लिये तो यह प्रश्न पूछ लिया—लेकिन इसके साथ ही उसका हृदय धड़कने लगा।

'मेरी स्त्री नहीं है—मैंने विवाह नहीं किया है।'

अविनाश चाहे जो उत्तर देता—लेकिन राजेश्वरी का हृदय तो धड़कता ही। स्त्री है, यह कहने पर भी उसके हृदय को बिजली जैसा धक्का लगता—स्त्री नहीं है, यह कहने पर भी हृदय को धक्का लगा। इस वाक्य में कितनी संभावनाएँ थीं ? इतना ही जानने के लिये क्या-क्या परिश्रम न करना पड़ता ?

राजेश्वरी ने हृदय को धड़कने दिया। ऐसे ही किसी अनुभव के लिये वह तरस रही थी। कोका सेठ की ग्रामीण वार्ता उसे उद्विग्न बना देती थी--पद्मनाभ की संस्कारशील वार्ता हृदय को ठंढा कर देती थी। हृदय को उछाल दे, ऐसी बातें करनेवाला आज तक उसे नहीं मिला था।

सामान्यतः इस बातचीत में कोई विशेषता नहीं थी। शब्दों

में कोई रस नहीं था। ये बातें ऐसी ही थीं, जिन्हें सुनकर अपरिचित मनुष्य को हँसी आती। लेकिन, जो धारा दो हृदयों को प्लावित कर देती है, वैसी ही धारा इस बातचीत में थी।

'आपका शुभ नाम क्या है ?'—थोड़ी देर ठहर कर राजेश्वरी ने पूछा।

'अविनाश।'

'बहुत मधुर नाम है—भगवान के एक लक्षण का सूचक है।

राजेश्वरी को यह नाम बहुत अच्छा मालूम हुआ। जिससे प्रेम होता है, उसका नाम भी सुन्दर मालूम होता है। राजेश्वरी ने फिर पूछा—'आपका विवाह कब होगा ?'

'मैं विवाह नहीं करूँगा !'

'क्यों ?'

'विवाह में कुछ तत्त्व नहीं है।'

'अर्थात् ?'

'यह कृत्रिम सम्बन्ध मनुष्य को कैदी बना देता है।'

'मैं समझी नहीं।'

'आप नहीं समझ सकेंगी।'

'कारण।'

'आप स्वतंत्र हैं।'

'कौन कहता है ?'

'मैं ऐसा समझता हूँ।'

'आप भ्रम में हैं—हम लोगों जैसा कैदखाना कोई नहीं भोगता।'

'कैदखाने से छूटने में आपको कौन रोकता है ?'

'आप।'

'मैं ?'

'बिना विवाह किये हमको भोगने की इच्छा रखनेवाले पुरुष ! फिर वह आप हों, या दूसरा कोई ।'

'नहीं, नहीं, मैं तो आपको पूजा करता हूँ ।'

'मुझको पूजा नहीं चाहिये—मैं तो विवाह करना चाहती हूँ ।'

'विवाह सिद्धान्त के मैं विरुद्ध हूँ ।'

'तब मेरी एक विनती है—आप फिर यहाँ न आइएगा ।'

'सभी को मनाही है, या केवल मुझे ही ।'

'केवल आपको ।'

'कारण ?'

'आप, मुझे सब से भिन्न मालूम होते हैं ।'

'तब, मैं आपको किस तरह से देख सकता हूँ ?'

'मेरी एक शर्त है, जो उस शर्त का पालन करे, वह सदैव देखा करे ।'

'क्या शर्त है ?'

'विवाह करे !—और कभी मेरा स्पर्श न करे !'

२२

'दरवाजा खोल !'

भीतर की कोठरी से आवाज़ आई। रजनी अविनाश के नजदीक आ गया।

'नहीं खोलती—जाओ !'—राजेश्वरी ने उत्तर दिया।

'भीतर कौन है ?'—रजनी ने पूछा।

'जानकी—मेरी मरी हुई माँ !'—राजेश्वरी ने उत्तर दिया।

'दरवाजा खोलिये न !'—अविनाश ने कहा।

'आज की रात नहीं—सबेरे खोलूँगी।'

दरवाजे पर धमधमाहट होने लगी। शान्ति से बातें करना कठिन था। जानकी के मुँह से गाली निकलने लगी। साथ ही भीतर एक दूसरे मनुष्य की आवाज़ भी सुनाई दी।

'भीतर दूसरा कौन है ?'—अविनाश ने पूछा।

'कीका सेठ।'

'दोनों को बन्द क्यों किया है।'

'यों ही।'—कह कर राजेश्वरी हँसी।

लेकिन बाद में उसने संक्षेप में सब रहस्य सुना दिया। पद्मनाभ की 'रात्रि' निरर्थक करने के लिये सेठजी की तरकीब सफल हुई। हबीब ने जरूर पद्मनाभ को घायल किया होगा। उसके बचाव के लिये दो अपरिचित युवक कोशिश कर रहे थे—पद्मनाभ घायल होकर अदृश्य हो गया, ऐसा विश्वास होने पर

कीका सेठ ने पद्मनाभ का स्थान लेकर प्रतिद्वन्द्वी से बदला लेने का निश्चय किया। जानकी तटस्थ थी। पद्मनाभ का वापस आना कठिन था। फिर सेठजी की रकम क्यों छोड़ दी जाय ?

जानकी ने राजेश्वरी को समझाया, पटाया, धमकाया, निराशा में डूबी हुई राजेश्वरी ने अभी ही अविनाश को देखा था। उसको देखने के बाद वह धमकी से कैसे डर सकती थी ? वह तो झगड़ा देखने में तल्लीन थी। उसका जी उड़ गया। बदमाश गुंडा अविनाश को कहीं घायल न कर दे ?

जानकी ने राजेश्वरी को भीतर खींचा। गद्दी पर बैठे हुए कीका सेठ, राजेश्वरी के पैर पड़े। पैर पड़े हुए लखपती सेठ को ठोकर मारने की प्रवृत्ति को राजेश्वरी ने रोक लिया। किन्तु जब सेठजी ने उसके पैर के पास रुपयों का ढेर लगा कर ललचाना चाहा, तब राजेश्वरी से नहीं रहा गया। उसने लात मार कर रुपये के ढेर बिखेर दिये।

अब सेठ साहब का मिजाज हाथ में नहीं रहा। ऐसी जगहों में इज्जत खोने में जरा भी हर्ज नहीं होता। जीवन भर 'कल' का उपयोग करने वाले सेठ; जानकी से सहायता लेकर 'बल' का उपयोग करने के लिये तैयार हुए। राजेश्वरी ने फिर अपनी निराधारता देखी। लेकिन, उस निराधारता की भावना ने आज उसको स्वावलंबी बना दिया। उसको एक तरकीब सूझी, वह नम्र बन गई। सेठजी को अपना हाथ पकड़ने दिया। सेठजी को जरा भी मेहनत न पड़े, इस तरह से वह घसीटाई। उसने स्मित किया। सेठजी के 'बल' की प्रशंसा की। लेकिन,

भीतर जाकर 'डर' के बहाने जानकी को भी भीतर बुलाया। सेठजी और जानकी थोड़ी देर भीतर बैठे। इतने में पानदान लाने के बहाने वह बाहर आई। बाहर आकर जल्दी से उसने कोठरी का दरवाजा बन्द कर दिया। दरवाजा बन्द न करने का जानकी का प्रयत्न उसने निष्फल किया। और उसकी चिल्लाहट और दरवाजे को ठकठकाने की परवाह न कर के सिपाहियों के साथ जाते हुए अविनाश को आमंत्रण दे आई थी।

जानकी की चिल्लाहट की जरा भी परवाह न कर के वह बरामदे में खड़ी रही। अविनाश ने फिर आने की हामी भरी थी। लेकिन, पुलीस से छूटकर आना हो सकेगा। इसका क्या विश्वास? रात बहुत बीत गई; लेकिन, उसकी मार्ग-प्रतीक्षा रुकी नहीं। अन्त में अविनाश आया। राजेश्वरी की इच्छा पूरी हुई। उसने अपना हृदय खोलकर दिखा दिया—पत्नीत्व की पिपासा व्यक्त की। और पत्नीत्व भी कैसा? पुरुष स्पर्श-रहित!

पुरुष समझ नहीं सका। अविनाश विवाह से डरता था। उसको वह निरर्थक मालूम होता था। प्रेम और विवाह में कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसा उसका विश्वास था। प्रेम, विवाह में ही परिणित होता है, कार्य-कारण की यह शृंखला उसने नहीं देखी थी। विवाह प्रेम का विकास है, प्रेम में से खिलता हुआ पुष्प है, उसे यह नहीं मालूम हुआ। बल्कि, उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि वे दोनों परस्पर विरोधी तत्व हैं।

'राजेश्वरी की माँग को किस तरह स्वीकार करे?'

एकाएक भीतर के दरवाजे की ठक ठक ने उसे चैतन्य

किया। ठक-ठक का इतिहास उसको सुनाया गया, और राजेश्वरी ने उसके दिल को दुखाने वाली बिदा भी दी।

'आप, अब जा सकते हैं।'—राजेश्वरी ने कहा।

'पर मैं जिस लिये आया था, वह तो भूल ही गया।'

'आप किस लिये आये थे ?'

'एक तो आपका उपकार मानने।'

'कैसा ?'

'मुझको पट्टी बाँधकर बचाया था, उसका !'

'अरे, उसमें उपकार ही क्या है ?'

'दूसरे आपसे क्षमा माँगने।'

'वह किस लिये ?'

'पुरुष जाति के लज्जाजनक बर्ताव के लिये।'

'मैं नहीं समझी।'

'मैंने जब से आपको देखा है, तब से पुरुष आपका अपमान किया ही करते हैं !'

'उसमें आपको क्या ?'

'मैं शर्म से दब जाता हूँ।'

'जो अपमान करे, वह शर्माये—आप कहाँ अपमान करते हैं।'

'सम्पूर्ण पुरुष जाति का प्रतिनिधि बनकर, मैं आप से माफी माँगता हूँ।'

राजेश्वरी मधुर-मधुर मुस्करा रही थी। उसने अविनाश की आँखों से अपनी आँखें मिलाईं। अविनाश से यह सहन न हो सका, उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

'माफी दूँगी—फिर किसी दिन !'—राजेश्वरी ने मुस्कराकर कहा।

'आज नहीं ?'

'थोड़ा देना, रहने दीजिये।'

'किस लिये ?'

'फिर, मेरे और आपके बीच में 'बाकी' क्या रहेगा ?

'माफी देना मैं 'बाकी' रखती हूँ !'

अविनाश नहीं समझा। कभी-कभी स्त्रियों के वचन ऐसे गूढ़ होते हैं कि समझ में नहीं आते।

जानकी ने फिर दरवाजा ठकठकाकर कोलाहल मचाया।

'अब आप जाइए'—राजेश्वरी ने जल्दी से कहा।

अविनाश के पैर भारी हो गये। उसे मालूम हुआ कि उसके पैरों में गति नहीं है। जानकी की गाली भी अधिक रसमय होने लगी। स्त्री जब कठोर या अपशब्द बोलती है, तब ऐसा मालूम होता है कि कोई देवांगना कीचड़ और धूल में नहा रही है। राजेश्वरी को भी जानकी की गाली सुनकर बहुत संकोच मालूम हुआ। रजनी ने अविनाश को खींचा। अविनाश को भी मालूम हुआ कि यदि अब पैर न भी उठे, तो भी उठाना चाहिये।

'मैं जाता हूँ।'—अविनाश ने कहा—और नमस्कार करके धीरे-धीरे सीढ़ी उतरा। हबीब सो गया था। दरवाजे पर आकर अविनाश खड़ा रहा।

'जानकी या कीका सेठ अगर उसको तंग करेंगे तो ?'—उसने रजनी से पूछा।

'इसे हमलोग कैसे रोक सकते हैं ?'

'राजेश्वरी को हमलोग दूसरी जगह ले चलें ।'

'वह आवे तब न ? वह कभी नहीं आवेगी ।'

'हम लोग पूछें तो सही ?'

'ओ मूर्ख ! उसको ले कहाँ जायँगे ? मुझे, या तुम्हें कोई घर में भी नहीं घुसने देगा ।'

रजनी का कहना सच था । समाज का कौन-सा घर ऐसा है, जिसका द्वार अनाथ या पतित स्त्रियों के प्रवेश के लिये खुला हो ?

अविनाश कुछ विचार कर रहा था ।

ऊपर अधिक गाली-गलौज या मारपीट नहीं सुनाई दी । अविनाश और रजनी के नीचे उतरने पर राजेश्वरी ने दरवाजा खोल दिया था । क्रोधित सिंहनी की तरह जानकी राजेश्वरी की तरफ देखकर रुक गई । खून या अपघात करने वाले मनुष्य कीसी दृढ़ता उसके मुख पर थी । यौवन में यह बल होता है, ऐसा जानकी का अनुभव था । चाहे वह भले ही गणिका का योवन हो ।

कीका सेठ का कुछ अधिक हर्ज नहीं हुआ । सुखी राज्जा सेठ अनेक बातों में नैपोलियन के समान थे । कैदखाने में नींद आ सके, ऐसी उनकी आदत थी । राजेश्वरी अत्यन्त सुन्दरी थी, फिर भी उसके अभाव में प्रगल्भा जानकी अच्छी न लगे; ऐसी वृद्ध नहीं हो गई थी । यह वे जानते थे । वे बहुत संतोषी थे । राजेश्वरी ने दोनों को भीतर बन्द किया, इस अवसर को वे रसमय बनाने की कोशिश करें, इसमें कुछ नवीनता नहीं थी ।

मनुष्य प्रत्येक स्थिति में आनंद के साथ रह सकता है। फिलॉसफी के इस तत्व का सेठ जी सदा पालन करने को तैयार रहते थे।

लेकिन लड़की पर क्रोधित जानकी जब सेठ जी को चुहल के लिये अनादर दिखाने लगी, तब उसी फिलॉसफी के अनुसार राजा सेठ ने दुनिया का ध्यान छोड़ कर एक नींद भी ले ली। इस बीच में सम्पूर्ण इतिहास रच गया। लेकिन, सेठजी इतिहास के चल स्वभाव को पहचानते थे। उनको विश्वास था कि हबीब सौंपे हुए काम को जरूर पूरा करेगा। यद्यपि वह देख चुके थे कि रजनी जैसा अपना ग्रेजुयेट नौकर ही पद्मनाभ के बचाव की कोशिश कर रहा था। फिर भी ग्रेजुयेटों की निर्माल्यता को हँसकर वह राजेश्वरी को तन, मन और धन से जीतने की कोशिश कर रहे थे।

राजेश्वरी ने उनको कोठरी में बन्द किया, इसमें उनको मालूम हुआ कि अब प्रेम का श्रीगणेश हो गया। कितनी युवतियों ने उनको ऐसी सजा दी थी? कञ्चन, नीलम, जवाहिर और समय काटने के लिये जानकी भी साथ में थी। जानकी उनके कब्जे में नहीं आई, इसलिये सेठजी ने एक नींद ले ली। सोकर उठने पर जानकी दरवाजा ठकठका कर किसी को गाली दे रही थी। बाहर राजेश्वरी किसी पुरुष के साथ बातचीत कर रही थी।

'यह भी हो सकता है।'—कहते हुए सेठजी ने उदारतापूर्वक आलस्य से करवट ली।

दरवाजा खुला। सेठजी ने एक उबासी ली। राजेश्वरी की तरफ बढ़ती हुई जानकी को रोकने के लिये पलँग से नीचे उतर कर कमर कसना शुरू किया।

इतने में जानकी राजेश्वरी का मुख देख कर स्वयं रुक गई।

'आज नहीं तो कल समझ जायगी। उसको तंग मत करना जानकी!'—कहकर सेठजी ने अपने हृदय की उदारता दिखाई।

दोनों को दीवान खाने में छोड़कर राजेश्वरी अपने सोने के कमरे में चली गई। उसने दरवाजा बन्द कर दीपक को धीमा किया। लेकिन आराम से पलंग पर न सोकर वह झूले पर बैठ गई। झूला हिला और उसके कंठ से एकाएक गीत निकला—

'जरा कह दो—सँवलिया से आया करें······।'

यह गाना गाकर महफिलों में अनेक शौकीनों के दिल को वह कत्ल कर चुकी थी। आज एकाएक यह गीत उसके गले से क्यों निकला?

अविनाश ने अब पैर आगे बढ़ाया। गली में खड़े हुए इस स्त्री-सहायक की समझ में आ गया कि राजेश्वरी गाना गाने की स्थिति में है। उसे सहायता की आवश्यकता नहीं है। वह आगे बढ़ा। उसके हृदय में फिर से स्वर गूँज उठे—

'जरा कह दो—सँवलिया से आया करें······।'

'किसी को लक्ष्य कर वह गाती थी?'—मन में उठे हुए प्रश्न को उसने रजनी से पूछा। उससे पूछे बिना रहा नहीं गया।

'हाँ तुमको लक्ष्य कर!'—रजनी ने हँसकर कहा।

'दिल्लगी मत करो।'

'सारी सृष्टि दिल्लगी का स्वरूप है!'

किन्तु, अविनाश को दिल्लगी नहीं मालूम हुई। उसका हृदय उस स्वर के आस-पास चक्कर काट रहा था।

२३

रजनी दूसरे दिन जल्दी ही घर आ गया। रमा ने कारण पूछा। लेकिन रजनी ने उसका सच्चा कारण नहीं बताया। रमा को उस दिन जरा भी अवकाश नहीं था। पड़ोस की गंगा बहन को एक बालक पैदा हुआ था। उस दिन रजनी घर पर नहीं था और विक्रम भाई भी घर में नहीं थे। आस-पास की कोठरियों में गंगा बहन की परिचित स्त्रियाँ बहुत थीं, लेकिन रमा के प्रति गंगा बहन का विशेष सद्भाव था। रात में रमा को बुलाकर गंगा बहन ने अपना हाल कहा। प्रसूति के लिये अभ्यस्त गंगा बहन डरी हुई नहीं मालूम होती थी। लेकिन, रमा को बहुत डर लगा। उसने पूछा—'विक्रम भाई नहीं हैं?'

'उनका क्या काम है? वे क्या करेंगे?'—गंगा बहन ने उत्तरदायी पुरुष की निरर्थकता दिखाई। गंगा बहन की वेदना के समय उनके पति रूप की हाट में सुख खोज रहे थे।

'किसी दाई को बुलाया जाय?'

'नहीं बहन, वह उल्टा हैरान करेगी।'—गंगा बहन ने कहा। वह जानती थी कि दाई को बुलाने के लिए पैसे अगर घर में होंगे भी तो विक्रम भाई जेब में रखकर ले गये होंगे।

रमा रात भर जागती रही। रोते बालकों को उसने सुलाया और रुदन के साथ अवतरित नवीन बालक की सेवा-सुश्रूषा भी शुरू कर दी।

रमा ने बालकों और गंगा बहन की सेवा में सारा दिन व्यतीत किया। रजनी जल्दी घर आया। पर वह तो भारी काम में फँसी हुई थी।

'इतनी जल्दी कैसे ?'—रमा ने पूछा।

'तुम्हारा भी जुल्म है—वास्तविक कारण कहूँ ?'

'शरीर तो अच्छा है न ?'

'हाँ, कहीं तुम्हारे मुख-चंद्र को भूल न जाऊँ—इसलिये उसको देखकर याद रखने के लिये जल्दी चला आया हूँ !'

'क्या बड़बड़ाते हैं ? कोई सुन लेगा !'

'सभी ऐसा ही कहते हैं—तुम घबड़ाना मत।'—कहते हुए रजनी को अकेला छोड़कर रमा गंगा बहन के घर की तरफ चली गई—कारण, नवीन बालक जागकर रो रहा था।

रजनी को रात्रि में नींद नहीं आई। दीवार का तकिया बना, खाट पर पैर फैलाकर वह बैठा था। रमा ने गंगा बहन के लड़कों को अपनी कोठरी में ही सुलाया था। नये बालक और गंगा बहन की सेवा-सुश्रूषा से वह बहुत रात बीतने पर खाली हुई। उसका एक नियम था—पति का मुख देखकर सोना और पति का मुख देखकर उठना—रजनी इसके लिये रमा से मजाक भी करता, लेकिन रमा के नियम में कभी अंतर नहीं पड़ता था। प्रेमी नये जमाने के हों, या पुराने जमाने के, यह

नियम बनाया हो, या न बनाया हो—किन्तु, परस्पर एक दूसरे का मुख देखकर सोने जागने के नियम का अपने आप पालन हो जाता है।

रमा को आती देखकर रजनी ने आँखें बन्द कर लीं। रजनी अगर जागता न होता, तो रमा उसके ललाट पर हाथ फेरती और रजनी उस समय हिलता-डुलता न तो एक चुम्बन भी ले लेती। निद्रा का ढोंग रजनी को प्रायः आल्हादकारक होता। रजनी की जागृत अवस्था की स्नेह-चेष्टा का रमा भाग्य से ही समर्थन करती। पत्नी के विरुद्ध, पति की यह सतत फरियाद होती है!

रमा ने रजनी के ललाट पर हाथ फेरा। रजनी जागे नहीं, इस तरह से उसके पास बैठी, और जैसे ही उसके ओठ रजनी के गाल के पास आये, वैसे ही रजनी के दोनों हाथों ने उसके गालों को दबाया।

'तुम जागते हो?'—बात बदल देने के लिये रमा बोली।

'नहीं।'—रजनी ने उसके मुख हटाने के प्रयत्न को निष्फल किया।

'यह क्या तूफान?'—तुम तो बहुत बेढब हो!'—रमा ने कहा।

अन्त में उसने अपना मुख हटा लिया—परन्तु मस्तक पर हाथ फेरना चालू रखा।

'इस तरह कष्ट होगा—ठीक से सो जाओ।'

'मैं तो जब मन में आवेगा सो रहूँगा—लेकिन तुमने तो मरने का विचार किया है, ऐसा मालूम होता है।

'क्यों ?'

'इतनी रात तक मजदूरी करती हो, वह क्या जीने के लिये करती हो ?'

'मर जाऊँगी तो क्या ? बेचारी गंगा बहन की कितनी दुर्दशा है ?'

'अरे पर तुम मर जाओगी तो मेरी कितनी दुर्दशा होगी, कुछ इसका भी ख्याल है ?'

'तुमको दूसरी मिल जायगी।'

'आजकल के जमाने में इसका विश्वास नहीं है—इसलिये मरने का विचार स्थगित रखो !'

रमा हँसी; लेकिन उस हँसी में थकावट छिपी थी—इतना ही नहीं, उसमें कुछ माँग भी छिपी थी। उसने मस्तक पर हाथ फेरना चालू रखा।

'तुमको सोना नहीं है ?'

'नहीं।'

'कुछ कहना है ?'

'हूँ।'—वह दुलार के साथ सिर हिलाकर हँसी।

'क्या कहना है ?'

'वह तो देखो······कुछ नहीं, फिर कहूँगी।'—देह मरोड़ कर सकुचाती हुई रमा बोली।

'ऐसा क्यों करती हो ? माँगो, माँगो, जो माँगो वह दूँगा, मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ ।'

'हँसने की बात नहीं है !'

'तब इतना सकुचाती क्यों हो ? क्या कहना है ? बोलो ?'—रजनी ने ठीक से बैठकर उसके गले में हाथ डाला ।

'मैं तो यह कहती थी कि यह गंगा बहन हैं न, उनकी ननद चार दिन में आनेवाली हैं ।'

'भले आवें, एक के बदले दो ननदें आवें, इसमें मेरा कोई हर्ज नहीं है ।'

'यह नहीं, तुम जरा समझो ।'

'वह तुम समझाओ । गंगा बहन की ननद की बातों में मुझको जरा भी रस नहीं मिलता ।'

'वह आवेंगी, तब इनके घर में रसोई-पानी का इन्तजाम हो सकेगा ।'

'मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा ।'

'पर तब तक बेचारे लड़कों का क्या होगा ? विक्रम भाई को तो रसोई करने का बड़ा दुःख है ।'

रजनी कुछ हँसा । विक्रम भाई को किस बात का दुख नहीं था, यह वह जानता था । उसने हँसकर कहा—'इसलिये तुमको उनके घर की रसोई करनी है ? अच्छी बात है । तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही करो—पर बहुत परोपकार करने से फिर जन्म नहीं होगा । यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा !'

'यहाँ, और वहाँ दो जगह रसोई करूँ, इसकी अपेक्षा चार दिन सभी अपने यहाँ भोजन करें तो कैसा ?'

रजनी पत्नी की तरफ देखता रहा। दूसरे के सुख से सुखी होने वाली पत्नी भाग्य से ही मिलती है। रजनी को प्रत्येक चीज में से हास्य मिल जाता था। उसका हास्य इस समय उड़ गया। पत्नी की तरफ प्रेम से देख, उसके मस्तक पर हाथ फेरकर उसने कहा—'तुमको जैसी सुविधा हो वैसा हो करो—इसमें क्या ?'

वह हँसा नहीं। उसने मजाक भी नहीं किया। परन्तु; पत्नी से कहने के लिये सोची हुई, एक गुप्त बात भी उसने नहीं कही। पत्नी को दुखी करने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। कम खर्च में आनन्द से गृहस्थी चलाती हुई गृहिणी से अपनी नौकरी छूटने का समाचार कहकर चार दिन पड़ोसियों का सत्कार करने के आनन्द से वंचित करने की क्रूरता वह नहीं कर सका। कीका सेठ ने उसको निकाल दिया था। उन्होंने कुछ कारण नहीं प्रकट किया था। परन्तु पद्मनाभ की नक्कटइय्या में रजनी विघ्नरूप हुआ था, यह कीका सेठ ने देख लिया था। कितनी कृतघ्नता! संसार में वफादारी तो है ही नहीं! किसी भी काम में न आ सकें ऐसे ग्रेजुयेट को पाला! वही ग्रेजुयेट सेठजी के प्रतिद्वन्द्वी की नक्कटइय्या में बाधक हो, यह कितना बड़ा अन्याय है? उनका विश्वास था कि पद्मनाभ का रूप बदल गया होगा। लेकिन जाँच करने पर मालूम हुआ कि पद्मनाभ कुरूप नहीं हुआ है। यह जानते ही सेठजी ने बेवफा रजनी को नौकरी से निकाल दिया।

रजनी ने सेठजी से मिलने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु

सेठजी ने मिलने से इनकार कर दिया। रजनी जल्दी घर आया। उसका आनन्दी स्वभाव हँसने और हँसाने का था। परन्तु भविष्य की चिन्ता उसके हृदय पर भार रूप बन बैठी। उसकी निद्रा उड़ गई। पत्नी को यह खबर सुनाकर हृदय का बोझ हलका करने की उसकी इच्छा थी। परन्तु, पत्नी को प्रसूता पड़ोसिन की सेवा सुश्रूषा से फुर्सत नहीं थी। और दूसरे जब उसको फुर्सत मिली तब पड़ोसी धर्म पालन करने से होते हुए उसके आनन्द को विच्छिन्न करने की रजनी की हिम्मत नहीं हुई।

पत्नी सुखपूर्वक सोई। उसके निर्मल स्वभाव और उदारता का विचार करता हुआ रजनी नौकरी छूटने का दुख भूल कर सो गया।

सबेरे जब वह उठा, तब गंगा बहन के पति विक्रम भाई को अपनी खाट के पास बिछी हुई चटाई पर बैठे अखबार पढ़ते देखा। विक्रम भाई के रूखे चेहरे पर इस समय मुस्कराहट थी। वह किसी-किसी समय आकर अखबार ले जाते थे। परन्तु सबेरे ऐसे आकर बैठें, यह नई बात थी।

'क्यों साहब ! आज इतनी देर ?'—विक्रम भाई ने पूछा। मुस्कराहट ने अभी उनके चेहरे का साथ नहीं छोड़ा था।

'आप जैसे व्यापारी को जल्दी हो सकती है ! मुझको कहाँ शेयर का भाव और तेजी-मंदी देखनी है ?—रजनी ने उत्तर दिया।

विक्रम भाई वास्तव में क्या रोजगार करते थे यह रजनी नहीं जानता था। लेकिन उसका ऐसा ख्याल था कि वह कुछ

अंश में मुनीमी, कुछ अंश में दलाली और कुछ अंश में सट्टा करके अपनी पत्नी और शीघ्रता से बढ़ती हुई संतानों का पालन करते थे।

रमा ने एकदम से आकर कहा—'तो अब तुम तैयार हो जाओ! मैं चाय ले आऊँ। विक्रम भाई आप को देर होती है?'

'नहीं, नहीं, रमा बहन, मुझको जल्दी नहीं है।'—कहकर विक्रम भाई ने अखबार का पन्ना उलटा।

रजनी को विक्रम भाई की हाजिरी समझ में आई। मूर्ख रमा ने सबेरे की चाय से शुरू करके रात्रि के ब्यालू तक की व्यवस्था अपने ऊपर ली थी। रजनी को रमा के लिये प्रेम उमड़ आया। वह आनन्द-पूर्वक जल्दी से तैयार हुआ, और विक्रम भाई के पास चटाई पर चाय पीने बैठा!

'लीजिये साहब, पढ़िए—आजकल की दुनियाँ ऐसी बन गई है कि बात न पूछिए।'—अखबार को छोड़कर चाय का प्याला उठाते हुए विक्रम भाई बोले। घर और बाहर स्वतंत्रता-पूर्वक घूमते हुए विक्रम भाई को दुनियाँ के विरुद्ध क्यों टीका करनी पड़ रही है, यह रजनी को समझ में नहीं आया!

'अरे सब ऐसे ही चलता है, विक्रम भाई।'—चाय से उत्पन्न होती हुई प्रसन्नता ने रजनी को उदार बनाया। वह प्रत्येक गुनाह को माफ करने के लिये तैयार था।

'अरे, क्या साहब! यह भी कोई बात है? एक प्रसिद्ध वकील, दूसरा सेठ और तीसरा अच्छे घर का लड़का! अब हद हो गई!'

विक्रम भाई से दुनिया का दुख नहीं देखा गया। उनको स्वयं अपने लिये प्रत्येक कार्य करने की स्वतंत्रता थी। लेकिन उनको छोड़कर प्रत्येक मनुष्य के कार्यों के लिये वह भारी चिन्तित दिखाई दे रहे थे।

रजनी चौंक पड़ा—अखबार में बड़े-बड़े टाइपों में छपा था—'वेश्यालय में हुई इज्जतदार गृहस्थों की फजीहत!'

'हमारे संवाददाता को विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि वेश्याओं की गली में एक प्रसिद्ध वकील, एक प्रतिष्ठित सेठ और एक अच्छे घर के लड़के को मारपीट करने के कारण गिरफ्तार किया गया था। वे लोग जमानत पर छूटे हैं। परन्तु पुलिस की जाँच चलती रहने के कारण उनके नाम अभी नहीं प्रकट किये गये हैं। एक दो दिन में प्रकट किये जायँगे।'

समाचार आधा सच्चा और आधा झूठा था—वर्तमान पत्रों में जैसा रहता है, वैसा ही। वर्तमान पत्रों के सम्वाददाता खुफिया पुलिसों के समान ही चालाक होते हैं। दोनों लोगों को फजीहत के भय का अच्छा फायदा उठाते हैं। दोनों ने मिलकर 'तीनों गुनहगारों' को भयभीत करने की योजना की थी, ऐसा मालूम होता था। 'पर मेरा नाम तक नहीं? सम्पादक और पुलिस, दोनों के लिये मेरा कुछ भी मूल्य नहीं है?'

यह विचार आते ही रजनी हँसा। इसके साथ ही उसकी दृष्टि अखबार के दूसरे पृष्ठ पर पड़ी। पद्मनाभ के नाम से उसने एक लेख छपा हुआ देखा। लेख में 'पतिताओं' के लिये गम्भीर विचार किया गया था। मर्दुमशुमारी के आँकड़ों के द्वारा हिन्दु-

स्तान की, और शहरों में रहनेवाली वेश्याओं की, संख्या दी थी। सभ्य-समाज को इनका विचार करना चाहिये, ऐसा ज्ञान उसमें समाया हुआ था। अंत में पतिताओं के उद्धार के लिये एक सभा करने की सूचना भी थी।

चार, चोरी के विरुद्ध ज्ञान देता था! व्यभिचारी नीति-रचना करता था! गिरफ़्तारी होने के पहले ही साहूकार बन बैठना बुद्धिमानी है। पद्मनाभ जैसा चतुर वकील ऐसी बुद्धिमानी न करे तो दूसरा कौन करेगा?

इसका उपयोग फिर से नौकरी पाने में हो सकेगा, ऐसा रजनी ने सोचा।

'किस विचार में पड़ गये मेहरबान?'—विक्रम भाई ने पूछा।

'एक वकील इसका उपाय बतला रहे हैं।'

'इसका उपाय हो चुका!'—विक्रम भाई ने कहा—मनुष्य चलती बातों को चला लेने का विचार रखता है—फिर भले ही वह बाल-विवाह हो, कन्याविक्रय हो, या वेश्यावृत्ति हो।

'पर सोचिये, अगर सरकार वेश्यालयों को बन्द कर दे तो?'—रजनी ने पूछा।

विक्रम भाई विचार में पड़ गये। सरकार सभी बातों में टाँग अड़ाये तो बुरा है। वेश्यालय बन्द करने से बहुत से आदमियों को कष्ट होगा। सरकार को इसका विचार भी करना चाहिये।

'अरे, इससे कहीं लोग सुधर सकते हैं?'—विक्रम भाई ने कहा।

'सुधरेंगे नहीं तो डरेंगे तो सही।'

'तब फिर अच्छे महल्लों में वेश्याएँ आ जायँगी!'

'इस डर से हमलोगों को वेश्यावृत्ति चलती रहने देनी चाहिए?'

'यह तो भाई जैसा है, वैसा ही रहेगा। कोई कुछ नहीं कर सकेगा।'

'ऐसा क्यों?'

'औरतों की जाति! उनका चरित्र ही ऐसा है! जाने दीजिये इस बात को।'

कभी कभी गणिका-गृहों में जाकर आनन्द लूटने वाले विक्रम भाई को इसमें स्त्रियों का ही दोष दिखाई दिया। स्त्रियों के चरित्र के संबंध में पुरुषों के अभिप्राय प्राचीन-काल से जाने हुए हैं। अगर वेश्यावृत्ति स्त्री-चरित्र का एक भाग हो तो सभी स्त्रियों को एक साथ रखने में या वेश्याओं को सर्वत्र रहने देने में क्या हर्ज है? यह रजनी की समझ में नहीं आया। विक्रम भाई को अपनी स्त्री के लिये जरा भी चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि लड़कों की अधिकता के कारण उनके शरीर में मर्यादा उल्लंघन करने की शक्ति नहीं थी।

लेकिन यह सब समझाने से आतिथ्य में कमी होगी, इसलिये रजनी ने विक्रम भाई को ज्यादा नहीं छेड़ा। रमा को तो अवकाश था ही नहीं। सब कामों से छुट्टी पाकर वह रजनी के पास आकर बैठी। इतने में उसे कुछ याद आया। वह फिर खड़ी हुई।

'कहाँ दौड़ती हो ? जरा बैठो !'—रजनी ने कहा।

'उस लड़के को भूख लगी होगी।'

'किस लड़के को ?'

'गंगा बहन के छोटे लड़के को।'

'तुम जाकर क्या करोगी ? उसकी माँ तो उसके पास है न ?'

'माँ बेचारी में क्या धरा है ? गंगा बहन का भला कुछ शरीर है ? गुड़ अजवाइन कर दूँ, नहीं तो फिर रोवेगा।'—कहकर जल्दी से रमा आगे बढ़ी। रजनी को इस पागलपन पर हँसी आई। उसने आवाज दी—'रमा !'

'मुझको क्यों बुलाया ?'—रमा ने वापस आकर पूछा।

वह लड़का गंगा बहन का ही है, ऐसा तुम्हारा विश्वास है ?

'इसमें और पूछने की क्या बात है ? गंगा बहन का नहीं है तो किसका है ?'

'मैं भी यही जानना चाहता हूँ, तुम्हारा तो नहीं है न ?'

'क्या बक-बक करते हो ?'

'तुम्हारी यह दौड़ धूप देखकर मुझे भय हो रहा है।'

'क्यों ?'

'अगर तुमको लड़का होगा तो किस तरह से होगा ?'

'यही सब बोलना सीखा है ! आज कोठी नहीं जाना है ?'—कहकर रमा फिर आगे बढ़ी।

'तुम उस लड़के को गुड़-अजवाइन देकर जब छुट्टी पाना तब आना। मैं कोठी की बात कहूँगा। मैं नौकरी से छुड़ा दिया गया !'

रजनी ने जो उत्तर दिया वह रमा ने सुना। एक क्षण वह खड़ी रही और पति के मुख की तरफ देखती रही। जिसकी नौकरी छूट गई हो वह मनुष्य इस तरह से हँसेगा और शरारत करेगा? वह चली गई।

२४

बेकार रजनी दोपहर में सो गया था। रमा ने उसको जगाया।

'तुम कहते थे—नौकरी छूट गई, और सेठजी ने तुमको बुलाने के लिये आदमी भेजा है! सची बात क्या है?'—रमा ने कपड़े पहन कर तैयार होते हुए रजनी से पूछा।

'मैंने जो कहा था वही ठीक है।'

'पर तुमको किसलिये निकाल दिया?'

'कसूर तो बहुत बड़ा था, पर बहाना यह था कि हम लोग वेश्याओं के घर के पास घूमते थे।'

'तुम सेठजी को विश्वास दिला दो कि तुम ऐसी जगह कभी नहीं गये थे।'

'मैं वहाँ गया था—यह सच है।'

'कहाँ?'

'एक गानेवाली के यहाँ।'

'हाय, हाय।'

'तुमको अच्छा नहीं मालूम हुआ?'

'जाओ झूठे ! शर्म भी नहीं लगती ऐसा बोलते !

'मैं सच बोलता हूँ—एकदम सच ।'

'मत बोलो······! झूठ-मूठ चिढ़ाओ मत ।'

'मैं गवाही दिला दूँ तब ?'

'किसकी ?'

'अविनाश की ।'

'वह वहाँ किसलिये गये थे ?'

'वह एक गानेवाली के प्रेम में फँस गया है !'

'यही सब सीखा करो ! मुझको तो सुनकर लज्जा मालूम होती है। प्रेम-भरी प्रमदाएँ भी प्रेम की चर्चा से लज्जित होती हैं।

'मैं तुमको विश्वास दिला दूँ ?'

'मुझको विश्वास भी नहीं करना है और किसी की गवाही भी नहीं लेनी है। अब तुम जाओ ।'

'मैं तो जा रहा हूँ। पर देखो—वह अविनाश आ रहा है। उससे पूछ लेना ।'

अविनाश आया ! उसने पूछा—'कहाँ जाते हो ?'

'बने तो फिर से नौकरी पाने के लिये ।'—रजनी ने कहा ।

'मेरी भी नौकरी गई ।'—अविनाश ने कहा !

'किस लिये ?'

'मेरा चरित्र ठीक नहीं है, यह मालूम होने से ।'

'तुमसे किसने कहा ?'

'पद्मनाभ ने यह तार भेजा है—पढ़ो ।'

रजनी ने तार हाथ में लिया। उसमें लिखा था—'अविनाश के चरित्र के विरुद्ध बहुत-सी दरखास्तें आने के कारण उसको नौकरी से अलग किया जाता है।'

'किसने दरखास्त दी होगी?'

'क्या मालूम?'

'उस गली में घूमनेवाले तुम्हारे हितचिन्तक ही होंगे।'

'मेरा कोई दुश्मन नहीं है।'

'इसीलिये तो मैं हितचिन्तक कहता हूँ। तुम्हारे मित्रों और परिचितों को ही तुम्हारे चरित्र के लिये चिन्तित रहना चाहिये।'

अविनाश को सुरेश, शर्माजी, प्रोफेसर जयंत, चन्द्रानन वगैरह मिले हुए और दूर से देखे हुए सज्जनों का स्मरण हुआ।

'तब हम दोनों बराबर हुए।'—अविनाश ने कहा।

'नहीं भाई, नौकरी न करने से कैसे चलेगा? तुम्हारा कार्य चल सकता है, मेरा नहीं!'

'क्यों?'

'तुम्हारे माँ-बाप पैसे वाले हैं।'

'माँ-बाप ने भी मुझको निकाल दिया है!'

रजनी और रमा दोनों स्तब्ध हो गये। रजनी की आँखों में सर्वदा नृत्य करता हुआ कटाक्ष अदृश्य हो गया। वह गम्भीर बन गया। एकाएक उसने कहा—'मेरे आए बिना तुम जाना मत। मैं सेठजी से मिल आऊँ।'

'सेठजी तुमको अब नौकर रखेंगे ही नहीं।'

'उन्होंने मुझको बुलाया है। एक रास्ता है, उसे मैं आजमा-

कर देखूँगा ।'—कहकर रजनी जल्दी से चला गया। कीका सेठ उसकी इन्तजारी करते थे । वह जब किसी आफत में फँसते थे, तब ठाकुरजी की तस्वीर की तरफ देखते थे और शेष समय में मोहिनी और रम्भा की तस्वीरों की ओर देखा करते थे। वह शायद ही कभी आफत में पड़ते । परन्तु कभी-कभी विकट प्रसंग भी आ जाता था। ठाकुरजी की उनपर दया थी। ठाकुरजी से थोड़ी प्रार्थना करने से ही प्रसंग की विकटता बदल जाती थी। आज भी वे ठाकुरजी की तस्वीर की तरफ अधिक ध्यान लगाए थे। कोठी में अपने बैठने की जगह पर सेठजी ने रजनी को बुलाया। सेठजी आज क्रोधित थे, इसका विश्वास रजनी को दरवान का चेहरा देखकर ही गया।

रजनी ने भीतर जाकर सेठजी को नमस्कार किया। सेठजी ने उत्तर नहीं दिया। परन्तु कड़ाई के साथ आज्ञा दी—'बैठो ! नीचे बैठो !'

गद्दी के नीचे बिछी हुई दरी पर रजनी बैठा।

'सबों को छोड़ कर तुमको—ग्रेजुएट को—नौकर रक्खा, उसका यह बदला दे रहे हो ?'

'कहिए ? सेवक से क्या कसूर हुआ ?'

'कसूर ? देखो जरा—फोड़ो आँख ! सारे संसार के सामने तुम मेरी फजीहत करना चाहते हो !'—कह कर सेठजी ने रजनी के हाथ में दो-चार अखबार रखे। रजनी समझ गया। अपराधी सेठजी को फजीहत अच्छी नहीं लगती थी। तीसरे पहर के निकले हुए पत्रों में सबेरे वाले अखबार की खबर उद्धृत

को गई थी। रजनी इस प्रकार पन्ने उलटने लगा मानों कुछ समझता ही न हो।

'इसमें से क्या निकालूँ?'—आखिर उसने पूछा।

'यह देखो।'—कह कर सेठजी ने एक वकील, एक सेठजी और एक अच्छे घर के लड़के वाला संवाद दिखाया।

रजनी ने ध्यानपूर्वक पढ़ा।

'साहब, इसे मैं क्या करूँ?'

'तुम्हीं ने सब किया है, नहीं तो अखबारों में यह खबर कैसे आती?'

'साहब, मैं भी गृहस्थ का लड़का हूँ। आप जानते हैं कि चुगली चपाटी से मैं दूर रहता हूँ। आपकी प्रशंसा भले ही की होगी, कभी किसी की निन्दा करते आप ने सुना है?'—रजनी को इस तरह की—ग्रेजुएटों को न आने वाली—बातें करना आ गया था।

'तब तुम्हारे बिना दूसरा कौन लिखेगा?'

'पुलिस ने खबर दी होगी।'

'यह हो ही नहीं सकता—थानेदार का मुँह मैंने कभी का बन्द कर दिया था।'

'पर इससे और आपसे क्या सम्बन्ध? आपका नाम नहीं है, निशान नहीं है, फिर आप क्यों चिन्ता करते हैं?'

'अरे, उस हबीब का काला मुँह! पुलिस में मनमानी बातें लिखा आया है। यद्यपि अब पलट जायगा। पर कल सबेरे अखबारों में नाम निकले तो?'

'वह मैं बन्द कर दूँगा ?'

'किस तरह से ?'

'दो चार पत्रों में कुछ खबरें दें, दो चार में आपके नाम से लेख छपावें—जरूरत पड़े तो पैसा देकर भी दो चार सौ का खून, और क्या ?'

'क्या लेख लिखें ?'

'इसमें कुछ नहीं है। यह देखिये—पद्मनाभ वकील का एक लेख छपा है। इसमें पतिताओं के लिये एक योजना लिखी है।'

'पतिता कौन है ! मैं नहीं जानता।'

'वेश्याएँ।'

'वाह, वाह !'—चुपके-चुपके इधर-उधर घूमकर मौज लेना और लेख लिखकर सत्यवादी बनना ! तुमने उसको खूब बचाया।'

'कब साहब ?'

'फिर अनजान बनते हो ? उस हबीब के हाथ से पिटते हुए उन्हें बचाया था न ?'

'आपको कैसे मालूम हुआ ?'

'मुझको सब मालूम है। मैं जानता हूँ कि तुम लोग दो आदमी थे।'

'बिलकुल ठीक, यदि हम लोग न होते तो आपके दोस्त अवश्य घायल हो जाते।'

'दोस्त ! दोस्त की तो बात ही जाने दो !'

'आप से पद्मनाभ ने कहा होगा ?'

'वह क्या कहेगा ? मैंने अपनी आँखों से देखा ! तुम लोग सलाह करके आये होगे !'

'मेरी कसम ! सामने ठाकुरजी की तस्वीर है ! मैं सच कहता हूँ कि हमको कुछ भी खबर नहीं थी। उस दिन आप के यहाँ जो गाना सुना था, उसकी खुमारी बाकी थी। इसलिये गाना सुनने गये थे।'

अत्यन्त नम्रता और बुद्धिमानी के साथ रजनी ने सेठजी के दिमाग में यह भर दिया कि पद्मनाभ का जो बचाव हुआ, वह केवल संयोगमात्र था। अगर सेठजी की इच्छा मालूम होती तो ऐसे पद्मनाभ का वध होने पर भी, यह ग्रेजुएट सेवक कुछ न बोलता।

सेठजी ने चाँदी के प्याले में चाय पी। इतने में रजनी ने अखबार के लायक एक लेख लिख दिया। उसमें पद्मनाभ की योजना का सेठजी की तरफ से अनुमोदन किया गया था। इतना ही नहीं; बल्कि आर्थिक सहायता देने का भी वचन दिया गया था। पत्रकारों का मुँह बन्द करने के लिये रजनी ने सेठजी से कुछ 'कलदार' भी हस्तगत किया और अगर सेठजी की कुछ बदनामी हो तो अपने ऊपर सब दोष ले लेने के लिये भी तैयार हुआ।

सेठजी ने उसको फिर नौकरी में रख लिया। तुरन्त पत्रकारों को दबा देने के लिए, और पत्रों में सेठजी की सच्चाई गाने के लिये रजनी उपयुक्त था। यद्यपि वह अनजान बनने का सफल प्रयत्न करता था, फिर भी सेठजी को भय मालूम हुआ

कि अगर यह नौकरी में फँसा नहीं रहेगा; तो इससे भी ज्यादा भयंकर निकलेगा।

अमीरों से जितना हो सके उतनी चालाकी दिखाना यही बुद्धिमानी है। रजनी की धारणा ऐसी ही थी। अविनाश का क्या होगा? इसकी बहुत बड़ी चिन्ता, ऊपर से प्रसन्न दिखलाई देते हुए मित्र के हृदय में थी। माँ-बाप के द्वारा तिरस्कृत अविनाश को रजनी के घर के अतिरिक्त संसार में एक क्षण के लिये भी ठहरने के लिये कहीं स्थान नहीं था—अविनाश जैसे सुख में पले हुए युवक को एक दो सप्ताह अपने घर रखना पड़े तो पैसे कहाँ से लाऊँगा इसकी बहुत बड़ी चिन्ता रजनी को हो रही थी। सेठजी के यहाँ लापरवाही से जाते हुए रजनी ने डरा धमका कर नौकरी में फिर से दाखिल होने की योजना को एक तरफ रख, उनको खुश करके पत्रकारों को देने के लिये उसने रुपया अपने हाथ में कर लिया।

'तस्वीर निकलेगी या नहीं? लेख निकले और लेखक का चित्र न रहे, इससे लोगों के मन में असंतोष रह जाता है'—ऐसा न हो इसलिये सेठजी ने अपना चित्र देने की सूचना दी।

'जरूर निकलेगी। आपका ब्लाक अखबार वालों के यहाँ है।'—कह कर रजनी चलने के लिये तैयार हुआ।

'कल की भी हाजरी लिखा देना।'—सेठजी ने कहा।

'नहीं साहब, बिना हाजिरी के मैं हाजिरी नहीं लिखाऊँगा। आपका अनुग्रह भर होना चाहिये।'—कह कर सचाई प्रकट करने की चेष्टा करता हुआ रजनी वहाँ से उठकर पत्रकारों के

यहाँ गया। अपने पत्रकार मित्र को समझा कर उसको साथ ले उसके परिचित पत्रकार और पत्रों के मालिकों से मिल, सेठजी का चित्र, उनका पतितोद्धार सम्बन्धी लेख और व्यापार-विषयक झूठी-सच्ची खबरों के लिये कुछ रुपया देकर; एक महीने तक सेठजी की जरा भी बदनामी न हो, ऐसी व्यवस्था की। एक महीने के भीतर पुलिसवाले ठीक हो जायँगे, ऐसी रजनी की धारणा थी।

यह सब काम करने में रात हो गई। रजनी थक गया था। परन्तु अविनाश के यहाँ अनेक दिवस सुखपूर्वक बिताने का बदला आज चुकाया जा सकेगा, इस विचार ने उसके मन को प्रफुल्लित बना दिया था। रजनी के माँ-बाप गरीब थे। लेकिन उनका स्वभाव गरीब नहीं था। रजनी के स्वभाव में भी गरीबी ने प्रवेश नहीं किया था। वह धनिक विद्यार्थियों के साथ बराबरी के दावे के साथ रहता था। अविनाश के साथ हुई मित्रता में भी उसने बराबरी दिखाई थी। अविनाश को भी अमीर होने का गर्व नहीं था। इसलिये दोनों में पट गई। अविनाश के माता-पिता को भी अविनाश के इस मित्र के प्रति सद्भाव था और घर के एक लड़के की तरह उसको मानते थे। यद्यपि रजनी पढ़ने के समय अलग कोठरी लेकर रहता था, फिर भी अविनाश और उसके माता-पिता के आग्रह के कारण कभी-कभी वह अविनाश के यहाँ रह जाता था। कीका सेठ के यहाँ मिली हुई नौकरी में भी सुमंतराय की कोशिश थी। गरीबी को जगत में कितने धक्के सहने पड़ते हैं! काटाक्षवृत्ति, विनोद

वृत्ति के बिना गरीब को जीना असह्य हो जाता है। रजनी में स्वाभाविकता के साथ यह वृत्ति खिल उठी थी। उसकी टीकाओं में मर्म और सत्य देख कर अविनाश उसके प्रति आकर्षित रहता था। घर आने के साथ ही रजनी ने रमा से पूछा—'अविनाश कहाँ है?'

'वह तो तुम्हारा आसरा देख कर चले गये।'

'उसको जाने क्यों दिया?'

'मैंने तो बहुत मना किया था।'

'वापस आवेगा?'

'यह तो कुछ कह नहीं गये हैं।'

'वह रहेगा कहाँ? मुझे फिर उसकी खोज में जाना पड़ेगा।'

'सचमुच वह घर नहीं जायँगे।'

'तुमसे क्या कहा?'

'अपने घर में पैर रखने का भी उनका विचार नहीं है।'

'क्यों?'

'बाप ने निकाल दिया है!'

'तुमको कैसे मालूम?'

'उन्होंने मुझसे सब बातें कही थीं, अब क्या होगा?'

'तुमसे क्या बात कही?'

रमा ने अविनाश से सुनी हुई सब बातें कह सुनाईं।

२५

जैसे पद्मनाभ और कोका सेठ पर पुलिस का हमला हुआ था, वैसे ही अविनाश पर भी हमला हो तो इसमें कुछ नवीनता नहीं है। क्योंकि अविनाश के पिता सुमंतराय भी पैसे वाले थे। अविनाश मार-पीट करते हुए पकड़ा गया था, ऐसा जब उनसे कहा गया, तब उन्होंने यह बात बिलकुल नहीं मानी।

'आप भ्रम में हैं—मेरा लड़का मार-पीट कर ही नहीं सकता!'—उन्होंने थानेदार से कहा।

'उसके हस्ताक्षर वाला यह बयान देखिये।'

अविनाश का हस्ताक्षर देखते ही सुमंतराय चौंक पड़े। उन्होंने कुछ उत्तर न देकर पूछा—'पर उसने किसलिये मार-पीट की?'

'हो जाता है साहब! जवान है। ऐसी सोहबत में पड़ जाने से यह सब हो जाता है। उसके बचाव का कोई रास्ता नहीं है; यह आप न सोचिए।'

'आप क्या कहना चाहते हैं? ऐसी सोहबत के माने क्या? सुमंतराय को अपने पुत्र पर पूरा विश्वास था। वह स्त्रियों के सम्बन्ध में कभी विचार भी नहीं करता था। विवाह की बात चलने पर इन्कार करने वाला शान्त और आज्ञाकारी पुत्र, विलायत हो आने पर भी सिगरेट तक नहीं पीता था। उसकी सोहबत पर कोई टीका करे यह पिता से सहन नहीं हो सकता था। वह

एक वेश्या के दरबान के साथ मार-पीट करते हुए पकड़ा गया, यह सुन कर सुमंतराय को आश्चर्य हुआ।

उसके विवाह की तैयारी हो रही थी। इस बीच में वह यदि ऐसा काम करेगा तो विवाह होना कठिन हो जायगा—सुमंतराय भयभीत हो गये। फिर भी इस बात को सत्य न मानते हुए उन्होंने लड़के को बुलाया। अविनाश आया, उसने थानेदार को पहचान लिया।

'तुम थानेदार साहब को पहचानते हो?'

'जी हाँ।'—थानेदार के मुँह पर हँसी थी।

'तुम कैसे पहचानते हो?'

'परसों रात को मैं इनसे मिला था।'

'कहाँ?'

'थाने पर।'

'किसलिये?'

'मुझसे एक आदमी से तकरार हो गई थी।'

'तुम से? तुमको क्यों तकरार करनी पड़ी?'

'अपने को और अपने एक परिचित को खंजर के घाव से बचाने के लिये।'

'ऐसा कौन-सा परिचित था?'

'नाम जानने से क्या फायदा?'

सुमंतराय का गुस्सा इस अद्भुत बात-चीत से बढ़ता जा रहा था। वह अविनाश की विचित्रताओं को जानते थे। विचित्र सत्य बोलकर सबको कठिनाई में डाल देने की उसकी पुरानी

आदत को सभी जानते थे। खाने-पीने से सुखी परिवार को सत्य बोलने की सुविधा रहती ही है। इसलिये अविनाश की यह आदत सबको हँसी उत्पन्न करती थी। आज वही आदत पिता को क्रोध चढ़ा रही थी।

'कहाँ पर तकरार हुई थी ?'

'एक वेश्या के दरवाजे पर।'

'हरामखोर! बोलते शर्म भी नहीं आती ?'—सुमंतराय अब अपने क्रोध को नहीं रोक सके। उन्होंने अविनाश पर शासन रखने की चेष्टा कभी नहीं की थी। शासन करने का अविनाश ने कभी मौका भी नहीं दिया था। फिर भी वे नीतिवान् थे। उनके चरित्र में एक भी धब्बा नहीं लगा था। उनको इसका अभिमान भी था। जो शब्द सभ्य मनुष्यों के सामने बोला भी नहीं जा सकता, वहीं शब्द 'बड़ों' के सामने बिना किसी संकोच के कहा जाय, यह 'बड़ों' के लिये असह्य था।

'मैंने शर्माने लायक कुछ किया ही नहीं है ?'—दृढ़ता से, पर विनय के साथ अविनाश ने उत्तर दिया।

'वहाँ क्यों गये थे ?'

'मुझको कहाँ जाना चाहिये, और कहाँ नहीं जाना चाहिये, वह अब मैं समझ सकता हूँ! यह मेरी इच्छा की बात है।'

अविनाश विनयशील था, परन्तु जिद्दी था—यह सुमंतराय जानते थे। आज पर्यन्त उस जिद्द का पालन भी हो रहा था। लेकिन नीति का प्रश्न आने पर सुमंतराय अपने लड़के की भी परवाह करें ऐसे नहीं थे।

'मेरे घर में रहना हो तो मेरे इच्छानुसार चलना पड़ेगा ! अपने इच्छानुसार नहीं ।'

'ठीक है ।'—कह कर अविनाश अपने कमरे में गया और सादे कपड़े पहन कर बाहर जाने लगा। उसकी माँ यह सब बातचीत सुन रही थीं। उन्होंने पूछा—इस समय कहाँ जा रहे हो ?'

'बाहर ।'

'नहीं जाना है—भोजन करके जाना ।

'मुझको जरूरी काम है ।'

'तब भी नहीं ।'—माँ को भय मालूम हुआ । पति और पुत्र के स्वभाव को वह पहचानती थी ।

लड़के की अनीति का विचार कर क्रोधित सुमंतराय को कुछ कहना असंभव था। लड़का चला जाय इसको भी उनको परवाह नहीं थी । लड़का घर से जाने के लिये तैयार है, यह माँ समझ गई । लड़के को जाने देने की माँ को इच्छा नहीं थी ।

अविनाश मुश्किल में पड़ गया। वह एक क्षण भी घर में रहना नहीं चाहता था। परन्तु माँ उसका उद्देश्य जान गई थी । क्या करना चाहिए ? अविनाश सोचने लगा। उसको एक विचित्र सहायता मिल गई। एक आदमी ने आकर उसके हाथ में तार रखा ।

'खुला हुआ है—कहाँ से लाये हो ?'

'वकील साहब के यहाँ से—आपको अभी बुलाते हैं ।'

'माँ ! तुम चिन्ता मत करो। मुझे पद्मनाभ के यहाँ जाना है।'

'यह तार कैसा है ?'—माता ने अविनाश से पूछा।

'फिर कहूँगा।'—इतना कह—माँ की आज्ञा मिल गई है, यह मानकर—वह चला गया। थानेदार भी इसी समय घर के बाहर निकले।

पद्मनाभ ने अपनी एकान्त कोठरी में अविनाश के साथ मंत्रणा की। रजनी और अविनाश ने जो उसको छूरे की मार से बचाया था, उसके लिये दोनों का उपकार माना। परन्तु ऐसी जगहों की भयंकरता का वर्णन करके, उसके जैसे युवकों का ऐसी जगहों में न जाना चाहिये ऐसी सलाह दी। नीति, स्वास्थ्य और प्रतिष्ठा का ख्याल करके अविनाश को यह मार्ग तुरन्त छोड़ देना चाहिये। पद्मनाभ जैसे मध्य वय के, संसार का यथार्थ निरीक्षण कर चुके हुए, समाज-सेवकों के लिये ही यह ठीक है। उनका उद्देश्य केवल पतिताओं की परिस्थिति का अध्ययन करना और उनके उद्धार का मार्ग खोज निकालना ही होता है। लेकिन नौजवानों को अपनी लालसा रोकना कठिन होता है। इतना ही नहीं, उनकी प्रतिष्ठा पर दाग लग जाने से सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जाता है। ऐसे-ऐसे उपदेश दे और अपनी समाज-सेवा-सम्बन्धी तत्परता के व्याख्यान के अन्त में उसने पूछा—'तुमने तार तो देख लिया न ?'

'हाँ।'

'तुम कितने दिनों से ऐसी जगहों में जाते हो ?'

'थोड़े दिनों से।'

'किसी विद्वेषी ने तुम्हारे विरुद्ध आक्षेप किये। बीच में मुझसे कालेजवालों ने पूछा था, लेकिन मैंने अस्वीकार किया और तुमको चेतावनी भी नहीं दी। इसीलिये तुम्हारी नौकरी चली गई।'

'आपने चेतावनी दी भी होती; तब भी मैं वहाँ जाता ही।'

पद्मनाभ चौंका। उसने जो-जो उपदेश दिये उसके लिये कुछ भी न कहने वाला यह युवक ऐसा कहता है, इसका कारण उसकी समझ में नहीं आया।

'अर्थात् तुम चाहे जहाँ जाओ—आओ; तब भी कोई तुमसे कुछ न पूछे ?'

'पूछने की जरूरत ?'

'संसार में चरित्र-शुद्धि की पहले आवश्यकता है।'

चरित्रहीन लोगों को भी इसकी आवश्यकता अनुभव होती है। यद्यपि पद्मनाभ अपना चरित्र अशुद्ध है, यह नहीं मानता था। न यही चाहता था कि कोई ऐसा समझे।

अविनाश को इस नैतिक घमंड पर घृणा उत्पन्न हुई। पद्मनाभ क्या करता था ? क्या चाहता था ? किसलिये पतिताओं के निवास-स्थान में घूमता था ? यह अविनाश को मालूम था। मनुष्य को गलती करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये—अभी तक वह पद्मनाभ को क्षमा कर देने के लिये तैयार था। लेकिन जब पद्मनाभ ने अपने हृदय पर परदा डाल कर अविनाश को उपदेश देना शुरू किया, तब उसके घमंड पर तिरस्कार उत्पन्न हो, इसमें

नवीनता नहीं थी। उसने पद्मनाभ को आश्चर्य में डालने का निश्चय किया। कभी-कभी सच्ची बात गोली जैसी लगती है।

'मैं चाहे जहाँ जाऊँ, तब भी मेरे चरित्र में कुछ अशुद्धि नहीं आ सकती—इतना ही नहीं, मैं एक वेश्या के साथ विवाह कर लूँ, तभी समाज का कुछ प्रायश्चित्त हो सकेगा।'—अविनाश ने कहा।

'क्या ? ? ?'—पतिताओं के लिये व्याख्यान देने को तैयार समाज-सेवक, उद्धार के एक मार्ग को सुन कर चौंक उठा।

'राजेश्वरी के साथ विवाह करूँ या नहीं—यही मैं सोच रहा हूँ।'

पद्मनाभ की आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। पतिताओं के घर जाने में कुछ हर्ज नहीं है—हर्ज केवल उनको अपने घर लाने में है! उनके साथ बिना झंझट का, गृह-व्यवहार भी रक्खा जा सकता है। केवल समाज जिसको स्वीकार करता है, वह व्यवहार, सीधा, सरल, जिम्मेदारी वाला व्यवहार ही नहीं रखा जा सकता।

'उसका तो निश्चित विचार है—केवल मेरी ही समस्या है।'—अविनाश ने आगे प्रकट किया।

'क्या ?'—पद्मनाभ की जीभ ने यंत्रवत् उच्चारण किया।

'मैं तो विवाह के सिद्धान्त को ही नहीं मानता।'—पद्मनाभ को और भी आश्चर्य हुआ।

'तुम इस तरह से बोलोगे तो तुमको दुनियाँ में जरा भी

सफलता नहीं मिलेगी और तुम अपने पिता को कितना नाराज करोगे, यह तुम जानते हो ?'

'पिता को नाराज करके ही आ रहा हूँ।'

पद्मनाभ ने थोड़ा विचार किया और फिर पूछा—'देखो, यह नौकरी तो गई, अब क्या करोगे ?'

'कुछ भी नहीं, विवाह करूँ या नहीं—यही सोच रहा हूँ।'

'तुम्हारा विवाह तो होने ही वाला है।'

'वह नहीं, राजेश्वरी के साथ !'

पद्मनाभ ने अविनाश को बहुत समझाया, लेकिन शान्ति-पूर्वक सब सुन लेने पर भी उसने कुछ माना नहीं।

'अ-ह ! समाज में यह कैसा आडम्बर व्याप्त हो गया है !'—उसके हृदय में प्रत्येक समय यही विचार उठते थे।

पद्मनाभ अविनाश को लेकर सुमंतराय के पास जाने के लिये तैयार हुआ। परन्तु अविनाश ने अस्वीकार किया। पद्मनाभ ने सोचा कि थोड़ी देर ठहर कर समझाने से यह समझ जायगा। उसने दरवाजा खोला—साथ ही दुर्गावती दरवाजे की आड़ से बाहर निकल आई।

'तुम कहाँ से ?'—पद्मनाभ ने पूछा !

'यों ही, मेरे मन में आया कि थोड़ा चलूँ फिरूँ—डाक्टर ने कहा है न !'—दुर्गावती ने उत्तर दिया।

बीमार दुर्गावती को डाक्टर रोज घूमने के लिये कहते थे। लेकिन घर में पति के कमरे के दरवाजे तक ही घूमना चाहिए,

ऐसा नहीं कहा था। फिर भी इतने दिनों के बाद पति की उपस्थिति में वह इतना घूमी, यह प्रसन्नता की बात है।

अक्सर दरवाजों में झरी रहती है। बन्द करने पर भी हवा और प्रकाश भीतर पहुँचाता रहता है। और जहाँ हवा जाती है वहाँ ध्वनि जाती है। और जहाँ प्रकाश जाता है वहाँ दृष्टि पहुँचती है। गृहव्यवस्था में बन्द दरवाजे पर खड़े होने का अनेक प्रसंग आता है। तीक्ष्ण श्रवण और सूक्ष्म दृष्टि कोठरी के बाहर रहकर भी कोठरी का इतिहास देख और सुन सकती है। इससे अनेक न सुनी और न देखी हुई बातें मालूम हो जाती हैं। दुर्गावती भी इस कार्य में निपुण थीं। वह अधिकतर ऐसा गुप्त ज्ञान इसी तरह से जान जाती थीं। आज संयोग से वह पकड़ी गईं।

उनको प्रत्येक समय यह संदेह रहता था कि पद्मनाभ के बगल में कोई स्त्री छिपी हुई है—या वह किसी स्त्री को बगलगीर करने की तजवीज के अलावा और कुछ करता ही नहीं।

'अच्छा किया।'—कह कर पद्मनाभ आगे बढ़ा। जैसे दुर्गावती की उपस्थिति को वह सह न सकता हो।

'अविनाश!'—दरवाजे को पकड़ कर खड़ी हुई दुर्गावती ने दरवाजे पर देह ढुलका कर आवाज दी। अविनाश ने पीछे फिर-कर देखा—पद्मनाभ चला गया। दुर्गावती ने यह देखकर निश्वास छोड़ा।

'जी!'—अविनाश ने उत्तर दिया।

'जरा हाथ पकड़ लो—मैं गिर जाऊँगी।'—सर्वदा बीमार

रहती हुई दुर्गावती को किसी को देखकर गिर जाने जैसी कम-जोरी आ जाती थी। मुश्किल से दो चार कदम चल कर उन्होंने पूछा—'अविनाश क्या बात है?'

'कुछ भी नहीं।'

'इतनी देर तक तो तुम लोग भीतर बैठे रहे।'

अविनाश को गुस्सा चढ़ आया। पति का पग-पग पर अवि-श्वास करनेवाली पत्नी को और भी ज्यादा दुखी करना चाहिये। लेकिन उसे याद आया कि दुर्गावती अपने दुख में सुख मानती हैं। पद्मनाभ के विरुद्ध बातें सुनने के लिये दुर्गावती तड़पा करती हैं—वह बातें सुन कर दुखी होतीं—साथ ही पद्मनाभ और घर के सब लोगों को दुखी करतीं—उन्हें उसी में आनन्द प्राप्त होता था। अखबारों में आया हुआ 'वकील' पद्मनाभ ही होगा, ऐसा उनका विश्वास था। यद्यपि सारे शहर में चर्चा चलते रहने पर भी पद्मनाभ पर किसी को संदेह नहीं था। अविनाश के साथ पद्मनाभ को बहुत देर तक बन्द कोठरी में बातें करते देख कर दुर्गावती की धारणा और भी दृढ़ हो गई। 'अच्छे घर के लड़के' के रूप में अविनाश पहचान लिया गया। प्रसिद्ध सेठ कौन हैं, यह अब अपने आप मालूम हो जायगा। दुर्गावती 'तीन' में से 'दो' भाग की खोज को दृढ़ बनाने के लिये दरवाजे के पीछे खड़ी थी।

'वह तो मुझे उपदेश दे रहे थे।'—अविनाश ने उत्तर दिया।

'कैसा उपदेश? कुछ विवाह की बात कहते थे न?'—

उनकी मौजूदगी में पद्मनाभ दूसरा विवाह नहीं कर सकता, यह महा संतोष दुर्गावती को प्रतिदिन बीमार रहने पर भी दीर्घायुष्य दे रहा था।

'हाँ, मेरे विवाह की बात थी।'

'दूसरे के विवाह में उनको क्या करना है?'

'उनका कहना है कि मुझे विवाह कर लेना चाहिये।'

'तुम्हारा विवाह तो होने ही वाला है न? फिर इसमें कहने की बात क्या है?'

'मैं अस्वीकार करता हूँ।'

'क्यों?'

'मैं विवाह के विरुद्ध हूँ।'

'निरूपमा अच्छी नहीं है?'—दुर्गावती को जब अवकाश मिलता, तब वह अपने कष्टों के अलावा दूसरों के कष्टों का भी विचार करतीं।

'अच्छी है या नहीं यह प्रश्न दूसरा है। संसार में किसी को विवाह ही नहीं करना चाहिये।'

'पागल हो गये हो क्या? यह कैसे हो सकता है?'

'सम्पूर्ण जीवन दुख भोगने को मैं तैयार नहीं हूँ। मैं तो जब इच्छा करूँ, तभी विवाह विच्छेद कर सकूँ—ऐसा चाहता हूँ।'

'ऐसा भी कहीं होता है?'—कह कर दुर्गावती हँसी। हँसना यह उनके जीवन में ऐतिहासिक घटना थी। विवाह-विच्छेद और विवाह के बाहर के सम्बन्ध में विवाहित मनुष्य

को हँसी आती ही है। दुर्गावती का रूखा चेहरा ऐसा न था कि उसे देर तक देखने की इच्छा हो—फिर भी अविनाश को मालूम हुआ कि दुर्गावती की दंतावली बहुत सुन्दर है। हँसते हँसते वह पलँग पर लेट गई। उन्होंने पूछा—'फिर तुमने क्या निश्चय किया?'

'विवाह तो नहीं ही करना।'

'अगर जबरदस्ती विवाह करना चाहें तो?'

'तो मैं एक गणिका के साथ विवाह करूँगा!'

२६

दुर्गावती इस प्रकार चौंक उठी मानो गोली लगी हो। आवारे मनुष्य भी ऐसी बातें नहीं कहते। अपने ही कष्ट में आठों पहर लीन रहने वाली दुर्गावती को दूसरे के जीवन में कुछ रस मालूम हुआ। न गिरफ्तार होते हुए पति के बदले, अपना अपराध स्वीकार करने वाले एक दुखी युवक के विचार जानने योग्य मालूम हुए।

'बिना समझे बूझे क्या बोलते हो?'—गणिका शब्द से भय, घृणा और लज्जा तीनों उनके हृदय में उत्पन्न हुईं।

'मैंने पद्मनाभ को सब समझा दिया है।'

'इज्जत का भी कुछ ख्याल है या नहीं?'

'जरा भी नहीं—सम्मान तो केवल आवरण है—वह भले ही हट जाय और सत्य प्रकट हो जाय।'

कभी-कभी बेहया स्त्री-पुरुष भी आकर्षक मालूम होते हैं। अविनाश की बेहयाई दुर्गावती को विचित्र मालूम हुई। शान्त, विवेकी और विनयी युवक ऐसी बातें किस तरह से कहता है, इसका विचार करते हुए दुर्गावती बोलीं—'पर इस प्रकार कोई विवाह करने के लिये तैयार हो सकता है ?'

'जी हाँ, एक गणिका तैयार है ?'

दुर्गावती का हृदय हिल उठा। यह कैसी बात ? जिसका नाम लेना भी पाप है, उससे अविनाश विवाह करना चाहता है ! यह बेहयाई है या सत्य ? वह कुछ विचार में पड़ गईं। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। बड़ी और तेजस्वी आँखों की चमक दूर हो जाने से अविनाश उनके मुँह की तरफ देखता रहा। उग्र आँखों के कारण उग्र बन जाता हुआ मुँह; आँखें बन्द होने पर सौम्य मालूम हुआ। उसने ध्यान से दुर्गावती का मुँह देखा। उसे मालूम हुआ कि मुख की कितनी ही रेखाएँ सुन्दर हैं।

मुख की तरफ देखने वाले को अन्तरात्मा पकड़ लेती है। दुर्गावती ने आँखें खोल दीं। अविनाश ने आँखें नीची कर लीं। साथ ही उसने पूछा—'दुर्गा बहन आपकी फोटो नहीं है ?'

'देखो—वह है।'—एक सूखी डरावनी और लम्बी स्त्री की रंग-बिरंगी बड़ी-सी तस्वीर टँगी थी।

'आपकी छोटेपन की तस्वीर नहीं है ?'

'है, देखो इधर की दीवाल पर टँगी है।'—अविनाश ने देखा—दुर्गावती से उसका जरा भी साम्य नहीं था। एक सुन्दर, सहज उम्र, लेकिन भरे हुए मुखवाली एक किशोरी की तस्वीर थी।

'यह आपकी तस्वीर है?'

'हाँ।'—जरा हँस कर दुर्गावती ने कहा।

'वास्तव में—आप इसमें बहुत सुन्दर मालूम होती हैं!'—सुन्दर कहलाना सभी स्त्रियों को अच्छा लगता है—प्रौढ़ावस्था तक तो जरूर ही। दुर्गावती को इतना बड़ा लड़का सुन्दर कहे, यह जरा विचित्र तो मालूम हुआ, लेकिन एकदम अच्छा नहीं लगा, यह नहीं कहा जा सकता। उन्होंने एक निश्वास छोड़ कर कहा—'रूप और रंग! कुछ भी इस बीमारी ने रहने नहीं दिया!'

'मेरा एक मित्र है—रजनी, वह सभी बीमारियों के लिये एक ही दवा बतलाता है।'

'कौन सी?'—दवा का नाम सुनकर दुर्गावती को सभी बीमारियों ने आ घेरा।

'हँसना!'

'क्या?'

'चाहे जो हो—फिर भी हँसना और आनन्द से रहना!'

'हँसूँ तो क्या अपना सिर?'

ऐसा कहते हुए भी आज उनको बार-बार हँसी आ रही थी। साहस सबको विस्मय में डाल देता है। अविनाश ने अपनी

सब बातें दुर्गावती से कहीं। उसे उन्होंने एक अद्भुत कहानी की तरह सुनी। दुर्गावती के मन में एक पतिता के लिये दया उत्पन्न करने में अविनाश समर्थ हुआ। केवल दया ही नहीं; बल्कि उनको उसमें रस आने लगा। यद्यपि अविनाश के विचारों से वह सहमत नहीं हुई; फिर भी अविनाश के भविष्य के लिये वह सोचने वाली बन गई। अविनाश के चले जाने पर उन्होंने पद्मनाभ को बुलाया। सकुचाते हुए पद्मनाभ आया। लेकिन दुर्गावती के मुख पर कभी न देखी हुई स्फूर्ति देखी! वहम और क्लेश से विकराल बनते हुए मुख पर कुछ नई ही रेखाएँ दिखाई दीं।

'अविनाश का सब हाल सुना न?'—दुर्गावती ने कहा। अपने दुख-दर्द और पति की हरकतों के सिवाय दूसरे की बात आज बहुत दिनों पर हुई। नया वातावरण पद्मनाभ को भी जरा उत्तेजक लगा। बहुत वर्षों पर आज उसने पत्नी से मजाक किया।

'आज तुम अविनाश, अविनाश क्यों कर रही हो?'

'देखो न—उसने कैसी रचना की है? कैसा विचित्र लड़का है?'—दुर्गावती ने हँस कर कहा।

'देखना, कहीं तुमको उठा न ले जाय! बहुत पास मत बुलाना!'—प्रफुल्ल बनते हुए पद्मनाभ ने पत्नी को चेतावनी दी। इस चेतावनी में पद्मनाभ के प्रति दुर्गावती के व्यवहार की टीका भी समाई हुई थी। कोई दूसरा समय होता तो ऐसी टीका सुनकर दुर्गावती जहर खाने के लिये तैयार होतीं—वास्तव में

जहर खाती या नहीं यह प्रश्न दूसरा है—और पद्मनाभ ऐसा मजाक भी नहीं कर सकता था—क्यों कि दुर्गावती को कोई उठा ले जाता; तब भी पद्मनाभ में उनकी खोज करने का उत्साह होता या नहीं यह प्रश्न भी दूसरा है। लेकिन इस टीका ने दुर्गावती में एक नवीन भावना उत्पन्न की। पलँग पर बैठे हुए पति का हाथ अपने हाथ में लेकर दुर्गावती ने दबाया और बोलीं—'क्या बकबक करते हो?'

दुर्गावती की आँखें मृदु बन गईं। और उनके चेहरे पर लज्जा की लालिमा दौड़ गई। अमावस की रात्रि में ऊषा का उदय हुआ। प्रेम का अभिनय कितनी अवस्था तक हो सकता है—इस विषय में अनेक लोगों को जिज्ञासा हो सकती है। जिज्ञासु अपनी बढ़ती हुई अवस्था का अन्वेषण करते रहें, तो वास्तविक उत्तर मिल जायगा। प्रौढ़ावस्था में अगोचर बन जाती हुई प्रेम चेष्टा अदृश्य हो जाती है, युवक और युवतियों को इसके लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

पद्मनाभ ने अपने जीवन की पवित्रता को दुर्गावती के मन पर बैठाने की चेष्टा की। अनाथ स्त्रियों, विधवाओं तथा पतिताओं की दुखद अवस्था का हृदय-भेदक वर्णन कर उनके लिये उसने कितना कष्ट उठाया है, यह समझाया। स्वार्थी मनुष्य ने दुर्गावती के मानस को अपनी तरफ आकृष्ट करने का भी प्रयत्न किया। उसने कहा—'स्त्री-उद्धार के प्रयत्न में मैंने एक बहुत बड़ा बलिदान दिया है!'

'कौन सा?'

'तुम्हारे प्रेम का!'

'तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम नहीं है—क्यों ?'—दुर्गावती को बुरा लगा। वह पतिव्रता थी। पति के अतिरिक्त उनको दूसरा कोई विचार नहीं आता था। लेकिन पति की प्रिय-पात्र के बदले वह पति के लिये बेड़ी बन गई थीं। इसलिये उनका पातिव्रत दोनों के लिये दुखदाई बन गया था।

'प्रेम है—पर उसमें संदेह बहुत है !'

'संदेह का काम करते हो—फिर मेरा क्या दोष है ?'

'ऐसा मैंने कौन-सा कार्य किया है ?'

'औरतों को ले लेकर घूमते हो, यह मुझे अच्छा लगता है ?'

'लेकिन तुमको यह भी तो देखना चाहिये कि सभी औरतें तुमसे कम सुन्दर थीं ! जिसकी पत्नी सुन्दर हो; उसे दूसरी तरफ देखने की क्या आवश्यकता है ?'—यह दलील सच्ची है या झूठी, इसका निर्णय कठिन है। फिर भी अनेक झगड़ों को शान्त करने में यह अमूल्य औषधि का काम करती है।

दुर्गावती की अनेक बीमारियाँ आज गायब हो गईं। दार्शनिकों का कहना है कि संकल्प से ही सब चीजों की उत्पत्ति है। संकल्प बदलने से यदि दुर्गावती की बीमारियाँ अदृश्य हो जायँ तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ! दुर्गावती बातें करते-करते उठकर बैठ गईं। इतना ही नहीं, वह अपने आप उठ कर एक बड़े दर्पण के सामने जाकर खड़ी हुईं।

'कहाँ जाती हो ?'—पद्मनाभ ने पूछा।

'जरा बाल ठीक करूँ, बहुत उलझ गये हैं।'

'दाई नहीं है ?'

'दूसरों के हाथ से क्या ठीक होगा ? मैं क्या करूँ, मेरा तो शरीर ही ठीक नहीं रहता ।'

'तुम्हारे बाल भी तो बहुत बड़े हैं—कमजोर शरीर में कष्ट होगा ही !'

वास्तव में पद्मनाभ द्वारा की हुई प्रशंसा सत्य थी । दुर्गावती के बाल बहुत लम्बे थे । दर्पण ने दिखला दिया कि यदि सेवा की जाय तो उनके बाल घुटनों तक आ सकते हैं । दर्पण की उदारता भी अपार होती है । कुरूप मनुष्य भी दर्पण के सामने खड़ा हो तो उतनी देर के लिये उसका असंतोष जाता रहता है । दुर्गावती ने अपने मुख में सौन्दर्य रेखाएँ देखीं । उनको अपना यौवन काल याद आया । बीमारी की कल्पना और पद्मनाभ पर पहरा देने के पहले वह एक सुन्दरी युवती समझी जाती थीं ।

बीमारी ने सब सौन्दर्य नष्ट कर दिया । उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ—यद्यपि दर्पण ने उनको साहस प्रदान किया । नष्ट होता हुआ सौन्दर्य ठीक हो सकेगा । उनके मन में विचार उठा । अविनाश का विचार और सौन्दर्य की चिन्ता ये दो तत्त्व उनको बीमारी के साथ युद्ध करने लगे । पद्मनाभ के प्रति अविश्वास जरा देर के लिये भूल गया । बहुत दिनों के बाद उनको तीसरे पहर तक स्वप्न-रहित निद्रा आई ।

जागने के साथ ही उन्होंने मुख धोया, बाल ठीक किए, अपनी पुरानी तस्वीर देखी और अविनाश तथा गणिका की कथा का स्मरण किया । 'अरेबियन नाइट्स' या कथा-सरित्सागर की

कहानियों का-सा अद्भुत रस, इन जीवित मनुष्यों की कथा में उनको मिला।

'वह कैसी होगी ?'—उनके मन में विचार उठा। मन में भी गणिका शब्द का उच्चारण करने से पाप लगेगा, ऐसी लोगों की धारणा है।

'अविनाश से और उससे परिचय कैसे हुआ ?'—कथा का शेष अंश जानने की उनकी इच्छा हुई।

'अविनाश आवेगा तब पूछ लूँगी।'

लेकिन शाम होने पर भी अविनाश नहीं आया। इतना ही नहीं पद्मनाभ का भी पता नहीं था।

'यही खराबी है ! मेरा मुख ही अच्छा नहीं लगता !'—पुरानी आदत के अनुसार दुर्गावती बड़बड़ाने लगीं। लेकिन अपने बाल और सुन्दरता की आज प्रशंसा हुई थी, यह वह भूल नहीं सकीं।

'होगी कोई स्त्रियों की सभा !—दुर्गावती ने विचार किया। लेकिन आज के विचार में पति द्वारा किये गये बलिदान का विचार भी सम्मिलित था।

'मेरी जैसी सुन्दर स्त्री को एक तरफ रख कर, वह स्त्री-उद्धार का प्रयत्न करते हैं !'

दुर्गावती के हृदय में पति के लिये सम्मान उत्पन्न हुआ। यद्यपि पद्मनाभ तो सर्वदा बीमारी और क्लेश से कुरूप बनती हुई पत्नी के पास से भागने का ही प्रयत्न किया करता था।

और वास्तव में दुर्गावती की धारणा के अनुसार ही वस्तु-

स्थिति थी। स्त्रियों की तो नहीं, पर उन्हीं के सम्बन्ध की एक सभा में पद्मनाभ गया था। सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक सभा करनी थी और पतिताओं के उद्धार के लिये बनाया हुआ कार्य-क्रम कार्य रूप में परिणत करना था। उद्धार की योजना जल्दी से शुरू करके वह भविष्य में होनेवाली बदनामी से बचना चाहता था। संसार में बहुत-सी सेवाओं का आधार स्वार्थ ही होता है।

'इतनी देर क्यों हुई ?'—दुर्गावती ने प्रति दिन का प्रश्न पद्मनाभ से पूछा।

'तुम यदि मेरे परिश्रम का अनुमान कर सकती तो तुमको जरूर मुझपर दया आती।'

उत्तर सुनते ही निश्वास छोड़, करवट बदल कर सो जाने के बदले आज दुर्गावती बैठकर परिश्रम का विवरण सुनने के लिये तैयार हुई।

'पतितोद्धार का आज प्रश्न उठा—और एक योजना बनाई गई।'—अपना महत्व स्थापित करते हुए पद्मनाभ बोला।

'क्या ?'—गणिकाओं का उद्धार हो ही नहीं सकता—ऐसे वातावरण में रहनेवाली दुर्गावती को नवीन योजना सुनने का मन हुआ।

'देखो, अधिकतर दो-तीन कारणों से ही स्त्रियाँ पतित होती हैं।'

'कौन से कारणों से ?'

'एक तो उनको जब जीवन यापन का कुछ भी साधन नहीं

रहता तब, और दूसरे शरीर तथा मन के असंतुष्ट रहने पर वे गणिका बनती हैं। अनेक समय ये दोनों कारण एक साथ मिले भी रहते हैं।'

दुर्गावती जरा डरीं। उनके जीवन-यापन का बन्दोबस्त उनका पति करता था। लेकिन उनका शरीर और मन, जो असंतुष्ट रहता है, वह क्या गणिका बनने का क्रम है? और कभी-कभी जोर जुल्म का भी यही परिणाम होता है।'—पद्मनाभ ने समझाया। परन्तु दुर्गावती का सूखा हुआ चेहरा यह सुन कर और भी सूख गया।

लोग मार-मार कर गणिका बना देते होंगे? उनके हृदय में भयपूर्ण प्रश्न उठा।

'जिसे जीवन-यापन का साधन न हो, उसे जीविका देना और जबरदस्ती से पतिता बनाने वालों के जुल्म से उनकी रक्षा करना—ऐसी योजना हो सकती है—केवल असंतुष्ट स्त्री जो अपनी इच्छा से गणिका बनती है, उसको किस तरह से रोकना चाहिए, यह समझ में नहीं आता।'

'अविनाश विवाह करने के लिये कहता है यदि ऐसा कुछ किया जाय तो?'—दुर्गावती ने योजना में संशोधन किया।

'विवाह होने पर भी जो स्त्री संतुष्ट न रहे; तब उसका क्या उपाय?'—सोच कर वकील ने सिर हिला कर कहा।

दुर्गावती चौंक पड़ी। विवाहित-जीवन का असंतोष क्या गणिकावृत्ति से दूर हो जाता है? वह अधिक विचार करने से रुकीं। उन्होंने पूछा—'अविनाश फिर क्यों नहीं दिखाई दिया?'

'उसका तो पता ही नहीं।'

'कहाँ गया होगा? शायद विवाह कर लिया हो!'

'वह विवाह के विरुद्ध है—इसलिये जल्दी विवाह नहीं करेगा।'

दुर्गावती जरा अनखनाई। वह फिर पलंग पर लेट गई। कपड़े उतार कर जब पद्मनाभ वापस आया तब दुर्गावती ने मन में उठा हुआ प्रश्न उससे पूछा—वह पूछना नहीं चाहती थी, फिर भी पूछे बिना रहा नहीं गया।

'केवल स्त्रियाँ ही गणिका क्यों बनती हैं? पुरुषों में ऐसी बात नहीं होती?'

'नहीं।'

लेकिन दुर्गावती के प्रश्न से पद्मनाभ के सामने सत्य आकर खड़ा हो गया। पुरुषों ने स्त्रियों को आर्थिक परतंत्रता में जकड़ रक्खा है, इतना ही नहीं, वह उनको केवल भोज्य-वस्तु की तरह केवल स्वाद की वस्तु ही मानता है। स्नेह-सम्बन्ध के बदले पुरुष ने अपना भोक्तृत्व ही बना लिया है। पुरुष उसकी तरफ मोह से इस प्रकार देखता है मानो वह मोम की पुतली हो। पुरुष उसको इस प्रकार स्पर्श करता है, मानो वह एक शीशे की मूर्ति हो। उसको इस प्रकार चूमता है—चाटता है—मानो वह मिश्री की डली हो, उसको इच्छानुसार इस प्रकार उठाता-बैठता है और नचाता है, मानो वह कठपुतली हो। स्नेह-सम्बन्ध में दर्शन-स्मरण से लेकर देह के अन्तिम प्रकरण तक स्त्री, पुरुष की हिस्सेदार है—समान अधिकारिणी है—यह पुरुष भूल जाता

है, और केवल भोज्य वस्तु समझ कर स्त्रियों की वृत्तियों का भी विचार नहीं करता ! पुरुष के लिये स्त्री जैसे भोग्य वस्तु है; उसी प्रकार स्त्री के लिए भी पुरुष भोग्य वस्तु है—यह विचार पुरुष को नहीं आता। वह हिस्सेदार से मालिक बन गया है-व्यवहार में भी, प्रेम में भी।

स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को न स्वीकार करनेवाला पुरुष अतृप्त ही रहता है। अतृप्त इच्छा आदत बन जाती है। अकेले-अकेले सुख चाहनेवाला पुरुष भोगेच्छा की आदत में कितनी ही सूक्ष्म, कोमल, ललित और कंप-प्रेरक भावनाओं के रसास्वादन से वंचित हो जाता है। उसे कभी तृप्ति नहीं मिलती—जो मिलती है, केवल वह ग्लानि-प्रेरक और आत्म-तिरस्कार से भरी सुख की धुँधली छाया हो !

पुरुष के भोक्तृत्व के विरुद्ध विद्रोह, यही गणिका-वृत्ति है ! स्त्री को आर्थिक परतंत्रता, उनपर होता हुआ जुल्म और पुरुषों का भोक्तृत्व ही गणिका-वृत्ति का मूल है। दो तत्त्व पद्मनाभ समझ गया था। स्वयं गणिका बनने वालियों का प्रश्न ही उसे कठिनता में डाल रहा था। अब उसकी समझ में यह आया कि पुरुष की तरह स्त्री का भी भोक्तृत्व स्वीकार किया जाय तो स्वछंदता से गणिका बननेवाली अदृश्य हो जायँगी।

स्त्रियाँ जब स्वतंत्र होंगी, तभी गणिकाएँ निर्मूल होंगी। स्वतंत्रता, आर्थिक स्वातंत्र्य, सामाजिक स्वातंत्र्य और प्रेम स्वातंत्र्य ! ये जब तक न होंगे, तब तक गणिकाएँ संसार में मौजूद रहेंगी। पतितोद्धार स्त्री-स्वातंत्र्य में है—यद्यपि पुरुषों को

अपना अधिकार छोड़ना कठिन मालूम होगा, फिर भी······

पद्मनाभ वास्तविक रूप से पतितोद्धार में भाग लेनेवाला बन गया। इन सब प्रश्नों का विचार आज तक यह अपनी वासना छिपाने के लिये करता था। आँखों के सामने नृत्य करनेवाली मृत्यु ने उसे भय दिखाया। प्रतिष्ठा नष्ट होनेवाले प्रसंग ने उसके मस्तिष्क में एक सुन्दर योजना उत्पन्न की और अविनाश की प्रामाणिकता ने उसे अंतरावलोकन करना सिखाया। इससे वह वास्तविक सुधारक बन गया। उसकी वासना अतृप्त ही रही। लेकिन संस्कार-शील पुरुष को पतितोद्धार की लगन इसमें से ही उत्पन्न हुई। उसने गणिका-सम्बन्धी शास्त्रीय और अशास्त्रीय पुस्तकों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया और साथ ही अविनाश तथा उसकी अनजान वारांगना प्रियतमा का रोमांचक विचार दुर्गावती के कष्टों को दूर करने लगा।

जब पद्मनाभ से भेंट होती, तभी दुर्गावती अविनाश का समाचार पूछती। पद्मनाभ हँसता, मजाक करता, टीका करता, लेकिन इससे दुर्गावती को बुरा नहीं लगता। बल्कि इससे तो उनके मन और शरीर में जागृति आने लगी। तीसरे दिन शाम को उन्होंने फिर पद्मनाभ से पूछा—'अविनाश मिला ?।'

'नहीं।'

'कहाँ गया होगा ?'

'समझ में नहीं आता।'

'उसके बाप कुछ नहीं करते ?'

'बहुत कुछ करते हैं। पहले दिन तो वे क्रोध में ही रहे,

दूसरे दिन अविनाश अपने आप आवेगा—यह सोचकर उसकी प्रतीक्षा करते रहे, और आज अब आँसू ढाल रहे हैं।'

'तब लड़के को निकाल क्यों दिया था ?'

'प्रतिष्ठित बाप दूसरा क्या कर सकता है।'

'अब रोते हैं क्यों ?'

'बाप हैं, इसीलिये ! उसकी माँ ने तो खाना-पीना ही छोड़ दिया है—एक ही लड़का है।'

'कोई उपाय निकालना था।'

'लड़का उपाय निकालने दे, ऐसा नहीं है। वह विचित्र है। सुमंतराय तो उस गणिका को रक्षिता के रूप में रखने देने के लिये तैयार हो गये हैं !'

दुर्गावती चकपका उठीं। रक्षिता शब्द उनके श्वांस को बन्द कर देने वाला था। इसी समय बाहर से एक नौकर ने आकर खबर दी—'साहब कोई आपसे मिलना चाहता है।'

'कौन है ?'

'एक स्त्री !'

दुर्गावती की भौंहें तन गईं। उसका हृदय भी संकुचित होने लगा। आदत कहीं जल्दी छूट सकती है ?

'क्या नाम है ?'—पद्मनाभ ने पूछा।

'राजेश्वरी।'

'कहो—बैठे।'

'यह कौन है ? विचित्र नाम है ?'—दुर्गावती ने पूछा। आनेवाली स्त्रियों में से अधिकांश के नाम दुर्गावती ने याद कर

रक्खे थे। लेकिन यह नाम उनकी स्मृति के बाहर का मालूम हुआ।

'यही वह अविनाश वाली गणिका है !'—पद्मनाभ ने कहा। और अपने ऊपर का संदेह टाल दिया।

दुर्गावती केवल अपने पति के लिये ही चिन्तित रहती थीं। दूसरी स्त्रियों के पति के लिये उनको कौतूहल उत्पन्न होता था। अविनाश का प्रश्न तो उन्होंने अपना ही प्रश्न बना लिया था—इसलिए अविनाश की प्रियतमा के लिये जरा ज्यादा पूछताछ की। पद्मनाभ निर्दोष है यह उन्होंने मान लिया था, केवल जिज्ञासा ही उनको पूछताछ करने को प्रेरणा कर रही थी। पर इससे पद्मनाभ को कठिनता बढ़ रही थी।

'तुम कैसे पहचानते हो ?'—दुर्गावती ने पूछा।

'इतना परपञ्च जो हो रहा है !'

'तुमने उसको देखा है ?'

'हाँ।'—कह कर पद्मनाभ खड़ा हो गया, उसको डर लगा कि कहीं यह प्रश्न न पूछें कि कहाँ और कब देखा है।

'उसको यहीं बुलाओ न ?'—दुर्गावती ने कहा।

पद्मनाभ को इसमें ज्यादा कुशल मालूम हुई। राजेश्वरी कुछ जड़ नहीं है; जो पद्मनाभ का इतिहास उसकी स्त्री के सामने कह देगी।

'यहाँ बुलाऊँ !'—कहकर पद्मनाभ फिर बैठ गया। उसने नौकर भेजकर राजेश्वरी को भीतर बुलाया—यद्यपि पद्मनाभ का कलेजा उछल रहा था।

२७

पति-पत्नी जब आपस में एक दूसरे को संदेह करने लग जाते हैं ; तब स्थिति बहुत गम्भीर हो जाती है।

दुर्गावती की इच्छानुसार पद्मनाभ ने राजेश्वरी को बुलाया। सृष्टि का कोई नवीन जीव देखने की भावना के साथ दरवाजे की तरफ देखती हुई दुर्गावती ने एक युवती को अपने कमरे में आते देखा। उसके कपड़े सादे थे, फिर भी उनमें नवीनता का भास हो इस ढंग के थे। उसकी चाल में भी मादकता थी। वह बहुत गोरी नहीं कही जा सकती थी ; फिर भी गोराई से भी कोई विशेष आकर्षक तत्व उसके मुख को सुन्दर बना रहा था।

देखने के साथ ही दुर्गावती ने यह सब निरीक्षण कर लिया। स्त्री-स्वभाव में सौन्दर्य-स्पर्धा कम नहीं होती—राजेश्वरी ने भी एक ही नजर में दुर्गावती को देख लिया—यदि शरीर में खून आ जाय तो दुर्गावती अच्छी दिखाई दे सकती हैं; ऐसा राजेश्वरी को मालूम हुआ। पर जब तक ऐसा न हो तब तक ? पद्मनाभ का असंतोष राजेश्वरी की समझ में आ गया।

पद्मनाभ की ओर देख कर राजेश्वरी ने अपनी प्रथा के अनुसार झुककर सलाम किया। साधारण स्त्रियों से भिन्न प्रकार की यह चेष्टा दुर्गावती को अच्छी नहीं लगी। किसलिये ऐसी सुन्दर युवती को इस तरह से पुरुषों को सलाम करना पड़ता है ?

'राजेश्वरी ! यह मेरी स्त्री है।'—पद्मनाभ ने पलँग पर तकिया लगा कर बैठी हुई दुर्गावती को दिखा कर कहा। दुर्गावती ने 'स्त्री' स्वीकार की आवाज को गर्व के साथ सुना।

'बहनजी, पैर पड़ती हूँ।'—कह कर राजेश्वरी ने पलंग के नीचे लटकते हुए दुर्गावती के पैर छूए। गणिका में विवेक देख कर दुर्गावती को आश्चर्य हुआ। रूप के चुम्बक से पुरुषों को खींचनेवाली वेश्याओं में, नागिन जैसी भयंकरता की कल्पना करने वाली दुर्गावती को इस विवेक के पीछे साधारण स्त्री-हृदय दिखाई दिया।

'ऊपर बैठिये न !'—दुर्गावती ने कहा।

गणिका को कोई कुर्सी नहीं देता, उसे कुर्सी शोभा भी नहीं देती।

'जी नहीं, यहीं ठीक है।'—इतनी-सी बोली में भी राजेश्वरी ने मिठास भर दी थी। बोलने के समय शरीर की होती हुई हलचल में भी रूप-रेखाएँ अंकित हो रही थीं। लोग कैसे मोहित न हों ? कैसे आकर्षित न हों ? दुर्गावती के मन में विचार उठा।

'राजेश्वरी ! कैसे आई हो ?'—पद्मनाभ ने पूछा। उसका हृदय अनेक प्रवाहों में पड़ कर घबड़ा रहा था।

इस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा करती हुई राजेश्वरी के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल सका। उसने व्याकुलता के साथ पद्मनाभ की तरफ देखा, दुर्गावती की तरफ देखा और दोनों हाथों की हथेलियों से अपना मुख छिपा लिया। रुदन करती

हुई युवती का केवल श्वास-प्रश्वास ही सुनाई देता था। फिर भी उसकी हथेलियाँ भींग गई थीं। दुर्गावती को दया आई। किसलिये एक गणिका को इस प्रकार रुदन करना पड़ता है? उसका कुटुम्बी कौन? स्नेही कौन? शरीर को बेचनेवाली में हृदय होता है? दुर्गावती की कल्पना के अनुसार तो गणिका को कभी रोने की आवश्यकता ही नहीं थी। जो रुपया दे; वही कुटुम्बी—जो रुपया दे; वही स्नेही! वह रोए किसके लिए? इस तरह से रोती हुई गणिका को देख कर दुर्गावती को मालूम हुआ कि गणिकाओं में भी मानवता होती है!

'इस प्रकार क्यों रोती हैं?'—दुर्गावती ने दयार्द्र कंठ से पूछा। बहुत वर्षों पर उनको एक स्त्री के लिये दया आई।

'बहनजी, मैं अपने भाग्य को रोती हूँ।'—आँसू पोछते हुए राजेश्वरी ने कहा। उसके गले में अभी तक रुदन की विकलता थी। रोती भी है तो कितना सुन्दर! दुर्गावती को उसके रुदन में भी कला मालूम हुई। उनको राजेश्वरी का रोना भी अच्छा मालूम हुआ।

'मुझसे कुछ कहना चाहती हो?'—पद्मनाभ ने पूछा।

'जी हाँ।'—राजेश्वरी ने उत्तर दिया।

'मैं अवश्य राय दूँगा—यदि जानकी के साथ कुछ झगड़ा हुआ हो तो······।'

अपनी वकालत के द्वारा पद्मनाभ अपना भूतकाल पत्नी से छिपाने की कोशिश कर रहा था। फिर एक स्त्री-वाचक नाम सुन कर दुर्गावती की आँखें चमकने लगीं।

'जानकी कौन है ?'—दुर्गावती ने पूछा।

'राजेश्वरी की माँ।'—पद्मनाभ ने उत्तर दिया।

'तुम कैसे पहचानते हो ?'

'अविनाश की पंचायत क्या कम है ?' इस प्रकार संक्षेप में उत्तर देकर अपनी बला टाली। अविनाश की विचित्रता के कारण ही जैसे राजेश्वरी और जानकी का परिचय उससे हुआ हो। दुर्गावती की आँखें और हृदय शान्त हुए। शोकाकुल राजेश्वरी का मुख देखने से उनमें फिर से दया उत्पन्न हुई। उन्होंने उसको सहायता देने का विचार किया।

'तुमको क्या कहना है, बहन ?'—दुर्गावती ने पूछा।

'बहनजी, मैं तो पापी जीव हूँ। अनेक पाप-कथाएँ कहनी हैं। मैं आपका कमरा अपवित्र नहीं करूँगी।'—राजेश्वरी ने उत्तर दिया। राजेश्वरी का कोमल मुख, उसकी कोमल अवस्था, उसका कलामय शरीर, इन सबों को भेद कर उसके हृदय में पाप किस तरह से घुसा होगा ? दुर्गावती को यह बात असम्भव मालूम हुई। सौन्दर्य में पाप रह ही नहीं सकता !

'मुझसे कह सकोगी ?'—पद्मनाभ ने पूछा।

'अगर बहनजी को कुछ हर्ज न हो तो मैं आपसे एकांत में कुछ कहना चाहती हूँ।

पहले तो दुर्गावती चौंकी—दोनों को एकान्त में रहने दिया जाय ? उन्होंने पद्मनाभ की तरफ देखा—शान्त, गम्भीर और संस्कारी पद्मनाभ राजेश्वरी की तरफ देखता तक नहीं था। फिर उन्होंने राजेश्वरी की तरफ देखा—कोमल, निर्दोष बालिका जैसी

युवती पद्मनाभ से सहायता लेने के लिये आई हुई मालूम होती थी, उसको फँसाने नहीं ! पत्नी के सामने बैठ कर इस तरह से अपने पापों की याद में रोनेवाली युवती पद्मनाभ को फँसाने की चेष्टा करे; यह असंभव था। अविनाश के सम्बन्ध में यदि कुछ व्यवस्था करनी हो तो राजेश्वरी का संकोच उचित ही है। कितनी ही बातें अकेले पुरुष या अकेली स्त्री के सामने कही जा सकती हैं—दोनों के सामने एक समय में नहीं हो सकतीं।

'मुझे कुछ हर्ज नहीं है।'—उदार दुर्गावती ने कहा।

'और यदि राजेश्वरी की आज्ञा होगी तो मैं उसकी सब बातें तुमसे कह दूँगा।'—पद्मनाभ ने दुनियाँ की सम्पूर्ण सत्यता अपनी आँखों में लाकर कहा।

राजेश्वरी चौंकी—पर फिर हँसकर बोली—'मुझे एतराज नहीं है—पर मेरे सामने नहीं।'

दुर्गावती को विश्वास हो गया कि जो बात कहने देने में राजेश्वरी बाधा नहीं उपस्थित करतीं; उस बात के होने देने में कुछ हर्ज नहीं है। अपने सामने न कहने देने में राजेश्वरी का स्त्री-सुलभ संकोच ही है। उन्होंने दोनों को एकान्त में जाने दिया।

अपनी एकान्त कोठरी में जाकर पद्मनाभ एक सोफे पर बैठा। राजेश्वरी को सामने की कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। परन्तु वह जमीन पर बिछी हुई दरी पर बैठी। पद्मनाभ का हृदय धड़कने लगा। जिसका बहुत दिनों से इन्तजार था; वही बात क्या आज सामने आना चाहती है ? बैठे-बैठे वह हाथ को

उँगुलियाँ बजाने लगा। दो तीन बार बैठने का आसन बदला, लेकिन उसका हृदय स्थिर नहीं हुआ।

राजेश्वरी नीचा मुख किये हुए बैठी थी। उसके चेहरे से कोई भी भाव व्यक्त नहीं होता था। थोड़ी देर पूर्ण शान्ति रही। शान्ति भी भार मालूम होने लगती है। आखिर पद्मनाभ ने बात आरम्भ की—'राजेश्वरी!'

राजेश्वरी ने पद्मनाभ की तरफ देखा। पद्मनाभ की आँखों से अपनी आँखें मिलाईं—पर कुछ उत्तर नहीं दिया।

'तुम किसलिये आई हो?'

'अपना शरीर आपके अधीन करने!'

'क्या???'—चौंक कर पद्मनाभ ने पूछा।

किसी मध्यस्थ के द्वारा अपराधी से घूस लेने की बात होते समय, यदि अपराधी स्वयं ही आकर घूस दे; तो उस समय जैसी व्याकुलता घूस लेने वाले को होती है, वैसी ही पद्मनाभ को हुई।

'आपकी इच्छा के अधीन होने आई हूँ।'—राजेश्वरी ने स्पष्ट कहा।

संस्कार प्रथम पाप करने वाले को लज्जित करता है। शिक्षा, सुसंगति, सद्विचार, ये संस्कार समूह मनुष्य को वज्र हृदयी न बना कर उसको लज्जाशील बना देता है। आदत से लज्जा छूट जाती है और बड़े-बड़े संस्कारी मनुष्य न सोचे हुए कार्य करने वाले बन जाते हैं। लेकिन पाप के प्रथम प्रत्यक्ष संघर्ष के समय ग्लानि उत्पन्न होती ही है। पाप क्या है और क्या नहीं, यह संस्कार के ऊपर ही अवलंबित रहता है। वेश्यागमन में पाप

नहीं है या वेश्यागमन करने योग्य है, ऐसा सिद्धान्त पद्मनाभ के संस्कार ने अभी स्वीकार नहीं किया था। इसीलिये वैसी इच्छा रहने पर भी इच्छा फलीभूत होने वाले प्रसंग ने पद्मनाभ में लज्जा उत्पन्न की, उसके हृदय में एक प्रकार की ग्लानि उत्पन्न हुई।

'मेरी क्या इच्छा है ?'–अनजान बन कर पद्मनाभ ने पूछा।

'क्या उसे आपसे कहना होगा ? आपने जानकी के साथ ठीक किया था न !'

'वह दिन गया।'

'पर हमलोग कहाँ गये हैं ?'

पद्मनाभ जरा स्थिर हुआ। वह हँसा—बहुत सहानुभूति-पूर्ण हास्य वह हँसा। उसने कहा—लेकिन वह बात यहाँ आकर क्यों कहती हो ?'

'तब कहाँ कहूँ ? जानकी के घर तो मैं जाऊँगी ही नहीं, और उस मंदिर में मुझे रोना ही आता है !'

'क्यों ?'

'शास्त्रीजी का गाना सुन कर।'

'तुम क्या यह समझती हो कि मैं तुम्हारे पीछे वासना के कारण ही घूमता था ?'—पद्मनाभ के हृदय ने महत्ता का मार्ग पकड़ा—लज्जा में से ग्लानि और ग्लानि में से चरित्र-विशुद्धि का प्रदर्शन करने की उसकी इच्छा हुई।

'और दूसरा क्या समझ में आ सकता है ? आप उपहार

भेजने लगे, मेरा मूल्य निश्चित किया और दिन भी निश्चित किया--इससे अधिक दूसरा और क्या हो सकता है ?'

पद्मनाभ फिर हँसा।

'तुमको मैं दूसरों के जैसा ही मालूम हुआ ?'

राजेश्वरी नीचा मुख करके बात कर रही थी। उसने फिर पद्मनाभ से आँखें मिलाईं। थोड़ी देर ठहर कर बोली--'जी नहीं, दूसरों से भिन्न ! फिर भी आपके आमंत्रण ने मुझको बहुत रुलाया है !'

'आज मैं तुमसे अपनी एक गुप्त बात कह दूँ--मैं समाज-सेवक हूँ। स्त्री-उद्धार का प्रयत्न किया करता हूँ। मुझको पतिताओं का जीवन देखना था--इसीलिये मैं ऐसा करता था।'

कभी-कभी पवित्रता का भी आवेश आ जाता है। मन में हो या न हो फिर भी मनुष्य महान हो जाता है। आततायी भी दो घड़ी के लिये साधुता का स्पर्श कर लेता है। इसीमें मनुष्य के विकास की आशा रहती है।

राजेश्वरी पद्मनाभ के सामने देखती रही। पद्मनाभ के लिये उसमें एक प्रकार का छिपा हुआ पूज्य भाव था ही--वह पूज्य भाव प्रकट हो गया। बहन या बेटी बन कर पुरुष की पशुता अदृश्य करने वाली स्त्रियों के दृष्टान्त कम नहीं हैं। राजेश्वरी कुछ बोली नहीं। पद्मनाभ ने पवित्र बनते हुए कहा--'देखो--मैंने एक पतिताश्रम खोलने का निश्चय किया है। अपना पेशा छोड़कर जो वेश्याएँ इस आश्रम में आवेंगी, उनकी जीविका का साधन कर देने का मैंने निश्चय किया है।'

राजेश्वरी एकाएक बोली—'तब मैं कीका सेठ के पास जाऊँ।' 'किसलिये ?'—आश्चर्य के साथ पद्मनाभ ने पूछा। चाहे जो हो, पर कीका सेठ का सम्बन्ध राजेश्वरी के साथ नहीं ही होना चाहिये, ऐसा सुधरते हुए पद्मनाभ के मन में भी हुआ।

'आप तो अस्वीकार करते हैं—तब मैं और किसके पास जाऊँ ?'

'पर तुमको किसी के पास जाने की आवश्यकता क्या है ? मेरे आश्रम में तुम्हीं पहले पहल दाखिल हो।'

'जी नहीं।'

'क्यों ?'

'मैंने निश्चय किया है कि किसी की रक्षिता बन कर रहूँ !'

'क्या कहती हो ?'

'मैं ठीक कहती हूँ। इसके सिवाय दूसरा मार्ग नहीं है।'

'तब मैं तुमको एक मार्ग बताता हूँ—अविनाश है न ?'

'हूँ।'

'वह तुम्हारे पीछे पागल है।'

'हूँ।'—राजेश्वरी की इच्छा हुई कि वह कहे कि वह भी अविनाश के पीछे पागल है !

'उसके बाप से मैं तुमको मासिक खर्च दिलाऊँगा और तुम !'

'नहीं, नहीं, नहीं, उनका नाम न लीजिये।'

'क्यों ? कीका सेठ की अपेक्षा तो वह बहुत······।'

'आप अविनाश की बात ही न करें तो कैसा ?'

'हर्ज क्या है ?'

'मेरे कारण······कुछ नहीं, कुछ नहीं !'

'बोलो, बोलो, क्या कहती थीं ?'

'मेरे कारण उनका विवाह रुक जाता है।'

'उसके लिये वह स्वयं ही इन्कार करता है।'

'मेरे कारण वह विवाह न करें, यह मैं न होने दूँगी।'

'तुम्हारे कारण वह विवाह नहीं करेगा यह कैसे ?'

'वह मेरे साथ विवाह करना चाहते हैं।'

'फिर ?'

'ऐसा होने से उनका भविष्य नष्ट हो जायगा।'

'तुम्हारे साथ विवाह करना असम्भव हो जाय, इसलिये तुम यह कर्म करना चाहती हो ?' राजेश्वरी की इच्छा जान कर आश्चर्यचकित होते हुए पद्मनाभ ने पूछा !

'जी हाँ, आप या कीका सेठ मुझे रख लें तो बस !'

'पर तुमको यह अच्छा लगेगा ?'

'अच्छा ?' उनका जीवन सुधर जाय तो मुझे अच्छा ही लगेगा। दूसरा और मैं क्या कर सकती हूँ।'—इतना कह कर राजेश्वरी रोने लगी। उसकी आँखों से मोतियों का एक छोटा झरना बहने लगा।

प्रियतम के लिये प्राण देने वाली स्त्री को समाज सती कहता है। प्रियतम के लिये हृदय, हृदय की विशुद्धि, शरीर और शरीर की विशुद्धि को भी सम र्पण करने वाली स्त्री के लिये समाज ने कोई नाम खोज रखा है ? प्राण-त्याग, यह भव्य बलिदान है—हृदय-त्याग भव्यतर नहीं है क्या ?

पद्मनाभ नई दुनिया निहारने लगा। अविनाश को राजेश्वरी के पास से खींच लेने में उसे कुछ पाप होता हुआ मालूम हुआ। अविनाश राजेश्वरी के साथ यदि विवाह करेगा तो निश्चय ही सामाजिक बहिष्कार पावेगा, पर निरूपमा के साथ विवाह करे, और राजेश्वरी के साथ गुप्त रूप से परिचय रखे तो कैसा? पद्मनाभ ने यह प्रश्न राजेश्वरी से पूछा।

राजेश्वरी ने रोना बन्द कर दिया—इतना ही नहीं, उसकी आँखों में उग्रता दिखाई दी।

'यह कभी नहीं हो सकता—बनूँ तो पत्नी ही बनूँ—रक्षिता नहीं!'

'मैं समझा नहीं—कोका सेठ को तुम कबूल करती हो और अविनाश को नहीं?'

'नहीं।'

'क्यों?'

'मेरी समझ में नहीं आता, मैं कह नहीं सकती-सूर्य आकाश में ही उगता है और आकाश में ही डूबता है—धूल में नहीं!'

'बुरा मत मानना—तुम लोगों में तो यह चलता है।'

'एक को छोड़ कर, अपने प्रिय को मैं गंदगी में नहीं डाल सकती।'

'लेकिन वह स्वयं भी तो विवाह-सिद्धान्त को नहीं मानता।'

'यह उनकी इच्छा।'

'कोका सेठ के साथ रहने पर भी, अगर वह तुम्हारे पीछे घूमे तो?'

'मैं अपने पास न आने दूँगी ।'

'पर इससे उसका जीवन किस तरह से सुधर जायगा ?'

'तब मैं ही मर जाऊँ—दूसरा और क्या कर सकती हूँ ?'

राजेश्वरी फिर रोआसी-सी हो गई ।

२८

'राजेश्वरी ! रोओ मत । मैं प्रयत्न करता हूँ ।'

'क्या ?'

'तुम्हारे साथ अविनाश का विवाह हो सके यह ।'

'नहीं, ऐसा मत करिये—उनका भविष्य नष्ट हो जायगा।'

'उसका भविष्य नष्ट न हो तो ?'

राजेश्वरी चुप रही । पत्नीत्व को फेंक देने के लिये तैयार हुई पगली, फिर पत्नीत्व के विचार रचने लगी ।

'तुम अभी कीका सेठ के पास मत जाओ ।'

'तब कहाँ जाऊँ ?'

'मेरे घर पर रहो ।'—यह कहने की पद्‌मनाभ की हिम्मत नहीं हुई । उसने पूछा—'तुम कहाँ रहती हो ?'

राजेश्वरी कहाँ रहती थी ?

जानकी को छोड़ कर वह चली आई थी । हबीब की उपस्थिति में राजेश्वरी का घर से निकल जाना मुश्किल था । जानकी के सामने ही उसने हबीब को एक उस्ताद को बुलाने के

लिये भेज दिया। जब केवल वही दोनों रह गईं, तब राजेश्वरी ने कहा—'माँ! मैं जाती हूँ।'

'कहाँ ?'

'तुम्हारे घर से बाहर !'

जानकी चौंक उठी। लज्जावती तो चली ही गई, अब यह भी चली जायगी क्या ? दोनों बहनों के स्वभाव की दृढ़ता को वह पहचान गई थी। एक की उग्र दृढ़ता, और दूसरी की सौम्य—प्रकार भिन्न—पर मूल तत्त्व एक ही !

'किसलिये ?'—जानकी ने पूछा।

'वह अगर मैं जीती रहूँगी तो एक दिन बतला दूँगी। मेरे पीछे यदि किसी को भेजोगी तो मैं जहर खा लूँगी; पर तुम्हारे हाथ नहीं लगूँगी।'

जानकी कुछ करे या कहे उसके पहले ही राजेश्वरी घर के बाहर निकल आई। उसने घर छोड़ने का निश्चय कर लिया था। कहाँ और क्यों ? इस प्रश्न का वह विचार ही नहीं कर सकी। घर छोड़ना—इसी विचार पर उसका मन दृढ़ हो गया था।

'लज्जावती के यहाँ जाऊँ ?······किसलिये ? तो फिर जानकी ही क्या बुरी है ?'—उसने बहन का आश्रय लेना अच्छा नहीं समझा।

संसार स्त्रियों को क्या समझता है, इसका अनुभव उसे अपने जीवन से हो गया था, फिर भी उसे मालूम हुआ कि संसार का बहुत बड़ा हिस्सा अभी बिना देखा हुआ है। सभी

पुरुष क्या वेश्यालयों में जाते हैं ? संसार का असंतुष्ट भाग, पामर भाग, या विलासी भाग वेश्याओं का अतिथि होता है—संसार उससे कहीं बड़ा है ।

चार बजे के समय वह घर से निकली । न तो उसने कुछ रुपया-पैसा ही लिया, न कपड़ा-लत्ता ही । केवल साधारण वस्त्र, जो वह पहने थी, वही उसके पास थे । उसको अकेले जाते हुए देख कर तमोलियों और दूसरी वेश्याओं के दरवानों को आश्चर्य हुआ । वह सभी राजेश्वरी को पहचानते थे । राजेश्वरी ने किसी को तरफ नहीं देखा । गाड़ी में बैठ कर घूमने की आदी राजेश्वरी को पैदल चलने में कुछ नया ही अनुभव हुआ । उसे नवीनता मालूम हुई । जहाँ तक गणिकाओं की गली थी, वहाँ तक तो उसे परिचित भूमि दिखाई दी, लेकिन उस गली के बाहर निकलने पर उसे मालूम हुआ कि वह किसी अनजान देश में आ गई है । आगे बढ़ते हुए वह घबड़ा कर खड़ी हो गई ।

'क्यों ? कहाँ जायँगी ?'—एक धीमी आवाज उसके कान में पड़ी । एक मनुष्य उसके पास से होकर जा रहा था, यह उसी का प्रश्न था । तिरछी नजरों से वह राजेश्वरी को देख कर आगे बढ़ गया । प्रश्न का उत्तर सुनने के लिये वह खड़ा क्यों न रहा ? राजेश्वरी आगे बढ़ी ।

एक दो सीटी की आवाजें उसके कानों में पड़ीं । पहले उसने इधर ध्यान नहीं दिया । लेकिन उसने जब एक ही तरह की सीटी बारबार सुनी, तब इधर देखा । प्रश्न करने वाले की सी ही उसकी भी आँखें थीं । वह सब खड़े हो कर राजेश्वरी से

क्यों नहीं पूछते थे ? सभ्य-समाज में क्या दूसरे के दुख से दुखी होने की प्रथा नहीं है ?

'बम्बई की सेठानी !'

किसी ने कहा। वह आगे चली।

'ओटो दिलबहार !'

फिर आवाज़ सुनाई दी। आगे दो नवयुवक जा रहे थे। एक ने कहा—'नारायण हरि !'

यह क्या ? किससे कहते हैं ? महफिलों में लोग शरारत करते हैं, यह वह जानती थी। रास्ते में चलती हुई गणिकाओं को लोग घूरा करते हैं—यह भी वह जानती थी। क्या वह इस समय भी गणिका जैसी मालूम होती थी ? सादे वस्त्रों में भी वेश्या की छाप उसके मुख पर से दूर नहीं हुई थी ? या सभ्य-समाज, सभ्य स्त्रियों के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार करता है ?

सड़क छोड़ कर वह एक गली में घुसी। यहाँ उसे कुछ शान्ति मालूम हुई। उसे डर भी लगा। क्या करना चाहिए, यह सोचने के लिये वह एक दरवाजे के सामने रुक गई।

'कौन है ? क्या काम है ?'—एक वृद्धा ने दरवाजे के भीतर से पूछा।

'कुछ नहीं, मैं यों ही खड़ी हूँ।'

'अपने रास्ते जाओ, यहाँ क्या तुम्हारी नार गड़ी है ?'—वृद्धा ने कहा।

गली घर के मालिक की नहीं थी। वह सार्वजनिक थी। वहाँ खड़े रहने से वृद्धा का क्या नुकसान होता था ? राजेश्वरी

आगे बढ़ी उसके कान में वृद्धा के शब्द सुनाई दिये—'कुछ दाल में काला है—लड़का हाथ से गया।'

आगे एक गृहस्थ चौतरे पर खड़े थे। गृहस्थ को राजेश्वरी देखने लायक मालूम हुई। मार्ग में चलते हुए राजेश्वरी को अपनी जीविका के साधन का ख्याल आया, जिसे घर छोड़ने की धुन में वह भूल ही गई थी। एकाएक उसने अपनी तरफ देखते हुए गृहस्थ से पूछा—'आपको दाई की आवश्यकता है?'

यदि केवल गृहस्थ के इच्छानुसार दाई रखी जा सकती तो वह अवश्य ही हाँ कह देते–उन्होंने हाँ कहने जैसी मुद्रा दिखाई, इतने में उनकी पत्नी दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। पत्नी से और युवा स्त्री दाई से एक क्षण के लिए भी पटरी नहीं बैठती। भूल से अगर कोई साधारण सुन्दर दाई घर में नौकर रख ली जाय तो उसको निकाले बिना घर में शान्ति स्थापित नहीं होती। यद्यपि अधिकांश गृहणियाँ तो वृद्ध, कुरूप या अर्ध विक्षिप्त स्त्रियों को नौकर रख कर गृहस्थी का खेल समाप्त कर देने में ही आनन्द मानती हैं।

'कौन है?'—गृहिणी ने स्त्री की मधुर आवाज सुन गर्जना की!

'यह तो······यह तो·········इनको नौकरी की तलाश है······'—गृहस्थ ने कहा।

'जाओ—जाओ, अपने रास्ते जाओ! यहाँ आवश्यकता नहीं है।'—गृहिणी ने कहा! और फिर गृहस्थ को परोक्ष रूप

से सुनाया—'यह क्या काम करने का ढंग है ! वेश्या जैसी तो चाल-चलन है !'

बिखरे हुए बाल, फूला हुआ मुख और रूखी आवाज़ में ही गृहिणी-धर्म समाप्त मानने वाली गृहिणियाँ साधारण टीप-टाप में भी वेश्यापन देखती हैं। फिर राजेश्वरी तो कलामय ही थी। उसकी शिक्षा और उसका स्वभाव, निराधार अवस्था में भी उसकी कला को धुँधली नहीं होने देता था।

राजेश्वरी आगे बढ़ी। वह कहाँ जायगी ? क्या करेगी ? भूख और निद्रा यदि संसार से अदृश्य हो जायँ तो मनुष्य अवश्य देवता बन जाय—लेकिन ये दोनों तीव्र मर्यादाएँ मनुष्य को मनुष्य ही बनाए रखती हैं—बल्कि कभी-कभी पशु भी बना देती हैं।

राजेश्वरी को कहीं नौकरी मिलना भी कठिन था। वह दूसरा और क्या कर सकती है ? एक चाय की दूकान में आठ दस मुसलमान बैठ कर स्त्री की पोशाक पहने हुए एक लड़के का मधुर गाना सुन रहे थे। एक आदमी ढोलक बजा रहा था, और एक आदमी हाथ से ताल दे कर साथ ही बीच बीच में उस लड़के के साथ गाकर उसको मदद दे रहा था। राजेश्वरी ने सोचा कि क्या उसका संगीत उसको जीविका नहीं दिला सकता ? असभ्य समाज में रहने पर संगीत उसका ही नहीं, उसकी माता का भी पोषण करता था, सभ्य-समाज में रह कर क्या यह नहीं हो सकता ?

उसकी विचार-मालिका टूट गई। पास के मंदिर से कोई

भव्य मधुर स्वर आ रहा था। पद्मनाभ उसको जिस मंदिर में ले जाने की चेष्टा किया करता था, वही मंदिर! जिस मंदिर के पवित्र संगीत-स्वर को सुन कर उसका हृदय विकार-रहित हो जाता था, वही मंदिर और वही स्वर। सीढ़ी के पास जा कर वह खड़ी हो गई! सीढ़ी के किनारे पर एक स्त्री मुँह ढाँक कर बैठी थी। बीच-बीच में वह आँखें पोंछती हुई मालूम देती थी।

इस तरफ राजेश्वरी अनायास ही खिंच आई थी। उसने मंदिर से आते हुए स्वर को सुना। गाना सुनने वाले के हृदय में स्वतः भी गाने की इच्छा प्रबल हो उठती है। राजेश्वरी सीढ़ी पर बैठ गई। मंदिर से आने वाला स्वर बन्द हो गया। साथ ही राजेश्वरी के गले से स्वर की धारा बाहर निकलने लगी—

'श्री गिरधर आगे नाचूँगी,
नाच नाच पिय रसिक रिझाऊँ, प्रेमीजन को जाचूँगी।'

राजेश्वरी नीचा मुख कर के गा रही थी। उसे यह नहीं मालूम हुआ कि वह मुँह ढाँक कर बैठी हुई स्त्री इस समय मुँह खोल कर देख रही थी। संध्या हो रही थी। दस-बीस आरोही भी गाना सुनने के लिये खड़े हो गये थे। भीतर से शिवनाथ शास्त्री बाहर निकल आये—साथ ही वह मुँह ढाँक कर बैठी हुई स्त्री उठकर चली गई। वह एक दम से वहाँ से उठ कर नहीं जा सकी, उसने मार्ग के दूसरी तरफ खड़े हो कर पूरा गाना सुना।

शिवनाथ शास्त्री विमूढ़ से खड़े रहे—फिर जाती हुई स्त्री को आवाज दी—'नारायणी!'

गाने में विक्षेप पड़ा। कोई परिचित नाम बहुत वर्षों के बाद पुकारा गया हो; ऐसा राजेश्वरी को मालूम हुआ। उसने गाना बन्द कर दिया। स्वर का स्वच्छ निर्मल वातावरण चारों तरफ छा गया था।

'बेटी ! तुम कौन हो ? कहाँ से आई हो ?'—शिवनाथ शास्त्री ने पूछा।

'दुःख की मारी हुई हूँ—आज की रात मंदिर में पड़ रहूँ ?'

'तुम्हारी जब तक इच्छा हो तब तक रहो। भगवान को गाना सुनाना और बस आओ बेटी, भीतर आओ।'

राजेश्वरी उठ कर दरवाजे तक गई, लेकिन वहीं रुक गई।

'क्यों बेटी, रुक क्यों गई ? डरो मत, भीतर भगवान विराजते हैं ?'

'पर मैं प्रभु को अपवित्र कर दूँगी तब ?'

'पागल ! पतित-पावन राम को अपवित्रता छू ही नहीं सकती। उनका स्मरण और दर्शन सब पापों को दूर कर देता है।'

'आप पूछिये तो सही कि मैं कौन हूँ ?'

'मैं पूछने वाला कौन ? शबरी के बेर खाये, गणिका को शुक पढ़ाते हुए तारा—उस प्रभु के धाम में जाते हुए से मैं पूछने वाला कौन ?'

राजेश्वरी स्थिर रही। शिवनाथ न पूछें तो भी मुझे कह देना चाहिये; ऐसा उसके मन में विचार उठा।

'मैं भी एक गणिका हूँ !'

शिवनाथ अब स्थिर हो गये। उन्होंने राजेश्वरी की तरफ

ध्यान से देखा—कितना सुन्दर मुख? कितना अलौकिक रूप? उस रूप के ऊपर कला ने कितनी तेजस्विता चढ़ा दी है? यह रूप अपवित्र न हुआ तो कैसा अच्छा? मुख की कोमलता पाप की सूचना नहीं देती थी। फिर भी ऐसे कितने ही कोमल दिखते हुए मुख लोलुपता के पञ्जे में पड़ जाते हैं। शिवनाथ को इन विचारों ने कँपा दिया।

'कोई हर्ज नहीं, आओ—हम सभी पापी हैं!'

शास्त्री ने राजेश्वरी को रामचन्द्र के दर्शन कराये। राजेश्वरी ने भाव-पूर्वक प्रणाम किया। शास्त्री ने पूजा, आरती आदि की और राजेश्वरी को दूध और फल ला कर दिया।

राजेश्वरी ने शान्त और पवित्र दुनियाँ देखी। रस-शास्त्रियों ने शान्त रस की भी गणना रस में की है। वृत्तियाँ सात्त्विक भाव में स्नान कर के ठंढी पड़ती हों; ऐसा उसको मालूम हुआ। राम नाम की धुन लगाने वाले शिवनाथ शास्त्री की एकाग्रता आज टूट रही थी। राजेश्वरी की चिन्ता उनको भक्ति में विघ्न रूप हो गई थी। लेकिन सब रामजी के इच्छानुसार ही होता है; ऐसी दृढ़ धारणा वाले शास्त्री विघ्न का भी राम भक्ति के साथ समन्वय करते, और राजेश्वरी की चिन्ता को रामचन्द्र की पूजा ही मानते।

'बेटी! अब तुम सो जाओ—मैं बिछौना ला दूँ।' शास्त्री ने कहा। शास्त्री को अपने लिये बिछौने की आवश्यकता नहीं थी। वे चटाई, मृगचर्म या दर्भासन पर सो रहते और असह्य शीत में कम्बल ओढ़ लेते। लेकिन मंदिर की धर्मशाला में

बिछौना रहता था या मंदिर के अगले भाग में रहने वाले किरा-येदार शास्त्री के माँगने पर प्रत्येक वस्तु देने के लिये तैयार रहते थे।

'जी नहीं, मैं तो जमीन पर ही सो रहूँगी।'—राजेश्वरी ने उत्तर दिया।

'यह कैसे हो सकता है? ऐसा कोमल शरीर! भगवान अप्रसन्न होंगे।'

'मैंने व्रत लिया है कि जमीन पर ही सोना।'—एकाएक राजेश्वरी ने उसी समय व्रत ले लिया। नवीन परिस्थिति में रहने के लिए सुख के सभी साधनों को परित्याग करना पड़ेगा; ऐसा राजेश्वरी को मालूम हुआ।

'तुम्हारी इच्छा! बेटी, शरीर को बहुत कष्ट नहीं देना चाहिये।'—कह कर शास्त्री ने एक वस्त्र सिर के नीचे रखने के लिये और एक ओढ़ने के लिये ला दिया। राजेश्वरी सो गई। उसके मन में विचार-तरंगें उठने लगीं—शास्त्रीजी तो पवित्र दिखाई देते हैं, लेकिन उनकी वृत्ति सर्वदा पवित्र रहेगी? इसी मंदिर के अगले भाग में पद्मनाभ ने उसको फँसाने की चेष्टा की थी। यद्यपि शास्त्रीजी का गायन वातावरण को विकार-रहित बना देता था। संगीत वृत्तियों को उच्चता का अनुभव कराता है। परन्तु मंदिर हर तरह से सुरक्षित है?

'बेटी, कुछ चिन्ता मत करना। यहाँ तो राम रखवाला है। आराम से सो रहो।'—लेटे-लेटे हिलती हुई राजेश्वरी से शास्त्री-जी ने कहा।

राजेश्वरी जरा शर्मा गई। शास्त्री के लिये शंका करने के कारण उसे पछतावा हुआ। राम-नाम का सतत जप करने वाले पवित्र पुरुष के लिये किसी तरह की शंका न करने का उसने निश्चय किया।

परन्तु थोड़े ही समय में उनके जीवन में कैसा फेर-फार हो गया। सम्पूर्ण शरीर घुस जाय; ऐसे मुलायम बिछौने पर सोने वाले शरीर को पत्थर की पटियों पर सुलाया था। किसलिये? गणिका-जीवन से वह ऊब गई थी। गणिका-जीवन की पहली सीढ़ी पर पैर रखते ही उसे सम्पूर्ण गणिका-जीवन की कृत्रिमता और निरर्थकता मालूम हो गई। मुलायम बिछौना धुएँ की तरह असत्य मालूम हुआ और पत्थर की पटिया में शरीर को जागृत रखनेवाला सत्य प्रकट होता हुआ मालूम हुआ। विवाहित स्त्रियों को जमीन पर निद्रा कैसे आती होगी; इसका ख्याल आया। अविनाश के साथ इससे भी ऊबड़-खाबड़ जमीन में नींद नहीं आ सकती? हाथ पर सिर रक्खे रहे, हाथ में दर्द हो तो अविनाश के सीने पर रक्खा जा सकता है। घड़ी दो घड़ी, रात दो रात, आनन्द उठा कर जाने वाले मनुष्य कभी जमीन पर बैठ सकते हैं? कभी वह एक गणिका के सिर को—विह्वल हुए बिना सीने पर रख सकते हैं?

'शास्त्रीजी!'—दरवाजे से एक आवाज आई।

राजेश्वरी ने कपड़ा मुँह पर ओढ़ लिया। पत्थर के एक एक अणु से मृदुता फूट कर निकलती हुई मालूम हुई। यह आवाज़

अविनाश को थी। राम-नाम का जप छोड़कर शास्त्री बोले— 'अविनाश ! तुम इस समय कहाँ से ?'

'मैं आप से कुछ पूछने आया हूँ।'—पास आ कर बैठते हुए अविनाश ने उत्तर दिया। उसके पास ही रजनी भी चुपचाप आ कर बैठ गया।

'इस समय क्या पूछना है ? अर्ध रात्रि हो रही है !'

'गणिका के साथ विवाह हो सकता है या नहीं ?'

रामचन्द्र आज कुछ चमत्कार दिखाना चाहते हैं क्या ? एक गणिका शास्त्रीजी के एक तरफ सोई हुई थी ! गणिका-विवाह का आलोचना करने वाला पागल दूसरो तरफ बैठा था। वह क्या वास्तव में पागल था ?

'हाँ, हो सकता है। सीधी सी बात है—जिनके हृदय मिल गये हों, वह अवश्य विवाह कर सकते हैं।'

'मैं शास्त्र की व्यवस्था चाहता हूँ। शास्त्र क्या कहते हैं ?'— अविनाश ने पूछा।

अविनाश कभी कभी विवाह के सम्बन्ध में प्राचीन व्यवस्था पूछा करता था। इसी तरह का यह भी प्रश्न होगा, ऐसा शास्त्री जी ने सोचा। 'हाँ, हाँ, शास्त्र ने गणिका का संसर्ग त्याज्य भले ही माना हो, पर गणिका के साथ विवाह करना त्याज्य हो, यह मैं नहीं जानता।'

'ऐसा कोई उदाहरण है ?'

'विश्वामित्र और मेनका—उर्वशी और पुरुरवा......।'

'ऐसे विवाहों को शास्त्र का आधार मिला था या ये व्यक्तिगत स्वतंत्रता के दृष्टांत हैं ?'

'अरे, असुर और पिशाच-विवाह को शास्त्र का आधार है, फिर ऐसे विवाह में क्या अड़चन है ? गान्धर्व-विवाह में वह आ सकता है, और अगर कोई कन्यादान देने वाला मिले तो आर्ष विवाह में आ जायगा।'

'अब तुमको संतोष हुआ ? शास्त्रीजी की विद्वत्ता को तुम जानते हो न ?'—रजनी ने अविनाश से कहा और उसका हाथ पकड़ कर उठाया।

'क्षमा कीजियेगा शास्त्रीजी !—मैं आज्ञा लेता हूँ। आपको रात्रि में कष्ट दिया।'—कह कर, नमस्कार कर अविनाश जल्दी से आगे बढ़ा। रजनी को कुछ पूछना था। इससे वह बोला—'तुम चलो मैं एक क्षण में आता हूँ।'—कह कर जैसे ही रजनी शास्त्रीजी की तरफ घूमा; वैसे ही उसकी आँखें एक सुन्दर मुख पर पड़ीं। राजेश्वरी का स्वास रुक रहा था। उसने ओढ़ने का वस्त्र हटा दिया था। उसका हृदय उछल रहा था। वह सोई नहीं रह सकी। अविनाश आगे बढ़ा, और वह उठ कर बैठ गई। रजनी उसे देख कर चौंक उठा, और शास्त्रीजी से कुछ पूछने के बदले, वह अविनाश के पीछे चला गया।

२६

घर छोड़कर निकले हुए अविनाश ने अपनी सब बातें रमा से कहीं। रमा को भी अविनाश का पागलपन अच्छा लगा। स्त्री-हृदय ही इतना सरल होता है कि वह प्रत्येक बात में सहानुभूति दिखाता है। हाँ, वह सत्य कथन चाहता है। पुत्र की कमजोरियाँ, पति के दोष, यह सभी वह सहानुभूति के साथ सह लेती है। रमा ने यह कथा डरते-डरते सुनी, डरते-डरते उसने इस प्रसंग की निर्दोषता स्वीकार की और डरते-डरते ही उसने अविनाश के कार्य में सम्मति भी प्रकट की।

'रमा भाभी! विवाह करूँगा तो राजेश्वरी के साथ ही करूँगा!'—अविनाश के ऐसे शब्दों का रमा ने सत्कार किया—'और अविनाश भाई! आपके विवाह में यदि कोई नहीं भी आवेगा तो मैं जरूर आऊँगी।'

संध्या समय तक अविनाश ने रजनी की प्रतीक्षा की। वह रजनी को संग लेकर राजेश्वरी के यहाँ जाना चाहता था। वह राजेश्वरी की शर्त के अनुसार विवाह करने के लिये तैयार था। इसमें राजेश्वरी का आकर्षण तो था ही, साथ ही समाज के अत्याचार से भी वह रुष्ट था। समाज गणिका के गुप्त सम्बन्ध को चुपचाप हजम कर जाता है, डकार तक नहीं लेता और उन्हीं गणिकाओं के साथ अगर कोई विवाह कर ले तो उसकी नीतिमत्ता रसातल में जाने लगती है। अविनाश का विचार राजेश्वरी

के साथ विवाह कर के समाज को फटकार देने का था।

रजनी समय पर नहीं आया। इसीलिये अविनाश हठ कर के वहाँ से चला गया। राजेश्वरी से मिल कर वह कहना चाहता था कि विवाह की शर्त उसे मंजूर है। पर स्पर्श करने की मनाही है उसका क्या··· ? उसको आत्मा तो स्पर्श चाहती थी।

यदि स्पर्श करने की मनाही बनी भो रही तो भी उसके सतत दर्शन का लाभ तो मिलता ही रहेगा ! राजेश्वरी को देखने के लिये उसकी आँखें कितनी अधीर हो रही थीं ? रमा के पास से दौड़ कर वह राजेश्वरी के घर गया। राजेश्वरी अविनाश को सम्मति सुन कर कितनी प्रसन्न होगी, इसकी कल्पना करता हुआ प्रेमी प्रेमिका के घर गया। वहाँ समाचार मिला कि राजेश्वरी घर छोड़कर चली गई है।

अब ? जीवन में पहली ही बार उसे अपने प्रिय पात्र के खो जाने की व्यथा का अनुभव हुआ। जानकी की गालियों को सुनने का उसे अवकाश नहीं था। राजेश्वरी को गये अभी थोड़ी ही देर हुई थी, शीघ्रता करने से उसका पता लग जायगा, यह सोच कर अविनाश पहले लज्जावती के यहाँ गया।

दोपहर को निद्रा के बाद लज्जावती बैठी हुई शृंगार कर रही थी। अविनाश ने जब राजेश्वरी का समाचार कहा; तब उसे भी आश्चर्य हुआ। अगर वेश्यावृत्ति करनी होती तो वह जरूर यहाँ ही आती। पर वह जानकी के पास भी नहीं है और यहाँ भी नहीं आई ! वह कहाँ गई होगी ? लज्जावती और अविनाश दोनों को ही चिन्ता उत्पन्न हुई।

वहाँ से निकल कर गाड़ी कर के अविनाश पद्मनाभ के यहाँ पहुँचा। पद्मनाभ किसी सभा में गया था। सभा-स्थान खोज कर अविनाश वहाँ पहुँचा और सभा के कार्य के बीच में ही उसने धीरे से पद्मनाभ से पूछा। इस पागल के पागलपन से चकित होकर पद्मनाभ ने सभा के बाहर आ कर उसको विश्वास दिलाया कि वह राजेश्वरी का कुछ भी हाल नहीं जानता। अविनाश कीका सेठ के यहाँ गया। उदार कीका सेठ किसी से मिलने में कृपणता दिखाएँ ऐसे नहीं थे। उन्होंने अविनाश को बुलाया। लेकिन अविनाश के प्रश्नों को सुन कर वह समझ गये कि सब से मिलने की मूर्खता नहीं करनी चाहिये! अविनाश ने आने के साथ ही पूछा—'राजेश्वरी कहाँ है, यह आप जानते हैं?'

'जहन्नुम में गई—मुझे क्या मालूम?'—सेठजी को स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि आने वाला व्यक्ति ऐसी प्रतिष्ठा-भंग की बातें करेगा।

'वह कहाँ होगी, यह आप कह सकते हैं?'

'मैं उसका चौकीदार हूँ? जाओ, अपना रास्ता लो? इस तरह से पैसा निकालने की युक्ति मेरे साथ नहीं चल सकेगी।'—सेठजी को मालूम हुआ कि राजेश्वरी का नाम लेकर यह अनजान मनुष्य उनसे पैसा वसूल करने की तदबीर कर रहा है।

अविनाश फिर वापस राजेश्वरी के मकान की तरफ गया। दरवान ने उसे घर में घुसने नहीं दिया। वह बहुत देर तक इधर उधर चक्कर काटता रहा। राजेश्वरी के मकान में आज

प्रतिदिन की सी रोशनी नहीं थी। दो तीन बार जानकी बरामदे में आकर खड़ी हुई। वह अपने अंचल का कोना बार बार आँखों से लगा रही थी। यह देख कर अविनाश समझ गया कि राजेश्वरी घर में नहीं है।

उसे कहाँ खोजना चाहिये? जहाँ-जहाँ वह हो सकती थी, वहाँ तो नहीं है। एक दो दलालों ने उसके पीछे पड़ कर उसे चिढ़ाया। राजेश्वरी का गुम होना अविनाश को उग्र बना रहा था। वह वहाँ से जाना ही चाहता था, इतने में रजनी ने उसका हाथ पकड़ा। अविनाश को खोजने निकला हुआ रजनी यह समझता था कि अविनाश राजेश्वरी के यहाँ ही होगा। राजेश्वरी के मकान में तो नहीं, पर उसके दरवाजे पर वह चक्कर काट रहा था।

रजनी ने हाथ पकड़ कर आवाज दी—'अविनाश!'

'राजेश्वरी का पता नहीं है।'—मन में चक्कर देती हुई बात अविनाश ने कही।

'इसमें हम लोग क्या कर सकते हैं?'

'हम लोगों को पता लगाना ही चाहिए।'

'इसकी आवश्यकता क्या है?'

'मैं उसके साथ विवाह करना चाहता हूँ।'

'यह तुम उसके घर के सामने घोषित करना चाहते हो?'

'मुझे राजेश्वरी से कहना है।'

'वह आज नहीं तो कल मिल ही जायगी। मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।'

'क्या ?'

'तुम विवाह करना चाहते हो—मान लो कि राजेश्वरी भी तैयार है। माँ-बाप और मित्रों की नाराजी, सामाजिक बहिष्कार, यह भी हम लोग सह लेंगे, लेकिन विवाह एक धार्मिक क्रिया है—यह तुम जानते हो न ?'

'इसमें तुम नई बात कौन-सी कहते हो ?'

'वह धार्मिक क्रिया कौन करावेगा यह कभी सोचा है ?'

'कोई भी ब्राह्मण करा सकता है।'

'तुम्हारे मन ने बहुत से ब्राह्मण खोजे होंगे ?'

'दक्षिणा थोड़ी अधिक दे दी जायगी।'

'अधिक दक्षिणा के विचार से भी कोई ब्राह्मण गणिका का विवाह कराने के लिये तैयार हो जायगा ?'

अविनाश को मालूम हुआ कि विवाह का प्रश्न सरल नहीं है। गणिका के यहाँ प्रतिदिन जाने वाला ब्राह्मण भी गणिका का विवाह कराने में ब्राह्मणत्व का नाश देखे, यह सम्भव था।

'किसी आर्य-समाजी पंडित को बुला लिया जायगा।'—अविनाश ने रास्ता निकाला।

'यदि राजेश्वरी अंत्यज होती तो आर्य-समाजी पंडित को सुविधा होती। लेकिन गणिका का विवाह कराने के लिये उनकी सम्मति है या नहीं यह मैं नहीं जानता।'

'तब सिविल-मैरेज कर लूँगा।'

'हाँ, यह हो सकता है यदि कोई दो प्रतिष्ठित मनुष्य गवाही

देने वाले मिल जायँ तो—और राजेश्वरी भी इसे मंजूर कर ले तो !'

'हम लोग दो-चार पंडितों से पूछ देखें।'

'कल वह भी किया जायगा। आज तो मैं थक गया हूँ।'

'तब तुम जाओ। मैं तो विवाह की बात ठीक करके ही आऊँगा।'

'अरे भाई, तुमको अकेला नहीं छोड़ा जा सकता।'

'तब चलो—हम लोग गाड़ी कर लें।'

दोनों मित्र गाड़ी करके दो-चार अच्छे पंडित और कर्मकांडी ब्राह्मणों के यहाँ गये। अविनाश की योजना सुन कर वे आश्चर्य-चकित हो गये। गणिका के यहाँ जाने में पाप नहीं है ? है, पर उसका प्रायश्चित्त हो सकता है। लेकिन उसके साथ विवाह करने की आज्ञा तो शास्त्र देता ही नहीं और उस आज्ञा के बिना कुछ भी कार्य होने से इस कलिकाल में बड़ा अनर्थ हो सकता है, ऐसी उनकी धारणा थी। चाहे जितनी दक्षिणा मिले; पर वे लोग गणिका का विवाह कराने के लिये तैयार नहीं थे। हाँ, विदेश जाकर पतिता का नाम छिपा कर विवाह करने में हर्ज नहीं है। ऐसी सलाह भी एक दो आदमियों ने दी।

'फिर भी अपने शिवनाथ शास्त्री से पूछ देखिये।'—विरुद्ध मत देने पर भी एक पंडित ने रास्ता बताया। शिवनाथ शास्त्री के शास्त्र ज्ञान और ऐतिहासिक ज्ञान के लिये अविनाश के मन में सम्मान था। विवाह के प्राचीन सिद्धान्तों को जानने के लिये वह कभी-कभी उनसे बात-चीत करता था। उनका नाम

सुन कर वह उनके यहाँ गया और अर्धरात्रि होने पर भी उनकी सम्मति अपने अनुकूल प्राप्त की।

रजनी उनसे पूछना चाहता था कि वह स्वयं विवाह करावेंगे या नहीं? इतने में उसने राजेश्वरी का मुख देखा। गणिका को आश्रय देने वाला मनुष्य उसका विवाह कराने का साहस न करेगा, उसका मन यह मानने के लिये तैयार नहीं था। अविनाश और राजेश्वरी की इसी समय मुलाकात करा कर वह समय नष्ट करना भी नहीं चाहता था।

गाड़ीवान को पैसे देने के लिये अविनाश ने अपनी आदत के अनुसार जेब में हाथ डाला। लेकिन उसके पास तो आज कुछ भी नहीं था। वह स्तब्ध हो गया। परन्तु उसके पहले ही रजनी ने गाड़ी का किराया चुका दिया था। अविनाश को अपनी निर्धनता का पहले पहल खयाल हुआ। क्या वह अपने गरीब मित्र पर भारस्वरूप हो कर रहेगा?

'अविनाश! एक पत्रकार के यहाँ से एक माँग आई है।'— सीढ़ी चढ़ते हुए रजनी ने कहा।

'किस चीज को?'

'उसको एक लेख-माला चाहिए।'

'किस विषय पर?'

'समाज की प्रगति पर नियमों का असर।'

समाज और नियमों पर फटकार लगाने की वृत्ति तो अविनाश में तीव्र हो ही गई थी। उसने पूछा—'तुमने किसी लिखने वाले को ठीक किया है क्या?'

'नहीं भाई, मैं तो तुम्हारे भरोसे बैठा हुआ हूँ। पत्रकार तो मुझे पहले से पुरस्कार भी दे चुका है।'

'अर्थात् वह पुरस्कार देगा ?'

'अपने राम मुफ्त में मेहनत करते भी नहीं, और किसी को करने देते भी नहीं—तुम लिखोगे ?'

अविनाश को अभी थोड़ी देर पहले ही पैसों की आवश्यकता मालूम हुई थी। अपने पैर पर अपने आप खड़े हो सकने का प्रसंग देख कर उसने स्वीकार कर लिया। केवल एक शर्त की—'देखो रजनी—मैं लिख तो सकता हूँ, पर मेरे लेख में कोई फेरफार नहीं कर पावेगा।'

'भूल हो तब भी नहीं ?'

'नहीं।'

'मंजूर है—कल से लिखना शुरू कर दो।'

इतना कह कर रजनी ने अपने निर्धन बन गये हुए मित्र के लिये धन-प्राप्ति का एक मार्ग निकाल दिया। दिन भर के भूखे-प्यासे अविनाश और रजनी को रमा ने भोजन कराया। भोजन करते हुए रजनी ने रमा से पूछा—'तुम्हारी गंगा बहन का कुछ इतिहास है या नहीं ?'

'सब इतिहास ही है—तुमको किसी का दुख देखना है ?'

'नहीं जी, अपने से किसी का दुख देखा नहीं जाता। विक्रम भाई जैसा अपना स्वभाव है—उनको भोजन कराया न ?'

'हाँ।'

'और उस लड़के के सम्बन्ध में कुछ कहने लायक नहीं है ?'

'हँसी मत करो—वह बेचारा तो बीमार है।'

'उसके लिये तुमको या मुझको दवा लानी होगी? कोई हर्ज नहीं, हम लोग अविनाश के विवाह की बातें करें।'

कुछ देर तक विवाह की बातें होती रहीं; पर थकावट के कारण दोनों मित्र शीघ्र ही सो गये। सवेरे अविनाश को लेख-माला शुरू करा कर रजनी घर के बाहर निकला और शिवनाथ शास्त्री के मंदिर के पास आया। उसके कान में आवाज़ पड़ी—'रजनी कान्त साहब!'

पीछे घूम कर देखने पर वृद्ध दरवान मुहम्मद हाथ में लकड़ी लिए जल्दी-जल्दी उसी की तरफ आता हुआ दिखाई दिया।

'भाई का कुछ समाचार जानते हैं?'

'हाँ, मेरे यहाँ ही है!'

'खुदा उनको सलामत रखे! हम लोगों का दिन और रात कैसे कटी वह क्या कहूँ? दुश्मन को भी भगवान वह दिन न दिखावे!'—वृद्ध मुहम्मद की आँखों में पानी भर आया। सुमंतराय ने चारों तरफ आदमी दौड़ाये थे। पहले दिन वाली कठोरता उनके हृदय से गायब हो गई थी। और प्रभालक्ष्मी ने तो अन्न-जल परित्याग कर दिया था। पद्मनाभ के यहाँ आदमी भेजा, रजनी के यहाँ आदमी भेजा, उन दोनों को अपने यहाँ बुलाया। और अधीर बन गया हुआ मुहम्मद भी अविनाश को खोजने लगा। उसने रजनी को रोक कर अपने मालिक के लड़के की खबर पूछी। रजनी मंदिर में जाने लगा। मुहम्मद ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'आप पहले साहब के पास चलिए और

अपने मुँह से भाई की खैरियत उनसे कहिए, उसके बाद जहाँ इच्छा हो वहाँ जाइएगा।'

मुहम्मद से वह इनकार नहीं कर सका। वह घर में जाकर सीधा सुमंतराय के पास गया। सुमंतराय गम्भीर मुँह कर के बैठे थे। सामने प्रभालक्ष्मी बैठी थीं। रजनी को देखकर वह रोने लगीं।

'अविनाश तो मेरे यहाँ है।'—रजनी ने समाचार कहा। इतने में पद्मनाभ भी आ गया।

'कब तक तुम्हारे घर रहेगा?'—सुमंतराय ने पूछा।

'उसका क्या ठिकाना? आप तो जानते ही हैं!'

अविनाश को मना लाने की तरकीबें सोची जाने लगीं। मनमानी स्त्री को उपपत्नी के रूप में रख देने की सम्मति प्रकट की गई। और यदि वह इस पर भी न माने तो उसे विवाह कर लेने तक की बात चली—परंतु सुमंतराय ने कहा—'वह अपने इच्छानुसार विवाह करेगा तो मैं उसके विवाह में तो नहीं हो जाऊँगा।'

पद्मनाभ और रजनी ने अपने भरसक प्रयत्न करने का वचन दिया। वहाँ से उठ कर पद्मनाभ राजेश्वरी के घर मिलने गया। उसको मालूम नहीं था कि राजेश्वरी घर छोड़ कर निकल गई है। उसे प्रकट नहीं करना था कि वह कहाँ जायगा। लेकिन रजनी तो जानता ही था कि राजेश्वरी पास के मंदिर में है।

'तुम अब कहाँ जाओगे?'—सुमंतराय ने रजनी से पूछा।

'जी, मैं पास के मंदिर में जाता हूँ। राजेश्वरी यहीं है।'

रजनी ने उनको बतला दिया कि अविनाश का मन जिस युवती पर रीझा है, उसका नाम राजेश्वरी है।

'वहाँ जा कर क्या करोगे?'

'उसको समझाऊँगा कि वह अविनाश का विचार छोड़ दे।'

'मैं भी चलूँ?'

'आवश्यकता तो नहीं है—आगे आपकी इच्छा!'

'मैं भी चलूँगा।'—लालच या धमकी से राजेश्वरी का मोह कम कर देने की आतुरता के कारण उन्होंने कहा।

दोनों आदमी मंदिर की तरफ गये। पीछे से प्रभालक्ष्मी भी पहुँच गई। शिवनाथ शास्त्री आश्चर्य में पड़ गये। यद्यपि दोनों पति-पत्नी कभी-कभी मंदिर में दर्शन करने आते थे।

राजेश्वरी सफेद वस्त्र पहन कर बैठी हुई माला गूँथ रही थी। थोड़ी देर पहले उसने झाड़ू से मंदिर धो डाला था। रजनी को देख कर राजेश्वरी जरा संकुचित हुई।

'पधारिये रायजी! भगवान का दर्शन कीजिए।'—शास्त्री जी ने कहा।

तीनों व्यक्तियों ने भगवान को प्रणाम किया और जमीन पर बैठ गये।

'यह एक लड़की मिल गई है—पार्वती जैसी इसकी तपस्या है।'—शास्त्रीजी ने राजेश्वरी का परिचय देते हुए कहा। राजेश्वरी ने पति-पत्नी को प्रणाम किया। लेकिन जब रजनी ने अविनाश के माता-पिता कह कर उनका परिचय दिया; तब राजेश्वरी प्रभालक्ष्मी के पास गई, उनके पैरों पर सिर रखा और

उनका पैर दबाते हुए वहीं बैठ गई। प्रभालक्ष्मी भावी वधू का यह शिष्टाचार देख कर मोहित हो गई। सुमंतराय को भी उसका व्यवहार देख कर तिरस्कार कम हो गया। रजनी उसको समझाने लगा और अंत में बोला—'आप अविनाश को चाहती हैं ?'

'तो क्या यों ही मैं अपना सर्वस्व छोड़ कर यहाँ आई हूँ ?'

'आपने अपना सर्वस्व अभी नहीं छोड़ा है ?'

'जो बाकी रह गया हो वह कह दीजिये।'

'अपना प्रेम !'

'वह कैसे छोड़ा जा सकता है ?'

'छोड़ा नहीं जा सकता ; पर उसका बलिदान दिया जा सकता है।'

'वह कैसे ?'

'आपका प्रेम उस पर नहीं है, ऐसा दिखला कर।'

'तब मैं फिर गणिका बन जाऊँ ?'

'यह आप जानिए। लेकिन ऐसा न करने से जिस अविनाश को आप चाहती हैं, उसका भविष्य जीवन निरर्थक और निष्फल बन जायगा ! आप उसकी सफलता चाहती हैं या अपने प्रेम को ?'

राजेश्वरी विचार में पड़ गई। उसने सुमंतराय की तरफ देखा, प्रभालक्ष्मी की तरफ देखा, और शास्त्रीजी की तरफ देखा। गणिका के साथ विवाह करने की शास्त्र-चर्चा का अविनाश का उद्देश्य शास्त्रीजी अब समझ गये। उन तीनों व्यक्तियों के चेहरे पर राजेश्वरी ने दया की छाप देखी। पर उस दया का उपयोग क्या ?

'बेटी ! मनुष्य की तरफ मत देखो—भगवान् की तरफ देखो !'—शास्त्रीजी ने कठिनता में पड़ी हुई राजेश्वरी को सहारे के लिये कहा।

लेकिन उसने किसी तरफ नहीं देखा। पागल जैसी उसकी आँखें जमीन पर स्थिर हो गईं। उसने अपने कपाल पर जोर से हाथ मारा।

प्रभालक्ष्मी ने उसका हाथ पकड़ लिया, जरा स्थिर होकर राजेश्वरी ने रजनी से कहा—'ठीक है, आप जैसा कहते हैं, मैं वैसा ही करूँगी।'

'अर्थात् ?'

'मैं अपने लिये बने हुए व्यवसाय में ही लगी रहूँगी।'

'व्यवसाय जानते हुए भी अविनाश आपको चाहता है।'—रजनी ने जरा भय के साथ कहा।

'जी हाँ, पर मैं ऐसा करूँगी कि उनको मेरे प्रति तिरस्कार उत्पन्न हो।'

सब स्तब्ध हो गये। सबों के स्वांस बन्द हो गए। प्रियतम के निमित्त पतित बनने के लिये फिर से तैयार हुई वारांगना में किसी देवांगना का स्वरूप झलक उठा।

'नहीं, नहीं, बेटी तुम्हारा विवाह मैं कराऊँगा।'—शास्त्रीजी ने कहा।

'नहीं, शास्त्रीजी मैं यह नहीं चाहती।'

'क्यों ?'

'उनका भविष्य-जीवन मैं ही नष्ट करूँ ? भले ही मुझे स्वर्ग न मिले, पर मैं यह न होने दूँगी !'

थोड़ी देर बाद तीनों आदमी मंदिर के बाहर आये। तीनों के मन भारी हो गये थे। ऐसी स्वार्थ त्याग की मूर्तिमयी बाला का बलिदान कर के क्या वह दुनियाँ की पतितावस्था की उन्नति नहीं कर रहे थे।

'भले ही वह विवाह कर ले—केवल मैं आऊँगा नहीं।'—कह कर सुमंतराय ने जमीन की तरफ देखा।

उसी दिन शाम को राजेश्वरी ने जा कर पद्मनाभ को शरीर समर्पण करने की तत्परता दिखाई।

३०

पद्मनाभ ने राजेश्वरी को कीका सेठ के यहाँ जाने के लिये मना किया था। लेकिन वह वहाँ से उठ कर सीधे कीका सेठ के यहाँ ही गई।

राजेश्वरी के साथ बात करने के बाद रजनी का हृदय क्षुब्ध हो गया। अविनाश की भावी कार्य-परायणता को उसने एक तरफ रखा, और एक तरफ एक पतिता का जीवन रखा। तौल करने पर कौन-सा पलड़ा झुका? पतिता के जीवन पर एक नहीं; पर अनेक पुरुषों की कार्यपरायणता को निछावर किया जा सकता था। पतिता को सर्वदा पतिता ही बनाये रखने में पुरुष जाति का बहुत बड़ा अन्याय है। राजेश्वरी जैसा स्वार्थ-त्याग यदि विवाहित स्त्रियाँ दिखा सकें तो संसार से वैवाहिक सिद्धान्त कभी अदृश्य नहीं हो सकता।

'उन दोनों का विवाह होना ही चाहिए!'—रजनी ने

निश्चय किया। उसने अविनाश से कुछ नहीं कहा। कीका सेठ के यहाँ जा कर उसने सेठजी के नाम से निकले हुए लेख और तस्वीरें दिखा कर उनको प्रसन्न किया। उनके नाम से निकले हुए लेख में कुछ बातें ऐसी थीं कि दो एक बार उनको समझाने से ही सेठजी समझ सकते थे। सेठजी के कुछ परिचितों ने लेख पढ़ कर उनको उलहना दिया।

'वाह सेठजी! ऐसी बातों में हम लोग खड़े हो सकते हैं? इसकी अपेक्षा तो ठाकुरजी को एक छप्पनभोग लगाइए।'

'और कुछ नहीं तो ब्राह्मण भोजन कराइये!'—दूसरे ने कहा।

लेकिन गणिकाओं का विचार तक सेठजी को प्रसन्न रखता था—फिर वह भले ही उद्धार का हो या पतन का। उसकी गहराई में उतरने की आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने हँसते हुए कहा—'नये जमाने की नई बातें! सब करना पड़ता है राजा! अपने नाम के अनुसार।'

छप्पनभोग और ब्राह्मण-भोजन को एक ही झटके में पुरानी बातें बताने वाले सेठजी अपने निश्चय से डिगनेवाले न थे।

'पर इसमें करने योग्य क्या है?'—एक ने पूछा।

'वह रजनी से पूछो—यदि वह चला न गया होगा तो समझा देगा।'

लेकिन जाँच करने पर मालूम हुआ कि रजनी अभी-अभी गया है। रजनी ने बाहर निकल कर देखा कि राजेश्वरी दरवाजे पर खड़ी है। रजनी ने पूछा—'आप कहाँ से?'

'सेठजी से मिलने आई हूँ। और मैं कहाँ जा सकती हूँ?'—

उसने हँस कर उत्तर दिया। राजेश्वरी के हास्य में ऐसी चमक थी, जैसी दोपहर में नीर-रहित रेती में होती है। रजनी भयभीत हो गया। रजनी को प्रेम की सरिता एकाएक सूख कर भयानक मरुभूमि बनती-सी मालूम हुई। कितनी सतियों को हमलोग पतिता बना रहे हैं? पुरुषों के सुख के लिये शरीर बेचने वाली पतिता है? या धधकती हुई चिता में पुरुषों के द्वारा फेंकी हुई सतियों की श्रेणी?

'वापस चलिए। यहाँ मत जाइये।'—रजनी ने कहा।

'क्यों?'

'अविनाश आपका जप करता है।'

'ऐसा न करें, इसीलिये मैं यहाँ आई हूँ। आप लोग कृपा कर के अब मुझे पहचानिये मत।'

'आप से कहने में भूल हुई।'

'भूल है या ठीक है, इसका अनुभव कीजिए।'

'आवश्यकता नहीं है।'

'क्यों?'

'अविनाश आपके बिना जी नहीं सकता।'

राजेश्वरी जमीन की तरफ देखने लगी। आने-जानेवाले बटोही संध्या के धुँधले प्रकाश में युवक और युवती को देख कर अनेक प्रकार की कल्पना करते जा रहे थे। किसी को यह नहीं मालूम था कि यहाँ एक भयानक मानसिक युद्ध हो रहा है। अविनाश की कीर्ति के लिये राजेश्वरी ने अपनी कीर्ति पर काली चादर डालना चाहा था। वह प्रेम-ज्योति को हाथ

में ले कर उसको तेज करना चाहती थी। उसका हाथ जल गया, इससे क्या ? वह तो सम्पूर्ण शरीर जल जाय ऐसा प्रयोग करने जा रही थी। अविनाश को कीर्ति के लिये इतना करने वाली उसके प्राण के लिये क्या नहीं कर सकती थी ? रजनी ठीक कहता था, वह ठीक समय पर ठीक ही कहता था। राजेश्वरी जैसी प्रेम-भरी प्रमदा को कैसी बातें वापस ला सकती हैं, यह वह जानता था।

'तब मैं क्या करूँ ? मैं ही मर जाऊँ तो ?'

'आप दोनों जीते रहें और साथ रहें, हम लोग ऐसा करेंगे।'

'पद्मनाभ यही कहते हैं, आप भी यही कहते हैं—मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता।'

'आप वापस मंदिर में चलिए।'

'वहाँ जाकर क्या करूँगी ?'

'एक बार अविनाश से मुलाकात कीजिए।'

'क्यों दोनों को रुलाते हैं ?'

'अविनाश के लिये इतना सह लीजिये।'

'अच्छा, चलिये।'

राजेश्वरी रजनी के साथ मंदिर पर आई। सीढ़ी पर नारायणी मुँह ढँक कर बैठी थी। राजेश्वरी थक गई थी। वह सीढ़ी पर ही बैठ गई, और शास्त्रीजी का गाना सुन कर थकावट उतारने लगी। रजनी भीतर गया। गाना बन्द हो गया।

राजेश्वरी ने नारायणी को आँखें पोंछते देखा। राजेश्वरी ने पूछा—'आप रोज यहाँ आती हैं ?'

'हाँ।'

'भीतर क्यों नहीं जातीं ?'

'मुझे देवता का दर्शन अच्छा नहीं लगता—मुझे केवल गीत अच्छा लगता है।'

'तो इस तरह से मुँह क्यों ढाँके रहती हैं ?'

'मेरा मुख देखने योग्य नहीं है।'

'क्यों ?'

'रोग के कारण।'

राजेश्वरी चौंकी। गणिका प्रत्येक समय रोग पाती और फैलाती हैं। लेकिन इस स्त्री की चाल ढाल आधी भिखारिन और आधी भक्त जैसी थी।

'आपको कैसे हुआ ?'

'पुरुष किसी तरह से स्त्री को भोग कर छोड़ दे—फिर निराधार स्त्री पुरुष जाति से बदला लेती ही है। पुरुषों की लोलुपता में ही भगवान ने उनके लिये दंड छिपा रखा है।'

'पर रोग तो आपको हुआ था न ?'

'मुझे किसी पुरुष ने दिया, मैंने सैकड़ों पुरुषों को दिया, और वे सैकड़ों पुरुष हजारों की संख्या में अपने स्त्री-पुत्रों को दे रहे हैं—उसका कीटाणु बढ़ता ही जा रहा है।'

'आप कौन हैं ?'

'जो तुम हो, वही मैं थी !'

'कैसे जाना ?'

'तुम्हारे गाने से।'

'तब मुझे तो अपना मुख दिखाइए ?'

'तुमको तो नहीं हो।'

'क्यों ?'

'किसी समय मैं भी तुम्हारे ही समान सुन्दर थी।'

दोनों चुप हो गईं। थोड़ी देर तक शान्ति रही। फिर नारायणी ने पूछा—'तुम इस मंदिर में क्यों आया करती हो ?'

'मुझे अपना पूर्व जीवन छोड़ देना है।'

'वह कभी छूट ही नहीं सकता।'

'आपका कहना ठीक है। पर मुझे कुछ-कुछ आशा है।'

'किसी की उपपत्नी बनना है ?'

'नहीं।'

'तब ?'

'विवाह करना है।'

'यह तुम्हारी भूल है। तुमको वचन दे कर भी कोई पुरुष विवाह नहीं करेगा।'

'तब मैं मरना ज्यादा पसंद करूँगी।'

'हाँ, यह हो सकता है—तुम्हारे मन में पुरुषों के प्रति वैर-वृत्ति न जागृत हो तो।'

'यदि वैर-वृत्ति जागे तो ?'

'पुरुषों से कुछ बदला ले लेने का संतोष हो।'

'मेरी बहन ने भी ऐसा ही किया है।'

'तुम्हारी बहन भी है ?'

'हाँ।'

'उसका नाम क्या है ?'

'लज्जावती।'

'और तुम्हारा नाम राजेश्वरी ?'

'हाँ।'

नारायणी ने अपना मुँह और भी ढाँक लिया। फिर भी ढँके हुए मुख के भीतर से दो तेजस्वी आँखें राजेश्वरी को एक टक देख रही थीं। राजेश्वरी ने पूछा—'मेरा नाम आपने कैसे जाना।'

उत्तर में केवल रोने की आवाज सुनाई दी। स्थिर देखती हुई आँखों से पानी की धारा बहने लगी। राजेश्वरी कुछ पूछे, उसके पहले ही रजनी मंदिर से बाहर निकल आया। उसने राजेश्वरी से कहा—'मैं अभी जाता हूँ। कल अवश्य मिलूँगा।'

'मैं यहाँ क्या करूँगी ?'

'जो करना है वह हम लोग करेंगे।'

इतना कह कर नमस्कार कर रजनी चला गया। एकाएक नारायणी खड़ी होकर रजनी के पीछे तेजी से चली गई, थोड़ी दूर जा कर उसने रजनी को रोककर पूछा—'लड़की का क्या करना चाहते हो ?'—उसकी आवाज में क्रोध मालूम होता था।

रजनी ने क्या उत्तर दिया वह राजेश्वरी सुन नहीं सकी। दोनों आदमी तेजी से अन्धकार में विलीन हो गये। राजेश्वरी मंदिर में गई। शास्त्रीजी रामचन्द्र की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर खड़े थे। अभक्तों को व्यर्थ मालूम हो, इस तरह से वह एक घंटे तक खड़े रहे। ध्यान से निवृत्त होने पर उन्होंने राजेश्वरी

को अपने पीछे बैठी देखा। मंदिर, मंदिर का वातावरण, शास्त्रीजी की भावपूर्ण भक्ति राजेश्वरी के हृदय में शान्ति उत्पन्न करती थी। उसकी विकलता दूर हो गई। समाज और उसके संचालकों की अपेक्षा कोई अधिक शान्तिदायक शक्ति दुनियाँ में है, ऐसा उसको भास हुआ। उसे अनेक गीतों का और उसमें व्याप्त शान्त रस का स्मरण आया। मनुष्यों के लिये कला का होता हुआ उपयोग, उनके सुख के लिये शरीर समर्पण, उनके मनोरंजन के लिए रूप-प्रदर्शन, यह सब भगवान को समर्पित नहीं हो सकता? यह मानसिक-आध्यात्मिक समर्पण कितना शान्तिदायक है! कुरूप, असंस्कारी और लोलुप कीका सेठ की अपेक्षा भुवन-मोहन भगवान रामचन्द्र क्या अच्छे नहीं हैं?

राजेश्वरी ने एक घंटे के भीतर ही अपना मार्ग निश्चित कर लिया। उसके हृदय ने भक्ति-भाव का अनुभव किया। और भक्ति-भाव के बल से उसने निश्चय किया कि अशिष्ट सम्बन्ध का विचार कभी मन में नहीं लाना चाहिए। वह साध्वी बन जाय तो अविनाश अवश्य उसे भूल जा सकता है, कीका सेठ की रक्षिता की अपेक्षा भगवत-भक्ति करने वाली साध्वी का चित्र उसको अधिक अच्छा मालूम हुआ। उसने भगवत् भक्तिमय जीवन व्यतीत करना निश्चित किया।

रात को उसे शान्तिपूर्वक निद्रा आई। स्वप्न में उसने रामचन्द्र का दर्शन किया। सबेरे वह बहुत देर से उठी। शिवनाथ शास्त्री के प्रभात मधुर संगीत ने उसके स्वप्न को और भी उज्ज्वल बना दिया। स्वप्न की रोमांचक शान्ति के साथ

उसका हृदय बहुत देर तक चिपका रहा। विलीन होते हुए स्वप्न को प्रसन्न और प्रफुल्ल मन के साथ देखते-देखते उसकी नींद खुल गई। लेकिन आँखें खुल जाने पर एक संशय उसके मन को बार-बार हिला रहा था। स्वप्न में जिनको वह रामचन्द्र समझती थी, उनका मुख अविनाश जैसा क्यों था? वास्तव में क्या था? रामचन्द्र या अविनाश? अनेक रूप धारण करने वाला प्रभु, प्रियतम के स्वरूप में तो प्रकट नहीं हो रहा था?

इस सुखमय संशय की व्यग्रता में वह उठी। दिन चढ़ रहा था। शास्त्रीजी कभी से पूजा कर रहे थे। राजेश्वरी ने विचारा कि उसको जल्दी उठना चाहिये था। मंदिर की सफाई बेचारे शास्त्रीजी ने कर ली होगी! धर्म-स्खलन का उद्वेग अनुभव करती हुई राजेश्वरी जल्दी से नहा कर मंदिर में आई।

'शास्त्रीजी आज तो बहुत देर हो गई।'—क्षमा-याचना की जैसी वाणी में राजेश्वरी ने कहा।

'कोई हर्ज नहीं बेटी! पर आज तुमको उपवास करना है—अच्छा?'

'जी, आज कौन सी तिथि है?'

'आज शुभ तिथि है! फल खा सकती हो अगर तुमसे भूखे न रहा जाय तो।'

'मैं तो भूखी ही रहूँगी। फल की कुछ आवश्यकता नहीं है।'

'तब तो बहुत ही अच्छा। इतना चंदन, केसर और हल्दी एक साथ घिस कर तैयार कर लेना।'

'हल्दी किस लिये?'

'इससे पोठी तैयार होगी।'

'पोठी ? किसके लिये ?'

'तुम्हारे लिये।'

'क्यों ?'

'आज शाम को तुम्हारा विवाह है !'

राजेश्वरी के हाथ से सफाई करने वाला कपड़ा जमीन पर गिर गया। चाँदनी जैसी शीतलता युक्त पारिजात के मधुर सौरभ से भरे हुए घन ने उसको चारों तरफ से घेर लिया। अकथ्य माधुर्य से घबड़ा कर वह जमीन पर बैठ गई। उस बादल में से रामचन्द्र की मूर्ति प्रकट हुई। रामचन्द्र के मुख पर स्मित था। 'पर यह अविनाश जैसे क्यों दिखाई देते हैं ?'—राजेश्वरी के हृदय में प्रश्न उठा। उसने दोनों हाथों से आँखें मीच लीं।

'यह तो अधिक पास आ रहे हैं !'—घबड़ा कर उसने आँखें खोल दीं। रामचन्द्र की मूर्ति में अविनाश अधिक व्यक्त होने लगा !

३१

राजेश्वरी के सम्पूर्ण शरीर में कंप हो रहा था। कुसुमों को स्पर्श करने से, मलय पवन के लगने से, जमीन पर बैठने से, दीवाल से लग कर बैठने से, तप्त भूमि पर चलने से उसे सुखद कंप का अनुभव होता था। उसे शंका होने लगी कि वह स्वयं

राजेश्वरी ही थी या कुछ और ! उसे सम्पूर्ण सृष्टि सौन्दर्य-स्वप्न से भरी हुई मालूम होती थी !

तीसरा पहर होते ही दो स्त्रियाँ मंदिर में आईं। उसमें दुर्गावती को तो राजेश्वरी पहचानती थी। लेकिन रमा को वह पहचान न सकी। राजेश्वरी से पुराने ढंग का प्रणाम नहीं हो सका। शास्त्रीजी के साथ रजनी सलाह कर चुका था। उसी के अनुसार रमा राजेश्वरी को विवाह-विधि में सहायता देने आई थी। दुर्गावती ने तो कन्यादान देना भी मंजूर किया था। विवाह के योग्य दूसरे दिन ही शुभ तिथि थी—इसीलिये शास्त्रीजी और रजनी ने मिल कर दूसरे दिन ही विवाह कर देने का निश्चय किया। रजनी ने अविनाश के माता-पिता और पद्मनाभ को भी सूचना दे दी थी। रमा दुर्गावती के साथ पहले से मंदिर में आकर राजेश्वरी को विधिवत् स्नान करा कर सादे वस्त्र पहना, तैयार रखना चाहती थी।

राजेश्वरी की वाणी बन्द हो गई। वह यंत्रवत् दुर्गावती की आज्ञा मान रही थी। दुर्गावती ने स्नान करने के लिये कहा—उसने काँपते शरीर से स्नान किया। लाल किनारी वाला एक पीला वस्त्र दुर्गावती ने दे कर कहा—'राजेश्वरी! यह चुनरी पहन लो।'

उसने चुनरी पहन ली। उसके शरीर में पीठी लगाई गई, वह ऐसी दिखाई देती थी मानों शीशे की पुतली पर सोने का पानी चढ़ाया गया हो। राजेश्वरी के साथ रमा खूब बातें करने लगी। गणिका के शरीर में कुछ नवीनता तो न भरी होगी, इस ख्याल से रमा एक न एक बहाने से उसके अंगों को छू रही

थी। रमा ने उसकी चूड़ी को घुमा कर देखा, कान में अपने ऐरिङ्ग पहनाए, एक छोटी माला उसके गले में डाली, उसकी चुनरी ठीक की। हाँ, और नहीं, में उत्तर देती आकर्षक राजेश्वरी की बातों से संतोष न होने के कारण रमा ने पूछा—'आप कुछ बोलती क्यों नहीं?'

'बहन, मैं तो संज्ञा-हीन हो गई हूँ। आप कौन हैं?'—राजेश्वरी ने कहा।

'तुम्हारा जो पति है न, उसके मित्र की यह पत्नी है।'—दुर्गावती ने उत्तर दिया।

पति? पत्नी! रस-कलश जैसे शब्दों के उच्चारण ने राजेश्वरी के कानों में एक सुभग संगीत का-सा असर उत्पन्न किया। पुरुष स्त्री के और स्त्री पुरुष के अति निकट होने पर भी अति गूढ़ तत्त्व हैं। गणिका-जीवन का अनुभव, पति-पत्नी के उच्चारण से उत्पन्न होने वाले अकथनीय भाव को कभी उत्पन्न कर सकता है? गणिका-जीवन के प्रवेशकाल में ही त्रस्त हो जाने वाली राजेश्वरी के हृदय ने नकार में उत्तर दिया।

एकाएक मंदिर के चौक में एक बड़ा पत्थर गिरा। चौक में कोई था नहीं, इससे किसी को चोट नहीं लगी। उस तरफ देखने के सिवाय किसी ने विशेष लक्ष्य नहीं किया।

'आप से घर का काम हो सकेगा?'—रमा ने उस सुन्दर पुतली को गृहव्यवस्था का प्रथम सूत्र समझाया।

'हाँ, क्यों न हो सकेगा?'

'आपको आदत नहीं है, इससे।'

'मैं अवश्य आदत डालूँगी, मैं भार स्वरूप नहीं बनूँगी।'—गृह-व्यवस्था और रसोई को तुच्छ मानने वाली स्त्रियाँ जीवन में कौन-सी आर्थिक उन्नति करती हैं? जिससे परिश्रम न हो सके वह निरर्थक है—अर्थशास्त्र तो कहता है कि परिश्रम न करने वाले मनुष्य को भारस्वरूप समझना चाहिये।

एक दूसरा पत्थर गिरा। सबों ने उस तरफ ध्यान से देखा। पत्थर किस तरफ से आया यह समझ में नहीं आया। शास्त्रीजी चौक में जाकर जोर से बोले—'कौन पत्थर फेंकता है? भाई, यह तो राम-मंदिर है।'

अगर पत्थर बोलता होता तो पत्थर फेंकने वाला भी बोलता। पर शास्त्रीजी को मालूम हुआ कि अगले भाग में रहने वाले किरायेदार खिड़कियों से मंदिर में झाँक रहे हैं। उनको क्या काम होगा? कौन कह सकता है!

बाहर कुछ मनुष्यों का कोलाहल सुनाई दिया। शास्त्रीजी ने बाहर आ कर देखा—मंदिर के सामने कुछ भीड़-सी लगी थी। किसी तकरार के कारण लोग इकट्ठे हो गये होंगे, यह सोच कर भीतर वापस जाते हुए शास्त्रीजी पर दो चार कंकड़ पड़े और उन पर गालियों की बौछार पड़ी। तब उन्होंने भीड़ की तरफ देखा—लोग कह रहे थे—'इसकी बुद्धि नष्ट हो गई··· ···मंदिर से निकाल दो······देवस्थान भ्रष्ट हो गया······!'

शास्त्रीजी ने हाथ के इशारे से एक आदमी को पास बुलाया—एक के बदले पाँच आदमी पास आये।

'क्या है? क्यों सब इकट्ठे हुए हैं?'—शास्त्रीजी ने पूछा।

'अरे यह भी कोई बात है ? मंदिर में वेश्याएँ इकट्ठी करते हो ?'—एक आदमी ने सब की सम्मति से कहा।

'नहीं भाई, यहाँ तो एक ही स्त्री ऐसी है सो भी उस मार्ग से हटने के लिये यहाँ आई है।'

'चालाकी रहने दीजिए शास्त्रीजी ! उसको बाहर निकालिए—नहीं तो आपकी कुशल नहीं है।'

'उसको बाहर निकालने वाला मैं कौन ? भगवान का दरबार सब के लिये खुला है।'

'अच्छा ? ? ?'—बात करने वाले ने तिरस्कार से कहा।

भीड़ में से धार्मिकता के कारण उद्विग्न एक युवक ने एक पत्थर खींच कर शास्त्रीजी को मारा। उनके सिर से खून निकलने लगा। दुपट्टे से घाव को दबा कर भीड़ को तरफ देख कर वह हँसे—स्वयं धर्म का पालन करने की अपेक्षा दूसरों से धर्म-पालन कराने की हमें बहुत चिन्ता रहती है। और अपने अतिरिक्त संसार के और सभी लोग धर्म का पालन करते रहें, ऐसे अत्याग्रह के कारण धर्म पालन न करने वाले का हम सिर तक फोड़ देते हैं। पत्थर लगने से शास्त्री हँसे—उन्हें कुछ स्मरण हो आया।

पूर्वकाल में शास्त्रीजी की विद्वत्ता इतनी गहन समझी जाती थी कि उसका कोई पार नहीं पा सकता था। उनकी विद्वत्ता से आकर्षित हो कर एक नास्तिक युवक उनके पास विवाद करने आया। प्रमाण और तर्क के द्वारा शास्त्री ने ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध कर दिया। नास्तिकता और पाप का परिणाम इस तरह से

समझाया, जिससे पाप और नास्तिकता अदृश्य हो जाती।

लेकिन वह नास्तिक युवक दूसरे दिन से फिर नहीं आया। हाँ, कथा के अन्त में होने वाले कीर्तन से आकर्षित हो कर उस युवक की बहन नित्य कथा सुनने आने लगी। शिवनाथ शास्त्री जैसे शास्त्रज्ञ थे; वैसे ही संगीतज्ञ भी थे। उस समय यदि किसी मंदिर के संचालक ने एकाध वेश्या को मंदिर में रखा होता तो क्या शास्त्रीजी ने मंदिर के संचालक को ऐसे ही पत्थर न मारा होता? पत्थर तो एक तरफ—दूसरों के अधर्म के प्रति हम लोगों को इतना रोष आता है कि यदि उनका खून भी कर दें तो भी वह रोष ठंढा नहीं हो सकता।

अब तो शिवनाथ 'शास्त्री से भक्त' बन गये थे। और संगीतज्ञ के स्थान में भजनीक बन गये थे। पत्थर मारने वालों के हृदय को वह दीर्घ काल तक परख चुके थे। इसीलिये पत्थर मारने वालों के प्रति उनको जरा भी क्रोध नहीं चढ़ा। उन्होंने हँस कर भीड़ की तरफ देखा।

भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। सबों के हृदय में इस समय धर्म का स्रोत फूट निकला था। धर्म का अस्तित्व धर्म के झगड़े के समय ही हम लोगों को याद आता है। सब शास्त्रीजी के पापकृत्य को रोकने के लिये तैयार हुए थे। शास्त्रीजी ने खून पोछते हुए कहा—'भाइयो, आज तो आप लोगों को उत्सव मनाना चाहिए!'

'वेश्या को मंदिर में रखा है—इसीलिये?'

'वह आज से वेश्या न रह कर पत्नी हो जायगी।'

'बना लेना अपनी पत्नी !'—किसी ने उत्तर दिया। उत्तर सुन कर भीड़ हँस पड़ी। और अनेक लोगों ने धूल, कंकड़ और पत्थर शास्त्रीजी की तरफ फेंके।

शास्त्रीजी नीचा मुख करके खड़े थे। उनको अभी तक क्रोध नहीं आया था। उनका हृदय—जैसे वह भीड़ के कार्य के उपयुक्त हो—मृदु बनता जा रहा था। भीड़ ने क्या बुरा कहा? शास्त्रीजी ने स्वयं किसी गणिका को अपनी पत्नी बनाने का साहस दिखाया था? उन्होंने तो इस भीड़ के लोगों जैसा ही कार्य करके एक महा पाप किया था।

उस नास्तिक युवक की संगीत-प्रेमी बहन शिवनाथ के गानों पर मुग्ध हो गई। कथा शुरू होने के पहले से ले कर कथा समाप्त होने के बाद तक वह बैठी रहती। और शास्त्रीजी से थोड़ा-थोड़ा संगीत-शास्त्र भी सीखती। उसके परिवार में केवल तीन आदमी थे—उसका भाई, माँ और वह स्वयं। युवावस्था के प्रारम्भ में प्रत्येक युवक को नास्तिक बनने का शौक होता है—युवक-कथा सुनने के विरुद्ध था, परन्तु कला के विरुद्ध नहीं था। शास्त्रज्ञान की अपेक्षा संगीत-ज्ञान अधिक अच्छा है, यह सोच कर वह अपनी बहन के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था। भावुक विधवा माता तो कथा के विरुद्ध हो ही नहीं सकती थी। वह अपने साथ लड़की को रोज ले जाती थी, यदि किसी कारणवश वह किसी दिन न जा सकती तो भी लड़की को वह जाने देती थी। भाई ने समझा कि बहन को कला-ज्ञान प्राप्त हो रहा है, माँ ने समझा कि लड़की को शास्त्रज्ञान मिल रहा है।

कुछ सुधार, कुछ लड़कों का अभाव और कुछ माँ के दुलार के कारण लड़की की अभी शादी नहीं हुई थी।

नीति-वेत्ताओं ने स्त्री-पुरुष को एकांत में रहने का निषेध किया है। शिवनाथ शास्त्री पवित्र थे, पूज्य थे, पर युवा भी थे। शास्त्र और संगीत को शिक्षा उस युवती को देने के समय भयंकर एकांत ने दोनों को विचलित कर दिया।

पुरुष पहले स्त्री का उपभोग करता है; पर बाद में सम्पूर्ण अपकीर्ति सरलता के साथ स्त्री के सिर पर लाद देता है दोनों समझ गये। युवती ने विवाह कर लेने के लिये कहा, शिवनाथ ने विवाह तो नहीं, पर विवाह कर लेने का वचन दिया।

इसी बीच में भावुक माता मर गई। एक वृद्ध और वृद्धा के साथ माता की अस्थि गंगा में पधराने के बहाने युवती को शिवनाथ ने काशी भेज दिया। भाई की परीक्षा का समय था, इससे वह साथ नहीं गया। उसके बाद भाई ने फिर कभी बहन को नहीं देखा।

पाप के कार्य में भी वृद्धों का अनुभव काम देता है। युवती को एक बालिका पैदा हुई। युवा, विद्वान् और वाचाल शास्त्री की प्रतिष्ठा उनको रुपयों-पैसों से सुखी रखती थी। युवती और बालिका को, दूर रहने पर भी शास्त्रीजी खर्च भेज देते थे। युवती के लिये लोग चाहे जो कहते, परन्तु उसके जाने के बाद दो वर्ष तक उस ग्राम से न खसकने वाले शास्त्री के विरुद्ध, लोग कोई कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

तीर्थ पाप-मुक्ति के स्थान समझे जाते हैं। इसीलिये पाप

छिपाने की सुविधा तीर्थ स्थानों को करनी पड़ती है। युवती को और कोई कष्ट तो नहीं था, लेकिन एकांत और अप्राकृतिक जीवन से वह ऊब उठी। शास्त्री को उसने अपने वचन-पालन करने का आग्रह किया, और साथ ही धमकी भी दी। वे धमकी से डर कर काशी गए।

युवती से शिवनाथ ने भेंट की। विवाह की बात को उन्होंने हँस कर टाल दिया—इतना ही नहीं उसे दिल्लगी का रूप दिया।

'लो तुम्हारा यह हाथ पकड़ लिया, बस ? पाणि-ग्रहण हो गया।'

'ऐसे नहीं, श्लोक बोलो।'—युवती ने कहा।

शिवनाथ श्लोक भी बोले।

'और कुछ ?'—उन्होंने पूछा।

'अब तुम मुझे अपने साथ ले चलो।'

अभी नहीं, मैं गुजरात जा कर तुम को बुला लूँगा।'—शास्त्री ने विश्वास दिलाया। इतना ही नहीं, बल्कि पति-पत्नी के संसार-मान्य धर्म का पालन किया—उनसे रहा नहीं गया।

लेकिन दूसरे ही दिन से शास्त्री अदृश्य हो गये। पाप हृदय में शूल की तरह खटक रहा था। वेदना कम करने के लिये वे तीर्थयात्रा करने गये। तपस्या और भक्ति करके कुछ धैर्य प्राप्त किया। तीन चार वर्ष के बाद विवाह करने के लिये वह काशी वापस आए। क्योंकि पश्चाताप ने उनको शिक्षा दी कि उस युवती के साथ किये हुए अन्याय का प्रतिकार प्रकट रूप से विवाह करने से ही हो सकता है।

अत्यन्त कठिनता के बाद शास्त्री को वह युवती मिली। पर वह कहाँ? वह एक गणिका के रूप में गायिका का व्यवसाय करती थी! युवती को दूसरी बालिका भी पैदा हुई थी। तीर्थ-यात्रा करते हुए शास्त्री की तरफ से युवती को कुछ खर्च नहीं मिलता था। अकेले रहते हुए युवती ने गायन में अच्छी प्रगति प्राप्त कर ली थी। उसके बिना जीविका का कोई साधन नहीं था। वृद्ध-वृद्धा ने भी यही सलाह दी। दोनों बालिकाओं को ले कर युवती ने एक वेश्यालय में प्रवेश किया। शिवनाथ उससे मिलने में संकुचित हो उठे। लेकिन पाप का भार हलका करने के लिये वह उससे मिले।

'कहिये, गाना सुनिएगा?'—युवती ने पूछा। उसके मुख पर तिरस्कार नृत्य कर रहा था।

'नहीं।'

'आप स्वयं ही संगीताचार्य हैं। आपको दूसरे का गाना सुनने की आवश्यकता नहीं है। पर आप आए कैसे? गाने के अलावा दूसरी कुछ इच्छा?'

'मैं तो तुम्हारे साथ विवाह करने का निश्चय करके आया था।'

युवती जरा विचार में पड़ गई। शास्त्री की तरफ उसने देख कर पूछा—'और अब?'

'अब कैसे हो सकता है?'

'क्यों नहीं हो सकता?'

'तुम तो वेश्या बन गई हो।'

युवती क्रोध से जल उठी, और उसने शिवनाथ को एक लात मारी।

'पापी! पाजी! आज तक तो मैं केवल गाने पर ही जीविका चलाती थी, पर जा—आज से मैं वेश्या-वृत्ति भी करूँगी। जानकी! इस ढोंगी को लात मार कर सीढ़ी से नीचे गिरा दो।'—जानकी उसकी आधी दासी और आधी सखी थी! उसने लात तो नहीं मारा; पर धक्का दे कर सीढ़ी के नीचे गिरा दिया। शिवनाथ धक्का लगने से दो तीन सीढ़ी नीचे गिर गये।

शास्त्रीजी ने फिर ऊपर चढ़ने की कोशिश की। वह ऊपर चढ़े। लेकिन ऊपर अकेली जानकी ही थी।—'अगर फिर से ऊपर चढ़ोगे तो छूरा ही भोंक दूँगी।'

युवती वेश्या-जीवन में गहराई तक चली गई। पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हुए शिवनाथ ने पतित पावन रामचन्द्र के चरणों का आश्रय लिया। विद्वत्ता और संगीतज्ञता को उन्होंने एक तरफ रखा और तुच्छ बन कर रामनाम का जप करते हुए देव सेवा और भजन में दिन व्यतीत करने लगे।

उनकी विद्वत्ता और भक्ति से आकर्षित हो कर लोगों ने उनको एक राममंदिर की व्यवस्था सौंपी। मंदिर के ट्रस्टियों में पद्मनाभ वकील ही आगे बढ़ कर सब काम करता था। एक गणिका ने मंदिर में आश्रय लिया, और उसके साथ विवाह करने के लिये एक सद्‌गृहस्थ का लड़का तैयार हुआ। वह सब अब शास्त्री की दृष्टि में न्याय-संगत बन गया था। पर किसी समय वह स्वयं भी अपने को पत्थर मारनेवालों से श्रेष्ठ नहीं बना सके

थे—उस संस्मरण ने उनको भीड़ के प्रति क्षमाशील बनाया।

मंदिर की व्यवस्था में किरायेदारों के लिये सिफारिश करने और उत्सव में आकर प्रसाद पाने के सिवाय और कुछ न करने वाले दो ट्रस्टी गाड़ी से उतर कर मंदिर के द्वार पर आये। उनको समाचार मिला था कि राम-मंदिर में अनाचार हो रहा है। भीड़ में से दो चार आदमी उपद्रव करने के बाद नियमानुसार अनाचार रोकने के लिये ट्रस्टियों के घर दौड़े गये। ट्रस्टी वहाँ आये। आने के साथ ही उन लोगों ने शास्त्री जी के सिर से खून निकलते देखा।

'क्या हुआ शास्त्री जी?'—खून निकलते देख कर एक ने पूछा।

'कुछ नहीं।'

'यह चोट लगी है न!'

'उह: ! जो जैसा समझे; वैसा ही ठीक।'

'आप भीतर चलिए—लोग पत्थर फेंक रहे हैं—हम लोगों को बातें करनी हैं।'

तीनों आदमी भीतर आए। भीड़ मंदिर के दरवाजे पर आ गई।

'शास्त्री जी! यहाँ किसी का विवाह होने वाला है? क्या यह ठीक है?'

'जी हाँ।'

'किसका?'

'एक वेश्या का—कहिए कि एक वेश्या-पुत्री का।'

'वह मंदिर में हो सकता है ?'

'हर्ज क्या है ? सत्कर्म सब जगह हो सकता है—मंदिर में तो खास करके।'

'नहीं, नहीं, ट्रस्ट में ऐसा नहीं लिखा है।'

'पद्मनाभ ने स्वीकार किया है-ट्रस्ट में कुछ बाधा न होगी।'

पद्मनाभ ने स्वीकार किया है ?'—आश्चर्य के साथ ट्रस्टियों ने पूछा।

'अवश्य, इतना ही नहीं, वह यहाँ स्वयं आनेवाले हैं।'

'तब हम लोग उनसे भेंट कर लें।'—मंदिर का सब कार्य पद्मनाभ ही करता था। बाहर निकलने पर ट्रस्टियों ने भीड़ को उपद्रव पर तत्पर देखा। शास्त्रीजी को भी भीतर बैठी हुई स्त्रियों के लिये भय मालूम हुआ। उन्होंने ट्रस्टियों को दुर्गावती और रमा को अपनी गाड़ी में बैठा कर ले जाने के लिये कहा। पद्मनाभ से मिल पुलिस का प्रबन्ध करके, वापस आने का ठीक हुआ। राजेश्वरी को जाने के लिये कहने पर उसने अस्वीकार किया।

भीड़ ने मेहरबानी करके ट्रस्टियों को और उनके संरक्षण में जो स्त्रियाँ थीं, उनको जाने दिया। मंदिर के द्वारा बन्द करने की ट्रस्टियों की सलाह शास्त्री जी ने स्वीकार नहीं की—उनकी धारणा थी कि भगवान के द्वार प्रत्येक समय खुले रहने चाहिये। भीड़ में से किसी ने अभी मंदिर में घुसने की धृष्टता नहीं की थी।

डेढ़ दो घंटे के बाद ट्रस्टी और पद्मनाभ पुलिस का इन्त-

जाम कर के मंदिर में आये। पुलिस भीड़ को तितर-बितर करने लगी।

पद्मनाभ और दूसरे लोग भीतर गये। साथ में भीड़ के कुछ आदमी भी थे। शास्त्रीजी और राजेश्वरी दोनों में से कोई भी दिखाई नहीं दिये। मंदिर में चारों तरफ खोजने पर भी उनका पता नहीं चला। दोनों अदृश्य हो गये थे।

'अविनाश भी नहीं है। विवाह का क्या होगा?'—पद्मनाभ के मन में प्रश्न उठा।

३२

अविनाश और राजेश्वरी का विवाह एक न सोची हुई जगह पर हो रहा था। केवल शास्त्री, नारायणी और उसकी दासी के सिवाय उस विवाह में और कोई न था।

तीसरा पहर होने को आया। शास्त्रीजी और राजेश्वरी चिन्तित हुए। पद्मनाभ और रजनी भी नहीं आये। सुमंतराय तो आने वाले ही नहीं थे; पर अविनाश की माँ प्रभालक्ष्मी भी नहीं आईं। गोधूली लग्न बीत जायगी क्या? शास्त्रीजी का घाव धोने और उस पर पट्टी बाँधने में राजेश्वरी संलग्न थी। शास्त्री जी राम भजन में लग कर चिन्ता से मुक्त होने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन भीड़ का उपद्रव बढ़ता ही जा रहा था। क्या होगा?

मंदिर के अगले भाग में एक दरवाजा था, वह शायद ही कभी खुलता हो। अगले भाग में से किसी ने वह दरवाजा खट-

खटाया और उसको खोलने के लिये आवाज़ दी। शास्त्रीजी ने दरवाजा खोला—वह चौंक उठे।

'नारायणी! तुम कहाँ से?'

'चाहे जहाँ से—पूछिए मत! आप और राजेश्वरी दोनों मेरे पीछे चले आइए।'

'कहाँ?'

'मेरे घर।'

'पर यहाँ तो राजेश्वरी का विवाह होने वाला है।'

'वह वहीं पर हो जायगा। रामचन्द्र का आवाहन मेरे घर में कर लीजियेगा—वह भी मंदिर बन जायगा।'

कुछ क्षण शास्त्रीजी विचार करते रहे। नारायणी का तर्क कुछ बुरा नहीं था।

'पर अविनाश तो अभी नहीं आया है?'

'वह भी मेरे ही यहाँ है।'

'ऐसा? पर हमलोग जायँगे कैसे?'

'जैसे मैं आई; वैसे! भीड़ दूसरी तरफ है—इन कोठरियों के स्वामी पैसों से खुश हो गये हैं, और दरवाजे पर एक गाड़ी खड़ी है।'—शास्त्रीजी और राजेश्वरी उस दरवाजे से हो कर अगले भाग की कोठरियों के दरवाजे पर आये। भीड़ मंदिर के मुख्य द्वार पर थी। किरायेदारों के घर की तरफ से निकलने वाली गाड़ी के लिये भीड़ को शंका करने का कुछ कारण नहीं था। गाड़ी में बैठ कर के लोग नारायणी के घर पहुँच गये।

बातें करते समय नारायणी अपना सम्पूर्ण मुख ढाँक केवल

दोनों आँखें खोल कर बोल रही थी। राजेश्वरी बहुत इच्छा रखने पर भी नारायणी का मुख नहीं देख सकी।

नारायणी के घर में बैठा हुआ अविनाश सब की प्रतीक्षा कर रहा था। मंदिर के दरवाजे पर उपद्रव हो रहा है—यह सुनते ही रजनी पद्मनाभ के घर गया। अविनाश प्रतीक्षा नहीं कर सका, इसलिये वह भी मंदिर की तरफ गया। नारायणी मानो उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने अविनाश को अपने घर चलने के लिये कहा। पहले तो अविनाश ने स्वीकार नहीं किया। लेकिन जब उसने यह समझाया कि शास्त्रीजी और राजेश्वरी को भी वह अपने घर ले जाने की युक्ति कर रही है, तब लाचार हो कर उसे नारायणी की दासी के साथ जाना पड़ा। नारायणी की बोली में इतनी नम्रता थी कि अविनाश विमूढ़ बन गया—फिर भी उसकी प्रार्थना को माने बिना वह नहीं रह सका।

'पर आपको क्या ?—दो तीन बार के तिरस्कार के अनुभव और शास्त्रीजी के साथ गूढ़ परिचय रखने वाली नारायणी की विनती का रहस्य समझने के लिये अविनाश ने पूछा।

'इतना कर दीजिये तो मैं सुख पूर्वक मर सकूँगी।'—आज उसकी बोली में कर्कशता नहीं थी।

'ठीक है ; पर आपके साथ राजेश्वरी का या मेरा क्या सम्बन्ध है, जो आप इतना आग्रह कर रही हैं ?'

'वाह सम्बन्ध क्यों नहीं है ? गणिका के साथ विवाह करके समाज के द्वारा सूली चढ़ने वाला पुरुष, मैंने आज ही देखा। उसका विवाह होते हुए मैं देखूँगी और उसको आशीर्वाद देकर

मरूँगी—मुझे ही नहीं, सारे संसार को उसकी पूजा करनी चाहिए।'

अद्भुत भाषा में अपनी प्रशंसा न सुन सकने के कारण अविनाश संकुचित हो गया। वह कोई महान कार्य कर रहा है, ऐसा उसे नहीं मालूम हुआ। समाज-सेवा का आडंबर उसने कभी नहीं किया था। वह नारायणी के घर गया। एक बार जिज्ञासा के कारण रजनी के साथ वह यहाँ आया था। लेकिन उस समय नारायणी ने तिरस्कार किया था और दासी ने पानी छोड़ने की धमकी दी थी। आज वही दासी उसको सम्मान-पूर्वक उसी घर में गाड़ी में बैठा कर ले गई। अविनाश ने दासी से नारायणी का सम्पूर्ण विवरण जानने का प्रयत्न किया—'नारायणी के साथ आपका क्या सम्बन्ध है?'

'कुछ भी नहीं, मैं तो उनकी नौकर हूँ—यद्यपि वह मुझे अपनी लड़की की तरह मानती हैं।'

'वह नौकर कैसे रख सकती हैं?'

'वाह, क्यों नहीं? उनको पैसे की कमी नहीं मालूम होती।'

'पर एक दिन तो मैंने रास्ते में उनको भीख माँगते देखा था!'

वह विचित्र हैं। जरा पागल हो जाती हैं। कुछ चाहती हैं—किसी को चाहती हैं। पर क्या चाहती हैं, किसे चाहती हैं, यह नहीं कहतीं। पागलपन में किसी-किसी समय भिखारिन जैसी बन जाती हैं।'

'वह क्या चाहती हैं, इसका पता आप क्यों नहीं लगाती?'

'उनकी आज्ञा नहीं है।

'आपका नाम क्या है?'

'माधवी ।'

माधवी से अविनाश नारायणी के विषय में कुछ भी नहीं जान सका ।

खिड़की में खड़ा हो कर वह नारायणी की प्रतीक्षा करने लगा । घर छोटा था; पर सुन्दरता के साथ सजाया गया था । केवल एक विशेषता अविनाश ने देखी—घर में एक भी पुरुष का चित्र नहीं था । घर के पिछवाड़े नदी बहती था ।

प्रतीक्षा में खड़े रहने की अपेक्षा संसार में और कोई भी समय विकट नहीं होता । एक-एक क्षण एक-एक युग को तरह मालूम होता है । विकल बना हुआ, हृदय स्तब्ध हो गया । दूर से एक गाड़ी आती दिखाई पड़ी । संध्या का समय हो गया था ।

गाड़ी में से शास्त्रीजी और राजेश्वरी उतरीं । नारायणी का कथन सच्चा था ! राजेश्वरी हो आई ? या श्वेत-पीत बादलों से ढकी हुई चन्द्रिका उतर आई ? स्तब्ध बना हुआ हृदय हिल उठा । अविनाश और राजेश्वरी परस्पर आँखें नहीं मिला सके । कुछ बोलने के विचार से अविनाश ने शास्त्रीजी से पूछा—
'नारायणी कहाँ है ?'

'पीछे आ रही है ।'

'क्यों ? गाड़ी में जगह तो थी न ?'

'वह हत्भागी स्त्री अपने को अस्पर्श मानती है ।'

'क्यों ?'

उत्तर दिया जाय या नहीं इसका विचार करते हुए शास्त्रीजी ने अन्त में कहा—'उसका शरीर रोग-ग्रस्त हो गया है ।'

अविनाश और राजेश्वरी दोनों काँप उठे। प्रेम, काम और व्याधि का कितना सामंजस्य है! इसीलिये वह अपना मुख भी ढाँक रखती होगी?

नारायणी आई। किसी ने यह नहीं देखा कि उसके शरीर में आज अस्वाभाविक चपलता आ गई थी। आज के प्रसंग की विचित्रता और भव्यता सबों के हृदय को हिला रही थी।

विवाह के लिये हवन-द्रव्य और दूसरी सामग्री शास्त्रीजी अपने साथ ले आये थे। अग्नि प्रज्वलित कर के उन्होंने विवाह की क्रिया शुरू कराई। स्वप्न-जगत में विचरण करने वालों की तरह वर-वधू किसी गूढ़ आनन्द का अनुभव कर रहे थे।

शास्त्रीजी ने अविनाश से राजेश्वरी का हाथ पकड़ने के लिये कहा। अविनाश ने उत्तर दिया—'शास्त्रीजी, मैं इनका स्पर्श नहीं करूँगा।'

'यह कैसे हो सकता है? विवाह-विधि का तो यह आवश्यक अंग है।'

'मगर मैंने वचन दिया है कि मैं कभी इनका स्पर्श नहीं करूँगा।'

'तब फिर विवाह कैसे होगा?'

नीचा मुख कर के बैठी हुई राजेश्वरी मुस्कराई। उस दिन पुरुष स्पर्श की घृणा के कारण उसने एक शर्त अविनाश से कही थी। अविनाश उस शर्त का सर्वदा पालन करना चाहता था।

राजेश्वरी ने धीरे से कहा—'मेरी शर्त ऐसी नहीं थी।'

'कैसी शर्त?'

'विवाह के बाद स्पर्श न करने की शर्त है ! विवाह-विधि के समय की नहीं है ।'—राजेश्वरी ने कहा । इतना कहने में हो हजारों गुलाबों की सुर्खी उसके मुख पर आ गई ।

अविनाश को यह दलील ठीक मालूम हुई । उसने राजेश्वरी का हाथ अपने हाथ में लिया । दोनों का शरीर झनझना उठा !

सत्य, संकल्प, सुख, तेज और प्रजावर्धन का प्रण सप्तपदी द्वारा लिया गया । छोटा-सा विवाहोत्सव सम्पूर्ण हुआ । वर-वधू पहले शास्त्रीजी के पैर पड़े ! शास्त्रीजी ने दोनों को आशीर्वाद दिया । नारायणी के, पैर पड़ने गये, तब उसने अपना पैर खींच लिया और रोने लगी । उसने रोते हुए कहा—'बेटी ! मैं छू नहीं सकती, तो तुमको हृदय से कैसे लगा लूँ ?'

शास्त्रीजी का नम्र, मृदु और भक्ति-भाव युक्त मुख कठोर बन गया । नारायणी का रोना देख कर राजेश्वरी की आँखों में भी पानी आ गया । राजेश्वरी ने कहा—'कोई हर्ज नहीं, आप सिर पर हाथ रखिए । मुझे कुछ नहीं होगा ।'

लेकिन नारायणी ने वह नहीं किया । उसने मन को स्थिर किया । माधवी के द्वारा सब को भोजन कराया । हर्ष और गांभीर्य की छाया में सबों ने भोजन किया । नारायणी ने शास्त्रीजी से कहा—'शास्त्रीजी एक गाना सुनाइये !'

रात का आठ, सवा आठ बजा था । चन्द्रमा निकल आया था । नदी किनारे की तरफ के कमरे में सब बैठे थे । शास्त्रीजी ने बिना साज के गाना प्रारंभ किया—

'शोभित शीश मुकुट,
श्रवण कुंडल, भाल तिलक
गुंज माल..............'

राजेश्वरी को मालूम हुआ कि कोई गन्धर्व, गन्धर्व-लोक से पृथ्वी पर उतर आया है। राग, ताल का जरा भी ज्ञान न होने पर भी अविनाश स्वर की मिठास के कारण मंत्र-मुग्ध-सा हो गया। नारायणी प्रस्तर-मूर्ति की तरह स्थिर बैठी थी। गायन की तन्मयता के कारण किसी को दूसरी किसी बात का ध्यान नहीं रहा।

गाना समाप्त हुआ। सब उसके प्रभाव से मुक्त हों, उसके पहले ही नदी किनारे से एक भयानक आवाज आई। संगीतमय वातावरण एकाएक पलट गया। सब एक दूसरे की तरफ देखने लगे।

'क्या हुआ ?'—राजेश्वरी ने पूछा।

'पिस्तौल की आवाज़ मालूम होती है।'—अविनाश ने उत्तर दिया।'

'इस समय पिस्तौल किसने चलाई ?'—शास्त्रीजी ने पूछा। पूछने के साथ ही उन्होंने देखा कि उनके छोटे से श्रोता-मंडल में से एक अदृश्य हो गया है।

'नारायणी कहाँ है ?'—शास्त्रीजी ने पूछा।

नारायणी वहाँ नहीं थी। वह कब उठ कर चली गई, यह किसी को नहीं मालूम था ! चौंक कर सब खड़े हो गये। नीचे उतर कर पीछे वाले दरवाजे पर गये, दरवाजा खुला था। सब नदी के किनारे की तरफ गये।

मैदान के दूसरे तरफ से तीन-चार आदमी पिस्तौल की आवाज़ सुन कर आ गये थे। वृक्ष, चाँदनी और छाया की जाली गूँथ रहा था। उस जाली से सजा हुआ एक शरीर वृक्ष के नीचे पड़ा था।

वह नारायणी का शरीर था। उसने पिस्तौल से अपना सिर छेद डाला था। वह कब आई? किस तरह से आई? किसी को मालूम क्यों नहीं हुआ? वह सीढ़ी पर बैठी थी और गायन की तन्मयता में—कोई जान न पाए इस तरह से वह नीचे सरक गई। लेकिन आत्महत्या किस लिये?

रोग असह्य था! किसी को न छू सकने की विवशता उसके जीवन को भार-स्वरूप बना रही थी! उसके स्पर्श से तरे हुए हज़ारों मनुष्यों की छाया उसके नेत्रों के सामने जीवित बन कर नाचती थी!

यह भी हो सकता है। उसके शरीर में घुला कर मारने वाली मृत्यु छिपी हुई थी। उसके स्पर्श में मृत्यु का आतिथ्य चलता था। उसने अनेक पुरुषों को और उनके द्वारा उनकी स्त्रियों को भी अपना रोग पहुँचा कर, अपने साथ हुए अन्याय का बदला लिया था। लेकिन अन्यान्य करने वाले को कुछ भी दंड नहीं मिला था। यह कैसे सहन हो सकता था? वह उसको खोजने के लिये सम्पूर्ण देश में पर्यटन कर रही थी। उसने द्रव्य संचित कर रखा था, इसलिये बदला लेने की उसको सुविधा थी। करीब दस वर्ष से उसके रोग ने भयंकरता धारण करना प्रारंभ किया था। रूपगर्विता के लिये रूप-विकृति मृत्यु से भी बढ़ कर कष्टप्रद होती है। अपनी दो छोटी लड़कियों को

अपने से अलग रखने के लिये उसने बहुत प्रयास किया था। जानकी जैसी विश्वास-पात्र सखी को बहुत-सा धन दे कर अपनी लड़कियों को सौंप दिया, इतना ही नहीं, उनको अपने से दूर रख, शिक्षा दिला कर प्रतिष्ठित ढंग से विवाह कर देने का भी निर्देश किया था। जानकी गणिका जीवन की आदी हो गई थी, इसी से व्यवसाय की आवश्यकता न रहने पर भी उसने उसे चालू रखा। यद्यपि उसने दोनों लड़कियों को शिक्षा दिलाने का प्रयत्न किया था, पर उसका जीवन ही उसमें विघ्न स्वरूप बन गया।

बदला लेने के लिये घूमती हुई नारायणी ने अपने बैरी को देखा। मार्ग में चलते हुए एक मंदिर में से उस बैरी का गाना सुना। उसका गाना विस्मृत होने योग्य नहीं था। परंतु उस गाने में ऐसा प्रभाव था कि बदला लेने की सुधि भी जाती रहती थी। वह बैरी शिवनाथ थे। उन्होंने ही उसके जीवन को मिट्टी में मिला दिया था।

नारायणी शिवनाथ को स्पर्श करना चाहती थी। बदला लेने के लिए स्पर्श से ही बैरी को मारने का निश्चय था। लेकिन यदि वह न हो सके तो उसके लिये दूसरा भी प्रबन्ध कर रखा था। आवश्यकता पड़ने पर वह गोली मारने के लिये भी तैयार थी। वेश्या सब कर सकती है—गोली तक मार सकती है। पर शिवनाथ का गायन उस कार्य को पाप बतला कर पापमय नारायणी को भी रोकता था। एकाएक उसने अपनी लड़की को पहचाना। उस लड़की से विवाह करने के लिये एक मूर्ख तैयार

था, यह भी देखा। उसने वह विवाह अपनी दृष्टि के नीचे होते हुए देखा। संसार में एक पुरुष भी पतिताओं के लिये अपने को अर्पण कर सकता है, यह देख कर नारायणी की वैर-वृत्ति अदृश्य हो गई। लड़की के विवाह में उसने अपना निष्फल स्वप्न सफल होता देखा। जिस गान के नाद में उसने अपना जीवन होम दिया था, वह सुन्दर गायन भी उसके सुनने में आया। अब उसे किस लिये जीना चाहिए? जिस सुख को उसने कल्पना भी नहीं की थी, उस सुख के मिलने के बाद जीने का प्रयोजन? वैर रहित मन; लड़की के भाग्य में जीवित बना हुआ स्वप्न-दर्शन, प्रियतम का गाना, चन्द्र की चाँदनी—यह सब क्या मृत्यु को धन्य नहीं बना रहे थे? इसकी अपेक्षा मृत्यु के लिये और कौन-सा उपयुक्त अवसर हो सकता है?

वह तीसरे पहर से यह स्वप्न देख रही थी। भीड़ के उपद्रव ने उसके स्वप्न को संभव बनाया। इसके साथ ही उसने मृत्यु की शक्यता देखी। गायन के बीच में ही वह उठ गई। मैदान में बैठ कर शेष गायन उसने आँख मीच कर सुना और गाना बन्द होने के साथ ही अपने सिर में गोली मारी।

पापी की भी सद्गति हो! आत्म-हत्या पाप है, पर भगवान सभी पापों को क्षमा करते हैं।

३२

'अरे, अरे, देखो!'

रजनी की आवाज़ को अविनाश ने पहचाना, लेकिन कुछ

सोचने के पहले एकाएक उसके हाथ लम्बे हो गये। राजेश्वरी बेहोश हो गई थी। उससे नारायणी का मुख देखा नहीं गया। वह एकदम से गिरी। रजनी ने उसे देखा और आवाज दी। अविनाश ने उसके साथ ही हाथ लम्बे करके गिरती हुई राजेश्वरी को रोक लिया।

तुरन्त अविनाश को ध्यान आया कि उसे स्पर्श का निषेध है। माधवी के हाथों में राजेश्वरी को पकड़ा कर उसने रजनी से पूछा—'तुम कहाँ से ?'

'गंगा बहन का जो छोटा लड़का था न, वह गुजर गया।'

'पर उसमें तुम कहाँ से ?'

'विक्रम भाई की तबीयत अच्छी नहीं है, इससे मैं ले आया।'

'रमा भाभी को बहुत प्यारा था।'

'उसकी आँखों से तो आँसुओं का तार ही नहीं टूटता।'

नदी किनारे श्मशान था। जातीय-सम्बन्ध का एक विपरीत परिणाम बाल-मरण। जातीय-सम्बन्ध का दूसरा परिणाम रोग-ग्रस्त स्त्री। इन दोनों परिणामों पर गम्भीरता से विचार करता हुआ, अविनाश नारायणी की ओर देख रहा था।

'पर तुम यहाँ कैसे ?'—रजनी ने पूछा।

'मेरा यहाँ पर विवाह हुआ है।'

'कहाँ ?'—रजनी ने आश्चर्य से पूछा। उसने और पद्मनाभ ने पुलिस में सूचना दे कर मंदिर से अदृश्य हो गये तीनों व्यक्तियों की खोज शुरू कर दी थी।

मृत नारायणी के उपकार की कथा अविनाश ने कह सुनाई। नारायणी के शव पर शास्त्रीजी ने रामनाम का जप शुरू कर

दिया था। आत्महत्या की खबर पुलिस को देनी चाहिये, पर वह किसी ने नहीं दी। रजनी गंगा बहन के लड़के को प्रवाह करके राजेश्वरी की सेवा में लगा। उस मूर्छित युवती को नारायणी के घर में सुला, रजनी को उसके पास बैठा कर माधवी और अविनाश बाहर मैदान में आये। राम नाम का जप करने वाले शिवनाथ शास्त्री ने घर से लकड़ी निकाल कर चिता तैयार की। अविनाश और माधवी की सहायता को स्वीकार न करके शास्त्रीजी ने अकेले रोग-ग्रस्त नारायणी के शव को उठा कर चिता पर रखा। रोगी के साथ ही रोग नहीं मर जाता यह शास्त्रीजी जानते थे। फिर भी चिता पर शव रख कर अग्नि सुलगाई।

नारायणी कौन है? यह बात सिवाय शिवनाथ के और कोई नहीं जानता था। शास्त्रीजी ने किसी से कुछ नहीं कहा। केवल एक दिन पद्मनाभ से इशारा किया।

'पद्मनाभ! नारायणी गुजर गई।'

भावुक माता-पिता ने लड़के का नाम पद्मनाभ और लड़की का नाम नारायणी रखा था। दोनों पूज्य नाम। लेकिन नारायणी इतने दिनों से विस्मृत हो गई थी कि पद्मनाभ को यह समाचार सुन कर कुछ दुःख नहीं मालूम हुआ। भाग गई हुई बहन, सभ्य भाई के लिये मृतप्राय हो थी। और शिवनाथ शास्त्री ने नारायणी को पतित बनाने की अपनी जिम्मेदारी को संसार से छिपा रखा था, इसलिये उनको कोई भी अँगुली नहीं दिखा सकता था।

नारायणी के रोगग्रस्त शव को उठा कर शिवनाथ और

राजेश्वरी के विवाह में प्रयत्न करके पद्मनाभ, मानों अनजान में अपने पाप या उदासीनता का प्रायश्चित्त कर रहे थे। पद्मनाभ ने राममंदिर में ही एक आयोजन किया और कोका सेठ की सहायता से इसी मंदिर में पतिताश्रम की स्थापना की।

राजेश्वरी को जब होश आया, तब वह कहाँ थी यह उसे नहीं मालूम हुआ। वह रजनी के यहाँ थी? पद्मनाभ के यहाँ थी? या नारायणी के यहाँ थी? बावली बन गई हुई, इस ललना को याद आया कि राम-मंदिर में लोगों की भीड़ जमा हुई थी। सब उसका अभिनन्दन करते थे, इतना ही नहीं, उसको भेंट भी दे रहे थे। राज्जा सेठ भी उसमें दिखाई देते थे। राजेश्वरी को हीरे की चूड़ियाँ भेंट देते हुए सेठजी ने एक बार आँखें मटका कर कहा—

'आखिर तुमने विवाह कर लिया, राज्जा।'

लेकिन वह सब स्मृति के छोटे चिह्न थे। उस गाढ़ निद्रा के यह अस्पष्ट चित्र थे। वह जागती और विचित्र अनुभवों के बाद नारायणी की मृत्यु का स्मरण आते ही, फिर निद्रा में समा जाती।

उस निद्रा से वह पूर्णिमा के दिन पूर्ण रूप से जागृत हुई। उसने नेत्र स्थिर करके चारों तरफ देखा। वह यह नहीं समझ सकी कि वह कहाँ है?

'बहू, बेटा कैसी तबीयत है?'

राजेश्वरी ने एक वात्सल्य पूर्ण आवाज सुनी। 'बहू' शब्द ने उसके डूबते हुए हृदय को ऊपर उठा लिया। उसने देखा कि एक दर्शनीय माता उसके मस्तक पर हाथ फेर रही थी। वह कौन थी? उसे कहीं देखा था, या नहीं?

'आप कौन हैं ? आपको मैंने कभी देखा है ?'

'तुम मुझको भला कैसे पहचानोगी ? एक ही बार तो देखा था।'

'आपके पैर मैंने पकड़ लिये थे, वह कहाँ ? किसलिये ?'

माता जैसी उस स्त्री ने कुछ उत्तर नहीं दिया। राजेश्वरी ने देखा—उसकी आँखों से पानी बह रहा था। राजेश्वरी ने फिर आँखें मींच लीं।

'उसको आराम करने दो। बहुत बात मत करो।'—एक पुरुष की आवाज़ राजेश्वरी ने सुनी।

'मेरा जी घबड़ाता है, अब कुछ बोले तो अच्छा।'—स्त्री का गला भारी था।

राजेश्वरी ने फिर आँखें खोल दीं। आराम लेने की सलाह देते हुए भी, बोलती हुई राजेश्वरी को देखने के लिये वह पुरुष पास आकर खड़ा था। वह कौन था ?

'अविनाश जरा इधर आकर बैठो।'—उस पुरुष ने कहा।

इस नाम को सुनते ही उसे ख्याल आया कि उसके सास ससुर उसकी सेवा कर रहे हैं। अपने आप राजेश्वरी के हाथों ने कपड़ा खींच कर मुख पर कर लिया। पत्नीत्त्व का भाव उसमें वेग से जागृत हुआ। वह उठ कर बैठ गई। ससुर की तरफ से उसने मुख घुमा लिया। लेकिन उसकी दृष्टि पास ही एक कुर्सी पर बैठे हुए अविनाश पर पड़ी। उसका हृदय उछलने लगा। सास ने उसके सिर को अपने कंधे पर रख लिया।

राजेश्वरी ने वस्त्र समेटा। उसे अभिमान के साथ याद

आया कि अब वह पत्नी है ! उसके शरीर का मूल्य निश्चित हो चुका था। अब ऐसा नहीं था कि सब उसकी तरफ देख सकें। उसका शरीर, प्रेम और गायन अब सार्वजनिक नहीं था। अब वह सब एक के लिये ही था।

सुमंतराय उसके सिर पर हाथ फेर कर कुर्सी पर बैठ गये। अविनाश ने एक प्याले में फल का रस तैयार करके प्रभालक्ष्मी के हाथ में रखा। प्रभालक्ष्मी ने उसे राजेश्वरी के मुख के पास किया। यह एक पत्नी सेवा होती थी ! गणिका के लिये कौन ऐसा कष्ट सहन करता ?

'मैं अपने हाथ से पी लूँगी।'—राजेश्वरी ने कहा।

'अरे नहीं, अभी तो आज उठी हो।'—कह कर राजेश्वरी के सिर पर हाथ फेर कर प्रभालक्ष्मी ने रस का प्याला पिला दिया।

'अविनाश क्यों न पिलाए ?'—राजश्वरी के मन में तरंग उठी। उसने एक क्षुधित दृष्टि अविनाश की तरफ फेंकी। अविनाश ने अपनी आँखें नीची कर लीं। तुरन्त उसको ध्यान आया कि पत्नी का प्रेम प्रकट प्रदर्शन करने की चीज नहीं है। वह तो अमूल्य-रत्न है।

संध्या होते ही सास ससुर अदृश्य हो गये। अविनाश अकेला ही कुर्सी पर बैठा था। पति के रूप में अविनाश को वह पहली ही बार देख रही थी। पन्द्रह मिनट तक दोनों चुपचाप बैठे रहे।

'पास नहीं आओगे ?'—आखिर राजेश्वरी से रहा नहीं गया।

अविनाश पास आकर पलँग पर बैठा, एक समय ऐसा था, जब कि राजेश्वरी संसार के मनुष्यों को कहती थी—'दूर हटो !'

'मौन व्रत लिया है ?'—राजेश्वरी ने पूछा।

'नहीं।'—अविनाश ने हँस कर उत्तर दिया।

'तब कुछ बोलो न !'

'क्या बोलूँ ?'

'नहीं बोलना है तो मेरे सिर पर हाथ फेरो !'

'स्पर्श करने की तुम्हारी मनाही है।'

अब राजेश्वरी हँसी। क्षण भर उसने अविनाश की तरफ देख कर कहा—'मुझे छत पर ले चलो।'

'किसी को बुलाऊँ।'

'मालूम होता है—तुम्हारे जैसों के लिये पाठशाला खोलनी पड़ेगी।'

'क्यों ?'

'छत पर किसी को बुलाया जा सकता है ? मैं अपने आप जाऊँगी।'

राजेश्वरी पलँग से उतरी। उसके पैर पहले डगमगाये। लेकिन साहस के साथ उसने डेवढ़ी डाँकी। चिन्तातुर अविनाश बिना स्पर्श किये उसके बगल में आकर खड़ा हो गया। कितनी सुखद निकटता !

आकाश में चन्द्रमा हँस रहा था। सोलहों कला से अमृत बरसाता हुआ चन्द्रमा सम्पूर्ण संसार को मनोहर रंग से नवीन बना रहा था।

लेकिन राजेश्वरी एकाएक चौंक उठी। छत पर पैर रखते ही वह जमीन पर बैठ गई।

'अरे, अरे, यह चन्द्र है या चिता ?'—राजेश्वरी बोली।

चन्द्रमा शीतल है; पर उसका दाहक गुण भी संसार से छिपा हुआ नहीं है। अविनाश राजेश्वरी के पास बैठ गया।

'क्या है ? क्या हुआ ?'—अविनाश ने पूछा।

'अ अ अ अ ! मुझको पकड़ लो। नहीं तो मैं डूब जाऊँगी—पागल हो जाऊँगी !'—राजेश्वरी ने जोर से कहा। राजेश्वरी को पकड़ने के लिये दोनों हाथ लम्बे कर के अविनाश ने फिर समेट लिए।

'यह बात ? नहीं छूना है ?'—कह कर राजेश्वरी ने अपने दोनों हाथों से अविनाश का हाथ पकड़ कर अपने ओठ पर दबाया। हाथ छुड़ाने के प्रयत्न में अविनाश का दूसरा हाथ भी राजेश्वरी के मुख पर लगा और दोनों हाथ वहीं चिपक गये।

आकाश में पूर्णिमा खिल रही थी। दृश्य जगत को एक रंग में रँगती हुई चाँदनी ने पति-पत्नी को भी एक रूप कर दिया। दोनों भान भूले—शरीर का—स्मृति का नहीं।

अविनाश ने स्पर्श न करने की शर्त का भंग किया। वह कब तक राजेश्वरी के मुख पर हाथ फेरता रहा, यह केवल पूर्णिमा ही जानती है।

* समाप्त *

विश्व-साहित्य के दो अमर

उपन्यास !

पेरिस का कुबड़ा

मूल—लेखक

फ्रेंच साहित्य का महारथी विक्टर ह्यूगो

इस बृहत् उपन्यास को बिना समाप्त किये छोड़ना कठिन हो जाता है। इतना सजीव और रोचक वर्णन है कि आँखों के सम्मुख चलती फिरती तस्वीरों की भाँति दिखलाई पड़ने लगता है।

मूल्य तीन रुपये

वे तीनों

मूल—लेखक

रूसी कलाकार मैक्सिम गोर्की

दुनियाँ की ग़रीबी, बदमाशी, पाजीपन, अमीरों के उपद्रव, स्त्रियों की पतितावस्था आदि का विचित्र वर्णन इस उपन्यास में है।

मूल्य तीन रुपये

पता—पुस्तक-मंदिर, काशी।